परशुरामसागर (चतुर्थ-खण्ड)

# परशुराम-पदावली

साखी-ग्रन्थ

अखिल भारतीय जगद्गुरू निम्बार्काचार्य-पीठ-परशुरामपुरी

( सलेमाबाद-किशनगढ़ )

के

संस्थापक निम्बार्काचार्य श्री परशुरामदेव कृत

सम्पादक एवं शोधकर्ता

डॉ-रामप्रसाद शर्मा एस.ए.पीएच.डी.

प्राध्यापक, हिन्दी विभाग

राजकीय महाविद्यालय, किशनगढ़ (राज०

प्रकाशक :

करेंट बुक कम्पनी

झालाणियों का रास्ता, किशनपोल बाजार,

जयपुर-१

आचार्य श्री परशुराम देव

## सहयोगियों के प्रति--

सहयोग के मर्म को मुझे बचपन में अध्यापक जी ने व्याध के जाल में फँसे चतुर कपोतों की कहानी कहकर समझाया था और अन्ततः मेरी भी समझ में वहुत ही शीघ्र आ गया कि अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। जब तोड़ फोड़ जैसा कार्य अकेले नहीं किया जा सकता तो फिर निर्माण जैसा महत्वपूर्ण कार्य कोई व्यक्ति अकेला क्योंकर कर सकता है। परशुरामसागर जैसे विशाल साहित्य का प्रकाशन जितना उपादेय और समाजोपयोगी कार्य है उतना ही मेरे लिए दुष्कर और कष्ट-साध्य भी, भला मेरी क्या हस्ती है जो विना सहयोगियों और पीठमर्दों के इस समाजोपयोगी महान् साहित्य के प्रकाशन की कल्पना को साकार कर सकूं।

वहुत समय पहले मुझे परशुरामसागर की पाण्डुलिपि के दर्शन हुये थे। यह साहित्य अंधकार में पड़ा हुआ लुप्त होता जारहा था, इसे जीवित रखने के लिए मेरी आत्मा व्याकुल थी। मैं सर्व प्रथम श्री कैलाशचन्द्र शर्मा सलेमाबाद वालों का आभारी हूं जिन्होने मुझे परशुरामसागर की पाण्डुलिपि प्रदान की तथा इसके प्रकाशन के प्रस्ताव को स्वीकार किया। मेरे परम पूजनीय 'वापू जी' ने मुझे इस कार्य के लिए प्रेरणा दी तथा सफलता के लिए आशीर्वाद भी प्रदान किया; उनका यह उपकार भुलाया नहीं जा सकता। पाण्डुलिपि प्राप्त होने पर मैं शोध कार्य में जुट गया, परन्तु सब कुछ तैयार हो जाने पर सुयोग्य और उत्साही प्रकाशक नहीं मिल सके और मिले भी तो दिल के इतने कमजोर कि जिनका दिल इस विशाल योजना में धन लगाने की कल्पना से ही बैठ गया; और अन्ततः वे भी बैठ गये। देवयोग से श्री कलाधर शर्मा ( मैनेजर, करेंट बुक कम्पनी, जयपुर ) से भेंट हुई और रुके हुए कदम मंजिल की ओर चल पड़े। परन्तु प्रकाशक और सम्पादक के बीच फिर यह संकट आया कि प्राचीन मारवाड़ी भाषा के इस साहित्य को सुविधापूर्वक मुद्रित करने वाला योग्य मुद्रक नहीं मिल रहा है। अन्ततः श्री रामनारायण शर्मा ने इसके मुद्रण का बीड़ा

उत्साहपूर्वक उठाया और धन-श्रम की चिन्ता न करते हुये आपने इस प्रकाशन को सफल बना दिया। ऐसे साहित्य का प्रूफ देखना तथा सूझ बूझ के साथ कम्पोज करवाना कोई साधारण कार्य नहीं था। इसके लिए हमें बड़े ही अनुभवी महानुभाव श्री कन्हैयालाल शर्मा ( फोरमैन ) का अत्यधिक सहयोग प्राप्त हुआ जो कभी भुलाया नहीं जा सकेगा। भाईसाहब रामस्वरूप जी जोशी द्वारा दी गई सुविधाओं का कैसे वर्णन करूं ? उनका तो सदैव आभारी रहूंगा। कहने का तात्पर्य यह है कि श्री कलाधर शर्मा (प्रकाशक), श्री रामनारायण शर्मा( मुद्रण व्यवस्थापक ),श्री कन्हैयालाल शर्मा, श्री महावीर प्रसाद अग्रवाल एम.ए. (प्रूफ रीडर), बुद्धिप्रकाश शर्मा, रमेशचन्द्र झामानी, सत्यनारायण सोनी(कम्पोजीटर्स)आदि महानुभाव यदि इस कार्य को अपना ही समझ कर बड़े उत्साह और श्रम के साथ नहीं करते तो मुझे आज यह सफलता कदापि नहीं मिलती। मैं इन सब सहयोगियों को धन्यवाद देता हूं; तथा आशा करता हूं कि वे मुझे निरंतर इसी प्रकार का सहयोग प्रदान करते रहेंगे।

सम्पादक

# शुद्धि-पत्र

( ग्रंथ की भाषा प्राचीन होने से तथा कुछ प्रमाद वश मुद्रण में अशुद्धियाँ रह गई हैं; पाठक वृन्द शुद्धि-पत्र की सहायता से अपनी प्रतियाँ ठीक कर लें।)

| पृष्ठ | स्थल | | अशुद्धियाँ | शुद्धियाँ |
|---|---|---|---|---|
| २ | प्रस्ता० | पंक्ति १ | समचे | समूचे |
| ३ | ,, | १३-२१ | महान्, की | महान, के |
| ४ | ,, | ७-१८ | उद्दृत, अद्भत | उद्धृत, अद्भुत |
| ५ | ,, | २४ | कान्तासकि,असह्य, | कान्तासक्ति, असह्य, |
| ,, | ,, | २५ | कन्ताभाव | कान्ताभाव |
| ६ | ,, | ४-५ | बाह्याचारों,खडन | बाह्याचारों, खंडन |
| १०/१३ | ,, | १६-२२/२१ | स्वानुभति,ब्रम्ह, की | स्वानुभूति, ब्रह्म, + |
| १५/१६ | ,, | ६/११ | अंचित, ब्रजबिहार | अंचित, ब्रजबिहारी |
| २१/२२ | ,, | ५/७ | समी, अंग-प्रसग | सभी, अंग-प्रसंग |
| २५/२७ | ,, | ८/१६ | सहारक, सहारक | संहारक, संहारक |
| २८/३० | ,, | अंतिम/१४ | पथ्वी, मदोदरी | पृथ्वी, मंदोदरी |
| ३१/३२ | ,, | १८/६ | "लीला", विव | लीला-, विश्व |
| ३८/३६ | ,, | २१/१५ | वहत्व, एव | महत्व, एवं |
| ४४/५६ | ,, | २०/१६ | दैत्य, पट्टौ | दैन्य,पड़ौ |
| ५७ | ,, | ६ | धर्मांधिता, | धर्मांधता, |
| ६० | ,, | ३ | भागतवोक्त | भागवतोक्त |
| २४ | पद | ३६ | जजिए | जचिए |
| ३२ | ,, | १४-१५ | दो जागि, माथि, काठयां | दोजगि, मथि, काढ्यां |
| ४०/४२ | ,, | १४-१७ | मढ़, जनमन | मूढ़, जनम क् |
| ४४ | ,, | २३-२४ | फासे, अधारै | प्यासे, अंधारै |
| ४८/४६ | ,, | ३३-३७ | द्योम, भूं दुखाया | द्यौस, भूं दु खाया |
| ५१/५६ | ,, | ४०/५२ | विसन्यो, पढ़ायो | विसर्यौ, पठायो |

| पृष्ठ | स्थल | अशुद्धियाँ | शुद्धियाँ |
|---|---|---|---|
| ६१ | ,, ६० | मिलन, सग | मिलत, संग |
| ६६ | ,, १५-१६ | सुतन, कौहे | सु तन, कौ है |
| ७४/७७/७८ | २६/४/६ | मुरत, सकट, भम्यौ | सुख, संकट, भर्म्यौ |
| ७६/८२ | ७/१०-११ | सुमितरां, कछ, हदै | सुमिरतां, कछु, हृदै |
| ८५/८६ | ,, १६/१७ | तज तन, तज तन | तजत न, तजत न |
| ९२/९४/९६ | ३१/३४/३६ | प्रीसम, घरसा, गण | प्रीतम, धर्‌या, गुण |
| ९८/९९ | ,, २/४ | पूलभरि, लिरको | पलभरि, लिख्यो |
| १००/१०५ | ,, २/८ | अभंव, वक्ति | अभेव, बलि |
| १०८ | ,, १२-१३ | भम, मनहारि | भर्म, मनुहारि |
| १११ | ,, १८-१९ | विद, भानों | विद्र, भीनों |
| ११८/१२९ | ,, ३४-३५/५९ | हुलावो, मढ, अतर | डुलावो, मूढ़, अंतर |
| १३८/१४० | ,, ७९-८५ | सतनि, दुरावै, | सतनि, दुवारै, |
| १५४ | ११८ | भुवगम | भुवंगम |
| १७२ | ,, १५८/१६१ | तजिता कौ, भुखि, | तजि ताकौ, मुखि, |
| १७३ | १६३ | रह सितर | रहसि तर |
| १७५ | ,, १६५ | विद्यु, और नि | विद्युत, औरनि |
| १७९/१८० | ,, १७१/१७४ | अग निजरी काढ़्यौ | अगनि जरी, काट्यौ |
| १८४ | ,, १/ | सिखर निवन्यौ, | सिखरनि वन्यौ, |
| १८९ | ,, ५ | नत | मानत |
| १९१/१९३ | ,, १२/१७ | परपच, भववारै | परपंच, भवपारै |
| २००/२०३ | ,, २-१/४ | सघारै, नद, देवना | संघारै, नंद, देवता |
| २१० | ,, १३/१५ | हढि, स्माम | हठि, स्याम |
| २१३/२१४ | ,, २०/२३ | हरिराम, प्रभ | हरिरास, प्रभू |
| २२० | ,, ७ | नाल | ताल |
| २२७/२४५ | ,, ३/२५ | प्रभ, खाय | प्रभू, खोय |
| २४९/२५१ | ,, ३३/३८ | हुयै, ढ़ाडौ | छुयै, ठाडौ |
| २६५ | ,, ६९ (२ से ८ तक की पंक्तियों में अन्तिम रे छूट गया है) | | |
| २६६/२७५ | ,, २/१६ | अघभौ मैं, निज हस | अघ भौमैं, निजहंस |
| २७८ | ,, २ | परती तिन | परतीति न |
| २९५/२९६ | ,, ४२/४४ | तव त, सु जा | तव न, सु जानि |

समर्पण:—

मेरे जीवन को इस स्तर तक

लाने वाले

" माँ-बापू जी "

की

प्रेरणा से

∫

अखिल भारतीय जगद्गुरु

निम्बार्काचार्य पीठ–परशुरामपुरी

( सलेमाबाद-किशनगढ़ )

के अधिपति,

"वर्तमान जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्री श्री जी महाराज"

को

सादर समर्पित !

(प्रसाद शर्मा)

## राग-रागनियों के अनुसार पद-गणना

| क्रमांक | नाम—राग—रागनी | पद संख्या |
|---|---|---|
| १. | ललित | ३ |
| २. | भैंरू | १६ |
| ३. | विलावल | ४९ |
| ४. | टोडी | २२ |
| ५. | असावरी | ६२ |
| ६. | धनाश्री | २६ |
| ७. | रामगरी | ३९ |
| ८. | गूजरी | ४ |
| ९. | सारंग | १६३ |
| १०. | मल्हार | २९ |
| ११. | सोरठ | १६ |
| १२. | मारू | ६ |
| १३. | कल्याण | ११ |
| १४. | केदारो | २३ |
| १५. | बसन्त | ८ |
| १६. | गौड़ | १४ |
| १७. | नट | ५ |
| १८. | गौड़ी | ६९ |
| १९. | कनड़ौ | १८ |
| २०. | सोरठि | ४७ |
| | कुल | ६३० |

# -: प्रस्तावना :-

ग्रन्थ और ग्रन्थकार—

हिन्दी-साहित्य का भक्ति-काल सागर सा गहन और व्यापक है जिसके शोधकों के लिए 'जिन खोज्या तिन पाइया गहरे पानी पैठ' की उक्ति अपने सच्चे अर्थ में चरितार्थ हो जाती है; तथा जिसके क्रोड़ से निसृत कबीर-सूर-तुलसी जैसे महान कवि-रत्न आज भी हिन्दी मां के कण्ठहार में सुशोभित हैं। हमारे चरितनायक जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्री परशुराम देव भी इसी काल के महान कवि हैं जिनकी विद्यमानता वि. सं. १४५० से १५६७ वि. तक रही है। [1] हमें उनके द्वारा विरचित ३० ग्रंथों का वृहद्-संकलन 'परशुरामसागर' प्राप्त हुआ है जो अब तक सर्वथा अप्रकाशित और अज्ञात रहा है। राजस्थान के प्राचीन-साहित्य-भंडार की खोज करने वाले कतिपय शोधकों ने अपने शोध-प्रबन्धों में तत्सम्बन्धित नामोल्लेख अवश्य किया है, पर वह सूचना मात्र है। परशुरामसागर का सर्वांगपूर्ण प्रकाशन हिन्दी साहित्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है; और इसी उद्देश्य से यह महत्वपूर्ण कार्य किया जा रहा है।

परशुरामदेव-कृत साहित्य का प्रथम संकलन किसी अज्ञातनामा द्वारा 'परशुरामवाणी' के नाम से सं. १६७७ वि. में किया गया था तथा जिसमें उनकी साखियां, चरितावलियां और लीलाएं लिपिवद्ध की गई थीं। इस संकलन का उक्तनाम परशुरामदेव की सम्प्रदाय-ग्रंथ-परम्परा के अनुसार रखा गया था, [2] और साथ ही यह नाम संत-काव्यों की वाणी-

---

१—द्रष्टव्य आचार्य श्री परशुरामदेव—द्वितीय अध्याय। डॉ० रामप्रसाद शर्मा।

२—पूर्ववर्तीय ग्रंथ आदिवाणी (श्री भट्टदेवकृत) तथा महावाणी (हरिव्यासदेवकृत)

परम्परा के अनुकूल भी था। परशुरामदेव के समूचे साहित्य का संकलन 'परशुराम सागर' के नाम से मनसाराम व्यास द्वारा सं. १८३७ वि. में किया गया गया जिसमें 'परशुरामवाणी' के अतिरिक्त परशुरामदेव के ६३० गेय-पदों को और लिपिबद्ध कर दिया गया। संवत् १८३७ वि. से पूर्व 'परशुरामवाणी' का 'जांगलदेस'[1] में पर्याप्त प्रचार हो चुका था तथा परशुरामदेव के शेष गेय-पद भी भक्तों द्वारा गाये जाते थें। संवत् १८२५ वि. में जब सूरसागर का प्रथमवार लिपिकरण हुआ तो संभवतः उसी के वजन पर भक्त मनसाराम ने संवत् १८३७ वि. में 'परशुरामसागर' का संकलन किया। यह भी संभव है कि परशुरामवाणी के संकलन के पश्चात अर्थात् वि. सं. १६७७ के बाद तथा सं. १८३७ वि. से पूर्व किसी समय किसी अज्ञात नामा द्वारा 'परशुरामसागर' की संकलित पोथी का निर्माण हुआ हो जिसकी प्रतिलिपि मनसाराम व्यास ने सं. १८३७ वि में की हो। ग्रंथ की अन्तिम पुष्पिका से यही ज्ञात होता है—"इति श्री श्री श्री श्री श्री परशुरामदेवकृत ग्रंथ रामसागर सम्पूर्ण।। संवत् १८३७ वि. मिति ज्येष्ठ वदि ६ बुधवासरे।। लिपिकृत व्यास मनसाराम पठनार्थं वाई अनोपा।" परशुरामसागर की आज भारत भर में दो ही पोथियां उपलब्ध हैं[2] और दोनों में अक्षरशः समानता है; तथा दोनों में ही लिपिकर्ता मनसाराम व्यास का नामोल्लेख मिलता है। अस्तु यही कहना उपयुक्त होगा कि परशुरामदेव के सम्पूर्ण-साहित्य का लिपिकरण 'परशुराम सागर' के नाम से सं. १८३७ वि. में ही हुआ था। यहां हम परशुराम देव कृत उन ६३० गेय-पदों को परशुराम सागर के चतुर्थ खंड 'परशुराम पदावली' के नाम से प्रकाशित कर रहे हैं जिनको सवत् १८३७ वि. में परशुरामवाणी के साथ संकलित कर तथाकथित परशुरामसागर का निर्माण किया गया था।

---

१—मरुधरा का प्राचीन नाम जिसमें आज उत्तरी पश्चिमी और मध्य राजस्थान के भू-भाग सम्मिलित है। तथा जहा के मुख्य नगर जोधपुर, जयपुर, बीकानेर, नागौर, किशनगढ़, अजमेर आदि है।

२—दृष्टव्य आचार्य श्री परशुरामदेव तृतीय अध्याय। डॉ० रामप्रसाद शर्मा

'माया तेरे तीन नाम परसा परसी परसराम' की बहुश्रुत राजस्थानी उक्ति के प्रचलन से आज भी परशुरामदेव का नाम असख्य लोगों के मानस पर अंकित है पर अत्यल्प दोहावली के अतिरिक्त उनका विशाल साहित्य समाज से विलुप्त हो गया है। साहित्य जगत में भी किंचित् शोध-शास्त्री ही परशुरामदेव के साहित्य से परिचित हैं। परशुरामदेव का साहित्य निम्बार्कीय भक्ति-दर्शन तक ही सीमित न होकर अत्यन्त व्यापक है, जहां राम-कृष्ण के प्रति समान-भाव से भक्ति का प्रतिपादन हुआ है। इतना ही नहीं परशुराम निर्गुणोपासक भी हैं जिन्होंने संतोचित ढंग से निर्गुण-भक्तिपरक' दर्शनों एवं उपदेशों की चर्चा की है और उन्होंने तीर्थ, पूजा शास्त्रपठनादि साधनों की खुलकर निन्दा भी की है। इनके साहित्य में निम्बार्कीय-सखी-उपासना का उल्लेख-मात्र हुआ है, इस प्रकार इनके साहित्य पर पूर्ववर्ती निम्बार्कीय ग्रंथ आदि वाणी तथा महावाणी का प्रभाव लक्षित नहीं होता। ये ही कारण हैं कि परशुरामदेव का महान् साहित्य उनकी सम्प्रदाय में भी उपेक्षित रहा है। यदि परशुराम सागर के प्रकाशन की शीघ्र व्यवस्था नहीं की जाती तो संभव था कि धीरे धीरे यह विशाल साहित्य सदा के लिए विलुप्त ही हो जाता।

परशुरामदेव का व्यक्तित्व अत्यन्त महान है। उनका साहित्य संकुचित साम्प्रदायिक धाराओं से परे अत्यन्त व्यापक है जो उनकी उदारता और व्यापक समन्वयात्मक भक्ति का परिचायक है। उनका साहित्य बहुजनहिताय और सर्व जनसुखाय निर्मित हुआ है तथा जिसके द्वारा 'सुरसरि सम' मानव मात्र की हित की साधना हुई है। परशुराम कबीर और तुलसी की भांति लोक-कल्याण के साधक हैं; साथ ही इन्होंने कृष्णभक्ति की मधुरधारा प्रवाहित करने वाले अवान्तरकालीन महान कवि सूर की पृष्ठ भूमि भी तैयार की है। संत-काव्य के क्षेत्र में कबीर ने वाणी-ग्रंथ लिखकर सन्त परम्परा में उच्चतम स्थान प्राप्त किया है। यद्यपि उनकी साखियां छन्द और भाषा की दृष्टि से कलाहीन हैं, दर्शन के क्षेत्र में जटिल और अटपटी समझी जाती हैं तथापि कबीर निर्गुण-काव्य-धारा के सूत्राधार

माने जाते हैं। पर आज यह कौन जानता है कि परशुरामदेव भी कबीर के समकालिक बड़े प्रभावशाली कवि हैं जिन्होंने कबीर से कई गुणा अधिक ( लगभग २२०० ) साखियां लिखी हैं जो भाव एवं कला की दृष्टि से उच्चकोटि की हैं। इतना ही नहीं परशुरामदेव ने निर्गुण-काव्य के क्षेत्र में दार्शनिक विवेचन के लिए लीला-ग्रंथ-प्रणयन की अपनी अनोखी परम्परा प्रचलित की है। इसी प्रकार के एकाधिक लीला-ग्रंथ कबीर ने भी लिखे हैं पर बीजक में उद्धृत 'विप्रमति लीला' तो परशुराम देव कृत ही है जिसे अवान्तर कालीन कबीर-पंथी-बीजक-संग्रहकों ने कबीर के नाम से प्रचलित कर दिया है।[1] इसी प्रकार परशुरामदेव के विलुप्त एवं अप्रकाशित साहित्य का अन्य कवियों के नाम से प्रचलित हो जाना संभव है। इन सब बातों पर 'परशुरामसागर' के अन्य प्रकाशनों की भूमिका में विस्तृत विचार किया जायगा, यहां इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि परशुराम संत-काव्य परम्परा के भी सर्वश्रेष्ठ कवि हैं।

परशुराम देवकृत प्रस्तुत गेय पद साहित्य भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इन गीति-पदों में परशुरामदेव की राम-कृष्ण विषयक सगुणोपासना प्रचुर रूप से व्यक्त हुई है। दर्शन के क्षेत्र में इन्होंने यहां अद्वैतवाद, सर्वात्मवाद, एकेश्वरवाद का प्रबल प्रतिपादन किया है इनका यह भक्ति-काव्य निर्गुण-सगुण विचारधाराओं का अद्भुत संगम है, जहां के पावन-प्रयाग में एक ओर राम-कृष्ण की द्वय सगुण-धाराएं गंगा-यमुना के रूप में एकाकार होरही हैं तो दूसरी ओर इसके गर्भ-स्थल में निर्गुणी-सरस्वती का प्रबल और अबाधित प्रवाह होरहा है। इनका कृष्णायन भागवत-परम्परा को लेकर चला है। कृष्ण-लीला गान के अंतर्गत इनके रास-विधान, गोपी-क्रीड़ा-विधान, होली-वसन्त

---

१-नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ४५ सं० १९९७ पृ० ३३४ डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल। तथा डॉ० शिवप्रसादसिंह सरोज-'सूर पूर्व ब्रज भाषा और साहित्य'।

हिंडोरा-फाग़-विहार, भ्रमरगीत-प्रसंग आदि के वर्णन बड़े आकर्षक और सांगोपांग बन पड़े हैं। इनका यह कृष्ण-काव्य अवान्तरकालीन कृष्ण-काव्यों का आधार है। राम-कथा के कई प्रसंग इन पदों में देखने को मिल जाते हैं राम जन्मोत्सव, धनुष-भंग, सीता-विरह आदि के वर्णन अत्यन्त मार्मिक हैं। भक्ति के क्षेत्र में परशुरामदेव ने राम-कृष्ण दोनों ही अवतारों को उपास्य माना है। निम्बार्कीय भक्त होने से कृष्ण इनके परमाराध्य हैं पर इन गेय-पदों में भक्त परशुराम का राम के प्रति व्यापक-मोह प्रकट हुआ है। जिस प्रकार 'परशुराम' शब्द में 'राम' की अभिन्न स्थिति है ठीक उसी प्रकार सर्वत्र ही परशुराम के भक्ति-उद्गारों में उपास्य स्वरूप 'राम' की विद्यमानता है इतना ही नहीं लोकनायक परशुराम ने तो राम-रहीम, केशव-करीम की एक रूपता स्थापित कर भारत में समन्वयात्मक उपासना का सूत्रपात भी किया है। यहां आपने अद्वैतवाद-एकेश्वरवाद के दार्शनिक-प्रतिपादन से तात्कालीन युग-संघर्ष और धार्मिक वैषाम्य को समाप्त किया है और मानव-मात्र की रक्षा की है। व्यापक-ब्रह्मवाद और सर्वात्मवाद से पुष्ट परशुराम-दर्शन ने मानव-मात्र में अंतर्जगत की तात्विक एकता स्थापित की, तथा-अनैक्यता और पृथकता से उभरी सामाजिक अस्त-व्यस्तता और अराजकता का अंत कर दिया। फलतः हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियों में परस्पर समन्वयात्मकता स्थापित होगई और भीषण रक्तपात मिट गया।

परशुरामदेव के भक्ति काव्य में भक्त-हृदय की उच्चतम स्थिति की सरस-अभिव्यक्ति हुई है। दास्य-सख्य-आत्मनिवेदनादि भावों की जैसी मार्मिक अभिव्यक्ति यहां हुई है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। इनकी गोपी भक्ति में प्रेमाधिक्य, कान्तासक्ति, असह्य-विरह-वेदना, आत्मनिवेदनादि तत्व प्रबल रूप से प्रकट हुये हैं इनके निर्गुण-पद भी कन्ताभाव से अछूते नहीं हैं, तथा वहां भी भक्तात्मा प्रियतम परमात्मा से उन्मुक्त और निर्द्वन्द्व होकर दाम्पत्य सम्बन्ध स्थापित करना चाहती है। यहीं

विरह कोटिक रहस्यवाद की अत्यन्त मर्मस्पर्शी-अभिव्यंजनाएं हुई हैं। परशुरामदेव नाथ-उपासना से भी प्रभावित है। यहां उनकी हठयोग-साधना का सांगोपांग विवेचन हुआ है इसके अतिरिक्त आपने तीर्थ-व्रत पूजा, शास्त्र-मंथन, माला-भेष-तिलकादि आदि वाह्या-चारों का डटकर खंडन कर सरल और सहज उपासना-मार्ग का समर्थन किया है।

परशुरामदेव ने राजस्थान की सरल और सार्वजनिक लोक भाषा मारवाड़ी का प्रमुख रूप से प्रयोग किया है, वे मरुधरा की लोक भाषा के सबसे बड़े भक्त कवि हैं। राजस्थान की डिंगल-भाषा में वीर-शृंगार-रस-प्रधान काव्यों के प्रणेता अगणित हुये हैं पर कतिपय जैन-श्रावकों के अतिरिक्त इस भाषा-शैली में भक्ति के काव्यों की रचना करने वाले कोई नहीं हुये हैं। मारवाड़ी-भाषा जो साहित्यिक डिंगल से सरल और लौकिक है, उसमें भक्ति-नीति और उपदेश की चर्चाएं अधिक हुई हैं। साहित्य-जगत इस भाषा की कवियत्री मीरां से परिचित है। परशुरामदेव मीरां से पूर्ववर्ती हैं तथा इसी लोक-भाषा के सबसे बड़े भक्त-कवि हैं। इतना ही नहीं परशुराम ही राजस्थान के ऐसे महान काव्यकार हैं जो भक्तिकालीन प्रमुख कवि कबीर, सूर, तुलसी के समकक्षी हैं तथा उनसे किसी प्रकार कम नहीं हैं। परशुराम का कार्यक्षेत्र 'जांगल देश' ब्रज से लगा हुआ होने से उनके पदों में ब्रजभाषा का भी प्रचुर प्रयोग हुआ है। यहां ब्रज और मारवाड़ी भाषा का मिलाजुला प्रयोग होने से काव्य में अत्यन्त सरलता और मधुरता व्याप्त है। यहां ये दोनों भाषाएं इतनी एकाकार होगई हैं कि उनकी पारस्परिक पृथकता को सरलता से आंका नहीं जा सकता। गेय-पदों में ठेठ-मारवाड़ी शब्दों का प्रयोग देखते ही बनता है। परशुरामसागर के समस्त पद राग-रागनियों में बंधे हुये है जहां संगीत और साहित्य का गंगा-यमुनीय संयोग हुआ है। संक्षेप में यही कहना उपयुक्त होगा कि परशुरामदेवकृत प्रस्तुत-पदावली

हिन्दी के भक्ति-साहित्य की अनूठी निधि है, तथा परशुरामदेव भक्ति-कालीन मुक्तक-काव्य-परम्परा के भी श्रेठ कवि हैं जिनका-व्यक्तित्व अत्यन्त महान है। परशुरामदेव राजस्थान के सर्वप्रथम निम्बार्काचार्य हैं जिन्होंने निम्बार्क-सम्प्रदाय के अखिल-भारतीय-जगद्गुरू-निम्बार्क-पीठासन सलेमाबाद (परशुरामपुरी)[1] की स्थापना की है। आप ही सर्वप्रथम वैष्णवाचार्य हैं जिन्होंने राजस्थान की खूंखार-अर्द्ध-सभ्य जाति में वैष्णव-भक्ति का प्रचार किया है[2] तथा आपने यहां आई हुई आक्रांता मुस्लिम-संस्कृति को अपने चमत्कारों और सदुपदेशों से उदार और अहिंसक बनाया है। अब तक लोग यही समझते आये हैं कि राजस्थान में कृष्ण-भक्ति का प्रचार करने वाले सर्वप्रथम वैष्णवाचार्य शुद्धाद्वैतवादी वल्लभाचार्य हैं। परशुरामदेव वल्लभाचार्य के जन्म से पूर्व ही राजस्थान में पूर्वोक्त आश्रम की स्थापना कर चुके थे तथा वहां से वैष्णवधर्म का सुव्यवस्थित प्रचार करने लगे थे। इनके कृष्ण-भक्ति-परक गीत राजस्थान के जनमानस में मीरां और सूर के पदों से पूर्व ही गूंजने लगे थे।

यह मेरे परमगुरू परशुरामदेव की दिव्यात्मा का ही आशीर्वाद है तथा उन्हीं की दिव्य प्रेरणा का फल है कि मैं उनके इस साहित्य को सर्व प्रथम वार प्रकाश में लाने में समर्थ हो रहा हूं। इस काव्य से समाज का अज्ञानान्धकार दूर होगा, तथा परमसत्ता के प्रति पाठकों के हृदय में आस्तिकता का प्रादुर्भाव होगा और साथ ही हिन्दी के भक्ति साहित्य में एक नया आलोक जगमगा उठेगा जिससे साहित्य-संसार में परशुरामदेव के महान व्यक्तित्व के दर्शन होंगे; और हिन्दी-इतिहास के नये पृष्ठों पर परशुरामदेव का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित होगा।

---

१—जिला अजमेर में किशनगढ से १३ मील दूर।

२—नामा दास कृत भक्त माल—छप्पय १३७।

# पदावली का विषय विवेचन

दर्शन—

निम्बाकाचार्य होने के नाते परशुरामदेव ने अपने वाणी और लीला-ग्रंथों में आद्य निम्बाकाचार्य द्वारा प्रदत्त द्वैताद्वैत दर्शन का प्रबल प्रतिपादन किया है पर प्रस्तुत पदावली में उनके द्वारा अद्वैतवाद, एकेश्वरवाद, सर्वात्मवाद, परात्परवाद तथा शून्यवाद का निरुपण ही प्रमुख रूप से किया गया है। यहां परशुरामदेव ने परमतत्व को निर्गुण ब्रह्म, राम, कृष्ण, हरि, साईं, निरंजन, साहब, रहीम आदि नामों से अभिहित किया है। उनके परमात्मा अगम, अगोचर, निर्गुण-सगुण से परे अत्यन्त विलक्षण, गुणातीत, सर्वव्यापक और विश्वात्मा हैं। वे अवरण-वरण, व्यक्ताव्यक्त, लक्ष्या-लक्ष्य हैं तथा वेदवाणी से परे सर्वथा अकथनीय हैं। उनका स्वरुप अत्यन्त व्यापक और विराट है; सर्वान्तिर्यामी होने से अखिल-सृष्टि के कण-कण में उनकी विद्यमानता है। वे यहां-वहां सर्वत्र व्याप्त हैं; तथा अडिग और स्थिर हैं। 'न वह स्याम है न श्वेत और न पीला', जिज्ञासु अपनी अपनी मति से उनका अनुमान करते आये हैं। ब्रह्म को गति ब्रह्म ही जाने; वह जैसा है वैसा ही रहे-परशुरामदेव तो श्रद्धा सहित उसका स्मरण करना जानते हैं; :—

अविगति जांणी न जाई काहू कै कीऐं ।।
अगम अगोचर निगम तें जु खोजत मन दीऐं ।।
अवरण वरण इहां उहां कहिये जो ऐसा ।।
सीत न पीत न स्याम सो जैसे का तैसा ।।
कोई कैसे हीं कहौं मति को उनमानां ।।
ज्यौं पंखी सब लै उड़ै अपणं उड़ाना ।।
जोई उड़ि जाणै सोई उड़ै पांखा कै सारै ।।
गहै राखै न गिराई देई जीते न कछु हारै ।।

सुरग कवण तें दूरि है अरु कोरण तें नीरा ॥
सब काहू कौ सारिखौ तातों न कछु सीरा ॥
डोलै न डिगै न अरु करै कहूं जाइ न आवै ॥
जैसे कौ तैसौ रहै परसा सोइ मुख गावै ॥

परमात्मा अकथनीय है। उनके विषय में जो कुछ कहा जाय वह अपूर्ण है क्योंकि वह उससे भी परे-परात्पर है। वह रूप-रंग-देह रहित है, अलख है, आदि-अंत-रहित अविनाशी है, कागज पर लिखकर उसके स्वरूप का विवेचन करना सर्वथा असम्भव है :—

अविगति गति तेरी को घौ पावै ॥
अगम अगाही काहि गमि आवै ॥
अकथ अतीत सुकथ्यो न जाई ॥
कागद अलख लिख्यौ न समाई ॥
आदि न अंत न हीण वड़ाई ॥
नांहि अवरणवरण सुदैत दिखाई ॥
काया कर्म काल नांहि खाई ॥
सहज न सून्य अकल कल लाई ॥
परसापति गति लखी न जाई ॥
राम सुमिर जीऊं जस गाई ॥

ब्रह्म सर्व व्यापक-सर्वान्तर्यामी हैं; वे विश्वात्मा हैं; समस्त ब्रह्मांड उन्हीं में व्याप्त है। भला ऐसी परम-सत्ता के रूप रंग का अनुमान कैसा? उनके चरण, सीस, मुखादि की कल्पना क्योंकर की जाय? विश्व ही उनकी दिव्य देह है, ब्रह्मांड ही उनका विराट-स्वरूप है, कण-कण ही उनके अंग हैं, चराचर में वही अविनाशी बीजरूप में विद्यमान है। ऐसे अथाह–अविगत–अविनाशी तत्व का कैसा आकार है? कैसा स्वरूप है? जिसकी कि सेवा की जाय। वे तो प्रतिपल जागते रहते हैं फिर शयन उत्थापन आदि अष्टकालिक–सेवा का विधान कैसा? इस प्रकार परशु-

रामदेव ने विशिष्ट–रूप–रंग देह से परे व्यापक–ब्रह्म–विश्वात्मा के स्वरूप का प्रतिपादन किया है, और इसी स्वरूप की उपासना पर बल दिया है :–

देवा सेवा न जाणौं तेरी ।।
तू अथाह अविगत अविनासी है न कछु मति मेरी ।।
कहां चरण तन सीस तुम्हारा मैं मूरख मरम न पाऊं ।।
कहां धरुं तुलसी दल चंदन कैसे भोग लगाऊं ।।
कहां उत्तर दछिन पछिम दिसि कहां दिष्टि पसारा ।।
तीन लोक जाकै मुख भीतरि सोव कहां मुख द्वारा ।।
तुम ठाढे रहो कि बैठो कबहू किधौ जागि अजगि कहावो ।।
कहां बसो घर कौण तुम्हारा नांव कहा समझावो ।।
कौन बिड़द ऐसो तुम लाइक का उपमा लै दीजै ।।
परसराम को कहैं सुणैं यौ को गावै कौ रीजै ।।

पर इसका तात्पर्य यह नहीं कि परशुरामदेव अनीश्वरवादी तथा नास्तिक हैं, वरन् वे तो संतो की भांति स्वतंत्र चिंतक हैं। उन्होंने तो स्वानुभूति के आधार पर ब्रह्म-सत्ता का विवेचन किया है। वे तो घट-घट में विश्वात्मा के दर्शन करते हैं तथा सर्वान्तिर्यामी ब्रह्म को अपने ही हृदय में देखते हैं। परमात्मा की व्यापक सत्ता को मंदिर-मस्जिद तक ही सीमित मानना उनकी दृष्टि में अज्ञानता है। देवालय और मस्जिद में निवास करने वाली सत्ता कहां नहीं हैं? उन्हें तो सर्वत्र ही राम-रहीम के दर्शन होते हैं। सामाजिक एकता लाने के लिए इन्होंने राम-रहीम, केशव- करीम, साईं-साहब नामों से ब्रम्हचिंतन किया है। 'अपरंपर के नांऊ अनंत' के आधार पर इन्होंने व्यापक ब्रह्मवाद का प्रतिपादन किया है तथा ब्रह्म के व्यापकत्व को सीमित करने वाले सभी धर्मों का विरोध किया है। 'जहं देखो तहं एक ही साहब का दीदार' की यह एकेश्वरवादी व्यापक-ब्रह्म-भावना परशुराम देव ने कई स्थानों पर व्यक्त की है:–

साईं हाजरा हजूरी देखि निकट है न दूरि ॥
ताकौ भजि तजि विकार, रह्यौं सकल पूरि ॥
अपणें दिल मैं संभारी वोलै गाव गुण गाथा ॥
कौण है वौ वरण कैसौ संगई तन साथा ॥
सास वास कहां निवास कैसी कल लाई ॥
आवै धौ जाइ कहा खोजो रे भाई ॥
देऊरे मसीति माहीं सकल व्यापी कहां नाहीं ॥
सत्य है रहीम राम दुविध्या भरमाहीं ॥

परशुरामदेव ने लीलावतारी परब्रह्म रामकृष्ण का सगुणत्व-विशिष्ट भी वर्णित किया है। उनके रामकृष्ण परब्रह्म नारायण हैं जो अविगत-अविनाशी-अलख हैं। वे ही सृष्टि नियन्ता, अखिल-ब्रह्मांड-नायक, ब्रह्मा के ब्रह्मा और आदि शब्द ओंकार हैं। शिव-ब्रह्मा-शेषादि देव निरन्तर उनका गुणगान करते हैं। वे वेद-निगमादि से परे सर्वथा अनिर्वचनीय हैं:—

राम अगम गम आवत नाहीं ॥
निगम रटत नित नेत नेत कहि महासिंधु भजि सेस भुलाही ॥
वर्ण कुबेर इन्द्र अवतारी देव असुर सुर केलि कराहीं ॥
सप्त दीप नवखंड मंड चवदह लोक पलक की छाहीं ॥
संकर ध्यान धरै जाहि खोजत मन मनसा होऊ गाहीं ॥
आदि अन्त अनन्त नाथगति भूल्यौ सिंभु विचारत माहीं ॥
ब्रम्हा हूं ब्रम्ह सम्हारत भूलै हम आये कहां कवण दिस जाहीं ॥
कंवल कली खोजत कल वीतै यह अचिरज देख्यो न कहांहीं ॥
वो ओंकार सवद सुणि सकुचे सोचत सुनत अहं तजि काहीं ॥
परसराम ता प्रभु की ताकों समझि न परी सु अजहूं पछिताही ॥

होता है तो मन-प्राण की एक 'लौ' लग जाती है। इसी लयावस्था में ब्रह्म-दर्शन होता है, और साधक पूर्ण-तदात्म्य प्राप्त कर लेता है। उसका यही विन्दु-सिंधु-समागम पारलौकिक-अवस्था है, यही परमावस्था, सिद्धावस्था, समाधि और अद्वैतानन्द है :—

सतगुरु सौज बतावै याहि ॥
तन तैं बिछुरि कहां मन जाहि ॥
घट फूटयां प्राणी कहां जाहि ॥ जात न दीसै रहै न माहिं ॥
छाडी माया भयो उदास ॥ कौण गयो कहां पायो वास ॥
बाजत पवन थकित होइ रह्यो ॥ माटी परी धरणी धरु गह्यो ॥
बोलनहार मरै न सोई ॥ तौ को जीवे को मिर्तक होई ॥
सुरति निरति में रही समाई ॥ नां सोई आवै ना सोई जाई ॥
परसराम यह अचिरज भयो ॥ तौ कौं ठाकुर को जन होई रह्यो ॥

जीव परमात्मा का ही अंश है पर माया के कारण उसमें 'अध्यास' की प्रवृति होती है और अज्ञान के कारण उसे अपने मूल-स्वरूप की अनुभूति नहीं हो पाती। माया ही उसके ज्ञान पर आवरण डालती है। त्रिगुणात्मिका माया ही ब्रह्म की नटसारी है, लीला है; वही बाजीगर की बाजी है। लालची जीव माया से आकृष्ट हो परम तत्त्व को भूल जाता है। माया का प्रभाव अत्यन्त व्यापक और अबाधित है। सारे संसार को डसने वाले इस माया-सर्प को वश में करने वाले सिर्फ परमात्मा ही हैं। मंत्र जंत्र, जड़ी-बूटी आदि साधन बृथा हैं; इसके विष का शमन तो राम-धन्वन्तरी की शरण में जाने से ही होता है :—

सब जग कालै सांप संघार्‌या ॥
मुहरा जहर जड़ी दिठि आई तातैं अधिक विकार्‌या ॥
चेला भोपा गारुड़ी गावै देखै लोग सवाये ॥
पूछै कहै बोत कहूं नाहीं उठै मैड़ सवाये ॥

झाड़ै झूड़ै सुख न भयो कछु मंत्र जंत्र अधिकाई ।।
भयो अचेत चेत कछु नाहीं विष भर्‌यो मरिजाई ।।
जो कोई वेद वतावै वोखद तौ जग कै कीयां न होई ।।
परसराम विण रांम धनन्तर जीवै नाहीं कोई ।।

परशुरामदेव ने वाणी और लीला ग्रंथों में द्वैताद्वैत वाद का विस्तृत प्रतिपादन किया है। सृष्टि-दर्शन में वे सांख्य-मत का अनुसरण करते हैं, पर वे सांख्य की भांति द्वैतवादी नहीं, क्योंकि उन्होंने 'हरि को अक्षय बीज' कहकर प्रकृति को उसी के आधीन वताया है। प्रकृति तो अचिंत पुरुष परब्रह्म की सहधर्मिणी है जो उनकी आज्ञाकारिणी होने से उन्हीं के आधीन है परब्रह्म ही अव्यक्तावस्था से सचराचर में व्याप्त और स्थित हैं, पर वे सचराचर में प्रकट होकर भी स्थिर हैं तथा आवागमन से सर्वथा मुक्त हैं। आदि-अन्त रहित अक्षय-तत्व, अव्यक्त-परमात्मा ही अपनी रमणेच्छा से जगत की रचना करते हैं। विभु की लीलामयी इच्छा ही सृष्टि का मूल कारण है। 'एकोऽहं वहुस्याम' के आधार पर परशुरामदेव ने सृष्टि को परमात्मा की ही आत्मकृति माना है। वाजीगर की भांति ब्रह्म स्वयं सृष्टि के नाना पदार्थों में प्रकट होते हैं और द्वैतभाव का आनन्द लेते हैं। अतः नाना रूपात्मक जगत् ब्रह्म की ही आत्मकृति है संक्षेप में परशुराम का यही सृष्टि-दर्शन तथा तत्त्व-त्रय विवेचन है; यद्यपि परशुराम कृत अन्य ग्रंथों की भांति पदावली में इसका व्यापक विवेचन नहीं हुआ है पर जहां भी हुआ वहां स्पष्टतया इसी सृष्टि-दर्शन का प्रतिपादन दिखाई पड़ता है:—

अगिण चरित हरि एक अकेला ।।
वाजीगर खेलत वहु खेला ।।
नाना रूप करै को जाणै ।। ताहि कहा कहि कूंण बखाणै ।।
अपणी रुचि लीला वपु धारै ।। जनम मरण दोऊ हरि सारै ।।

संहार-वर्णनों की प्रचुरता है। कृष्ण लीला गान में हम यहां कृष्ण के लोकरंजनकारी-भक्त मनोहारी स्वरूप को भी देखते हैं; जहां भागवतोक्त कृष्ण-स्वरूप का पूर्णतया प्रतिपादन हुआ है। रासक्रीड़ा, झूला, होरी, फाग आदि के विधानों में कृष्ण के इसी स्वरूप का व्यापक प्रतिपादन हुआ है। ग्वाल-लीला का पद देखिये:—

हरि वन तें खेलत घरि आवत ।।
सोभित अति सब कैं मन भावत ।।
नाना धुनि बंसिका बजावत ।। निर्तत अति मन मोद बढावत ।।
सब औसर देखत सुख पावत ।। जै जै कार करत सिर नावत ।।
संगि सखा बहु वृंद सुहावत ।। उमगि उमगि गोपालहिं गावत ।।
पुर जन आरति कलस बंदावत ।। सुरवर पहुप पुंज वरपावत ।।
जा हरि कौ मुनि महन्त न पावत ।। सोईपरसा प्रभु ब्रजराज कहावत।।

कृष्ण चरित—

श्री कृष्ण लीलावतारी परब्रह्म हैं जिनका अप्राकृत-दिव्य-देह नित्य-नूतन है। वे अखिल-रसामृत सिंधु, सकल सौंदर्य-निकेतन और रसिकेश्वर हैं जिनके अंग-प्रत्यंग पर कोटि कामदेव न्यौछावर हैं; उनका यह स्वरूप भक्तात्मा गोपिकाओं के चित्त का हरण कर लेता है; ब्रज बालाएं ऐसे ही ब्रजविहारी कृष्ण के मुख-मंडल की छवि प्रतिपल निरखना चाहती हैं:—

वदन हरि कौ हेरत नैन ।।
सोभित मधुर मधुर गावत भावत मुख के बैन ।।
अति ही उदार ता रूप को देखत भयो चैन ।।
मनु मधुपनि पायौ मनवंछित कुसुमनि को ऐन ।।
कमल लोचन कीचितवनि मेरेलोचनि को सैन ।।
अपणें वसिकरन कौ हरि सखसु भये लैन ।।
गोरोचन कौ तिलक भाल झलकत मधि नैन ।।
परसराम प्रभु विराजत अति सुंदरवर सुख दैन ।।

भगवान श्री कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम, परातपर, ब्रह्म के आदिकारण ईश्वर माने गये हैं। भागवत में इन्हें 'एतेंचांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'—कहा गया है तथा पद्मपुराण में 'विष्णुर्महान यस्य—कला विशेषो गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि'—द्वारा इनके इसी स्वरूप का प्रतिपादन हुआ है। कृष्णाश्रयी सम्पदायों में श्रीकृष्ण के तीन स्वरूपों की प्रतिष्ठा हुई है—वृन्दावनबिहारी, मथुरेश एवं द्वारिकाधीश। मथुरेश एवं द्वारिकाधीश कृष्ण ऐश्वर्य, श्री, ज्ञान वैराग्य, योगबल एवं कर्मनिष्ठा से परिपूर्ण हैं परन्तु वृन्दावन बिहारी कृष्ण प्रेम और शृंगार के साक्षात् स्वरूप हैं। वृन्दावन बिहारी कृष्ण माधुर्य—भक्ति के आधार हैं। वृन्दावन बिहारी के रूप में कृष्ण के दो स्वरूप वर्णित हुये हैं—ब्रजबिहारी कृष्ण तथा निकुंज—विहारी कृष्ण। भागवत में श्रीकृष्ण के ब्रजबिहार स्वरूप का ही स्पष्ट रूप से प्रतिपादन हुआ है। क्योंकि यहां श्री कृष्ण की ब्रजलीला का ही प्रमुख रूप से वर्णन हुआ है; तथा यहां गोपालकृष्ण की असुरसंहारक अद्भुत लीलाओं के अतिरिक्त गोपी—विहार की लीलाएं भी व्यक्त हुई हैं। इन पदों में भी परशुरामदेव ने भागवतोक्त ब्रजबिहारी गोपालकृष्ण का चित्रण किया है। भागवत की भांति परशु-राम—पदावली में भी कृष्ण—जन्मोत्सव और नन्द—वधाई के मंगल—प्रसंग चित्रित हुये हैं:—

मंगल गावत आवत गोपी ॥
नन्द भुवन आंगन अति ओपी ॥
जूथ जूथ जुवति जन आवैं ॥ हरि मुखि देखि देखि सुख पावैं ॥
धूप दीप कर कलस बंधावै ॥ चरण कंवल वंदे सिर नावै ॥
परम मुदित सब अधिक बिराजै ॥ सब करें वधाई बाजा बाजै ॥
उमगि उमगि आभूषण त्यागैं ॥ मगन भई नाचै हरि आगैं ॥
अति आनन्द प्रेम रस बरिसै ॥ पर्म विनोद देखि सब हरिषै ॥
तन मन सुद्ध परम रस पीवै ॥ हरि औसर देखै सब जीवै ॥
श्रवण सुजस विलसै सुख लोचन ॥ हरि कृपासिंधु सबके दुखमोचन ॥
सबकै प्राण जीवनधन येही ॥ परसापति गोपाल सनेही ॥

नन्दमहर के यहां प्रकट होने वाले वासुदेव श्रीकृष्ण को परशुरामदेव ने साक्षात् परब्रह्म विष्णु का अवतार माना है; तथा कंसादि असुरों से सृष्टि को मुक्त करने हेतु इनका अवतार होना प्रतिपादित किया है:—

वसुदेव देवकी कें वसुदेवा ॥
प्रकट भये आप भुवन अभेवा ॥
संख चक्र गदा पद्म विराजै ॥ चिह्न धरै चत्रभुज वपु भ्राजै ॥
व्रज अवतरै ब्रह्म धरि देही ॥ रछ्याकरण सकल के येही ॥
भादूं रुति वरिसा जल बाजै ॥ निसि दामिनी चमके घन गाजै ॥
प्रभु तिहि औसरी नन्द भुवनि पधारै॥मिटि गयो सोच कंस पचि हारै॥
इत उत मंगल सब सुख पावै ॥ परसा जन जीवै जस गावै ॥

गोपाल कृष्ण अपने सखावृंद के साथ वन में घूमा करते हैं; उनका यह विपिन–विहार अलौकिक है उनके सखा, गोपियां, वृन्दावन तथा क्रीड़ा–कौतुक सभी दिव्य और अप्राकृत हैं। परम सुंदर, परममधुर, सर्वलक्षणयुक्त, नव यौवनशाली तथा कोटि–कामदेवों का दर्प–दलन करने वाले श्रीकृष्ण ने रस–विलास के लिए अपने ही अनुरूप सारे लीला–विधान किये है। उनकी यह लीला, लीलाधाम, लीलापरिकर सभी दिव्य और नित्य नूतन है। गोपाल के इस वन–विलास को देखकर उनकी परम–भक्ता व्रज–प्रमदाएं विमोहित हो जाती हैं:—

वृन्दावन विहरत श्री गोपाल ॥
संग सखा लिए है वहुत ग्वाल ॥
वहु विलास जहां खेलि हासि ॥ प्रमदा सव परि है प्रेम की पासि ॥
रस विलास आनन्द मूल ॥ निविड़ कुंज तहां फूले हैं फूल ॥
जहां विधि वसन्त आनन्द होय ॥ तहां परसराम जन देखै सोय ॥

लीलावतारी परब्रह्म–कृष्ण व्रजविहारी के रूप में नित्य गोपी विहार करते हैं। रास–क्रीड़ा, जमुना–केलि, फाग–विहार होली आदि

के अवसरों पर कृष्ण का यह स्वरूप परशुरामदेव ने बड़े सुन्दर ढंग से चित्रित किया है। कृष्ण यहां भागवतोक्त योगेश्वर हैं तथा योगमाया से ही उनकी ये भक्त-मनोहारिणी लीलाएं होती हैं। व्यापक ब्रह्म त्रिभुवनपति श्रीकृष्ण भक्तों को आनन्द देने हेतु गोपाल वेष मे व्रजनारियों के साथ विविध विलास करते हैं। उनका क्रीड़ा विधान साजबाज सभी कुछ अलौकिक हैं तथा उन्ही के विग्रह हैं। जिस प्रकार बालक दर्पण में पडी अपनी परछाईं से क्रीड़ा कौतुक करता है, उसी प्रकार परब्रह्म श्रीकृष्ण भी अपने ही स्वरूप से रस-विलास का विधान करते हैं:—

कालिन्दी क्रीड़त जलधारा मन मोहन सुखकारी ॥
निरखि तरंग तरल मन उमगत अति सोभा सुखभारी ॥
संगि सखा बहुवृन्द विराजत बृजनायक अधिकारी ॥
झूलत अतिराजत हरि औसर सुर देखत बलिहारी ॥
करत सकल जलकेलि कुलाहल अरस परस नरनारी ॥
गावत सारंग राग सकल मिलि सुन्दर वर वनवारी ॥
त्रिभुवन वर पायो वसि आयो सोई व्यापक ब्रह्म विहारी ॥
बृजनारी गोपाल ग्वाल सरस विलसत सुमिल मुरारी ॥
ब्रह्मादिक वन्दत पद पावन सोई व्रजलीला धारी ॥
देखत हरि मंगल जन परसा मुनि बिसरत मन तारी ॥

रास—

श्रीकृष्ण की व्रजलीलाओं में रासलीला का मूर्धन्य स्थान है। रासलीला आध्यात्मिक मानी गई है। वेदों में परब्रह्म को 'रसोवैसः' कहा गया है। कृष्णा-श्रयी संप्रदायों में परब्रह्म श्रीकृष्ण को रसिक-शिरोमणि तथा रस-केन्द्र माना गया है। रस रूप श्रीकृष्ण में ही सब रसों की अभिव्यक्ति है। अतः 'रसोवैसः' के संसर्ग से उनकी लीलाओं में जो रस समूह प्रकट हो वही 'रास' है। ( 'रसानां समूहो रासः'- श्रीधर स्वामी। ) 'बहु नर्तकी युक्तो नृत्य विशेषो रासः' कहकर

वल्लभाचार्य ने रास को विशेष प्रकार का नृत्य बताया है । 'जिस दिव्य-क्रीड़ा में एक ही रस अनेक रसों के रूप में प्रकट होकर स्वयं ही आस्वाद्य-आस्वादक, लीला धाम और विभिन्न आलम्बन एवं उद्दीपन के रूप में क्रीड़ा करे-उसका नाम रास है' (हनुमान प्रसाद पोद्दार) परब्रह्म श्रीकृष्ण अजन्मा, अविनाशी, सनातन, नित्य और निर्विकार हैं; उनका चिदानन्द शरीर दिव्य है, । गोपियां भगवान की स्वरूप भूता अतरंगशक्तियां हैं । उनका अंग-प्रसग स्थूल शरीर और मन से सर्वथा परे और दिव्य है । गोपियां दिव्य-स्वरूप में भगवान की परम-भक्ता और पति परायणा वधुएं हैं जिनकी प्रेमाभक्ति मधुर भाव अथवा उज्जवल रस' के नाम से शास्त्रोक्त है । इस मधुर-रस की अनुभूति परम भावमयी श्रीकृष्ण-स्वरूपा गोपियों के हृदय में ही होती है तथा रास लीला के यथार्थ स्वरूप और परममाधुर्य का आस्वाद भी इन्हें ही मिलता है । परमरसमयी सच्चिदानन्द स्वरूप गोपियां श्रीकृष्ण की परम-भक्ता हैं जिन्होंने जड़ शरीर और जड़ स्थिति को त्याग दिया है, वे सूक्ष्म-शरीर से होने वाली स्वर्ग-मोक्ष की अनुभूति से भी परे हैं। उनकी इस अलौकिक स्थिति में उनके स्थूल शरीर के धर्म-कर्म एवं अग-प्रसंग की कल्पना करना मूर्खता की बात है। वे तो परम साध्वी हैं; ब्रह्मा, शंकर, उद्धव और अर्जुन ने भी उनके पद-रज-स्पर्श की कामना की है। भगवान ने गोपी-हृदय की परम-स्थिति को पहिचाना है और उनका भावपूर्ण करने के लिए अपने आप को असंख्य रूपों में प्रकट कर गोपियों के साथ महारास का विधान किया है । -'रेमे रमेशो–व्रजसुन्दरी भिर्यथार्भक: स्वप्रतिबिम्वविभ्रम:'–अर्थात् जैसे शिशु दर्पण में पड़े अपने प्रतिविम्ब से खेलता है वैसे ही भगवान रमेश ब्रजसुन्दरियों के साथ रमण करते हैं सक्षेप में–परम रसमय सच्चिदानन्द भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा उन्हीं की प्रतिविम्ब स्वरूपा गोपियों के साथ की जाने वाली आत्म क्रीड़ा एवं दिव्यलीला का नाम ही रास है ।

भागवत में श्रीकृष्ण की इस रासलीला का अत्यन्त सुन्दर वर्णन हुआ है । इसके दशम् स्कन्ध के उन्नतीस से तैंतीस तक के पांच-अध्याय

'रास पंचाध्यायी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। परशुरामदेव का रासलीला विधान भी भागवतानुसार ही वर्णित हुआ है। लीलाधाम वृन्दावन में शुभ्र-शरद-विभावरी को यमुना पुलिन पर रस विग्रह श्रीकृष्ण दिव्य रस का आस्वादन करने हेतु रास रचते हैं। वे योग माया-वेणु के वादन से परम रसमयी निज स्वरूपा गोपियों का रसोद्दीपन करते हैं। गोपियां वेणुनाद से प्रेरित हो गृह-त्याग कर पूर्णानन्द प्रियतम श्रीकृष्ण की शरण में आजाती हैं और उनके साथ रास-विलास में बेसुध हो जाती हैं। इस अलौकिक अवसर पर पवन की गति अवरुद्ध हो जाती है; यमुना, पशु-पक्षी, सचराचर विमोहित हो जाते हैं; तथा सुरगण तन्मय होकर भगवान के चरण-कमलों का ध्यान करते हुये निमग्न हो जाते हैं:—

हरि रास रच्यौ रस केलि करण कौ।
वृन्दावन जमुना तटि मोहन प्रगट करण वृज सौंज सरण कौ।।
लीनी कर मुरली हरि हितकरि तिहि औसर अधर निजु धरण कौ।।
सुनि सुनि धुनि आई ग्रह ग्रह तें सब गोपी पति आप सरण कौ।।
थकिन पवन मुणि जाण पर्म सुख जात न चलि जल जलधि भरण कौ।।
मोहै पसु पखी थिर चर सुर लोचत सकल सरोज चरण कौ।।
सोभित अति सखि सरद निसा सुख स्याम सनेह वरण कौ।।
परसराम प्रभु सुख दायक हरिमंगल कर दोष हरण कौ।।

परशुरामदेव के इन पदों में रास सम्वन्धी ८-१० पद मिलते हैं। यहां भागवत की भांति रास का कथाक्रम से वर्णन नहीं हुआ। यहां भागवत के विपरीत 'राधा' शब्द का स्पष्ट उल्लेख हुआ है। रासलीला का यह वर्णन काव्यकला एवं संगीत की दृष्टि से अनुपम है। समस्त पदों में रासलीला के आध्यात्मिक-स्वरूप का प्रतिपादन हुआ है। रसिक राधावर-मोहन सिर पर मोर पखा, कटि पर काछनी, हृदय पर वनमाला, अग पर पीताम्बर तथा अधरों पर वेणु धारण किये रासमंडल में स्थित हैं। वे गोपी-मंडल के साथ तानगति से नृत्य करते हैं, जिसे देख शिव-ब्रह्मादि

देव मोहित हो जाते हैं। निगमागम निर्गुण ब्रह्म ने भक्तों को आनन्दित करने हेतु ही सगुण-देह धारण कर दिव्य-परिकर के साथ अप्राकृत-रास का विधान किया है। वास्तव में यह रासलीला अप्राकृत है:—

खेलत रास रसिक राधावर मोहन मंगल कारी ।।
सोभित स्याम कमल दल लोचन संगि राधिका प्यारी ।।
सिर सिखण्ड उरि विविध माल मुरली धुनि करण मुरारी ।।
कटि काछनी बन्यौ उपरैंना पीताम्बर धार्यो वनवारी ।।
वन्यो अधिक गोपिन की मंडल मधि गोवरधन धारी ।।
कर सौ कर जोरें नटनागर नाचत केलि विहारी ।।
राजित अति नानागति निर्तत सुन्दर वर ब्रजनारी ।।
मोहे सिव ब्रह्मा मनोज सुर हरि औसर सुख भारी ।।
अविगति नाथ निर्गुण वपु धरि सगुण लीला विस्तारी ।।
भगत हेति आधीन अभै पद परसा जन वलिहारी ।।

परशुरामदेव की गोपियां कान्ताभक्ति की प्रतीक हैं। श्रीकृष्ण की लीलाओं का आनन्दानुभव इन्ही कृष्णवल्लभाओं को होता है; तथा ये ही श्री कृष्ण की इन अप्राकृत प्रेम लीलाओं का विधान करती हैं। श्रीकृष्ण के साथ उनके लीलाधाम वृन्दावन में गोपिकाओं के प्रकट होने का यही रहस्य है। यहां बसन्त विहार का विहार करती हुई आनन्दमग्न गोपियों का सुन्दर चरित्र प्रस्तुत किया गया है:—

हरि मंगल गावत व्रज की नारि ।।
सब मिलि आई जहां हुए मुरारि ।।
सीस कलस करि कनक थाल ।। हरि को पहिनावत पहुप माल ।।
ल्याई धूप दीप आरती साजी ।। मिलि वसन्त वधावै वृजराजि काजी ।।
ल्याई चौबा चन्दन अति सुवास ।। सब चरचत मिलि अति सुख निवास ।।
अति सोभई अबीर सौ मिलि गुलाल ।। चरचै अति सोभित श्री गोपाल ।।

अति दीन भई वहु परत पाय ।। कर जोरि रही इक सीस नवाय ।।
प्रेम मगन तन मन न संभार ।। सब्र देखैं सुर औसर अपार ।।
बाजै चंग उपंग मृदंग ताल ।। सब नाचत गोपी विविध ग्वाल ।।
सबै मुदित सुख सिंधु पाय ।। परसा प्रभु प्रगट वसन्त राय ।।

परशुरामदेव ने भगवान श्रीकृष्ण की असुर-संहारक लीलाओं का उल्लेख किया है । इन प्रसंगों में कृष्ण का लोकहितकारी असुर-संहारक रूप प्रतिपादित हुआ है । यह वर्णन भगवान् के अद्‌भुत ऐश्वर्य; बल, तेज एवं शौर्य का परिचायक है । भगवान् की समस्त असुर-सहारक लीलाएं भक्त-रक्षणार्थ हुई हैं । कंस-शिशुपाल वध इसी कारण किया गया है । द्रोपदी, अर्जु न-भीष्म की कामना से ही कृष्ण ने महाभारत की रचना की है भगवान् अशरण शरण, अनाथ बन्धु हैं; भक्त वत्सलता ही उनके अवतार का रहस्य है जहां कहीं भी उनके भक्तों ने करुण पुकार की वहीं वे विशिष्ट-देह में भक्त रक्षणार्थ अवतरित हुये हैं:—

सुनियत हरि जन के रछिपाल ।।
असरणसरण अनाथवन्धु प्रभु भगत वछल प्रतिपाल ।।
भगति हेत औतार धरि हरिजन की करन संभाल ।।
मुकत करन वसुदेव देवकी भयो कंस कुल काल ।।
जहां कहूं सुमरे ताहीं आये अति आतुर दीनदयाल ।।
पंडवपण राखण द्रौवपति हरि साखि सुडाल ।।
दोष सबै सो समझि आपकै राखै हृदै संभाल ।।
निन्दा करी असुर अर्जु न की सही न श्री गोपाल ।।
विरम न करी भये आतुर प्रभु सिर काट्यो लै थाल ।।
जग्य सभा मांही नृप देखत हरि मार्‌यो सिसुपाल ।।
राखी वहुत भगत भीषम की लज्या कृष्ण कृपाल ।।
करि लीनौं भारथ माहैं हरि अर्थ चरण चक्राल ।।
निराकार आकार धारि भयो भूपति मांहि भूपाल ।।
परसराम प्रभु हरि अविनासी व्यापक जनम निराल ।।

परशुरामदेव ने नृसिंह-राम-कृष्णादि पूर्णावतारों में मूलतः अभिन्नता प्रतिपादित की है। निम्बार्क-सम्प्रदाय कृष्णाश्रयी है जहां राम की आराधना का विशेष महत्व नहीं है पर परशुरामदेव ने तात्कालीन राम-कृष्ण सम्प्रदायों की अनैक्यता दूर करने के लिए अपनी रचनाओं में दोनों अवतारों का समान रूप से वर्णन किया है। उनके अनुसार नृसिंह-राम-कृष्णादि पूर्णावतार मूलतः एक ही हैं। भिन्न २ युगों में भगवान विशिष्ट-देह एवं व्यूहों के साथ अवतरित हुये है। भक्तों पर कृपा करने हेतु सतयुग में राम और द्वापर में कृष्ण प्रगट हुये हैं। वस्तुतः दोनों ही परब्रह्म नारायण हैं, उनका विशिष्ट-विग्रह तो युग की परिस्थितियों के कारण हुआ है। प्रत्येक युग में भगवान् हरि विशिष्ट नाम-रूप धारण कर अवतरित होते हैं। उनके नाम अगणित हैं। मत्स्य, वराह, वामन, नृसिंह, राम, कृष्ण उनके प्रमुख अवतार हैं जिनमें नृसिंह-राम-कृष्ण पूर्णावतार माने गये है। हरि के अनेक अवतारों में राम-कृष्ण स्वरूप को प्रमुखता दी गई है। राम-कृष्ण वस्तुतः सर्वान्तिर्यामी सर्वव्यापक परब्रह्म हरि हैं; परशुरामदेव ने कई स्थानों पर इन द्वय अवतारों में अभेद का प्रतिपादन किया है:—

वै हरि एक सकल के धाम ॥
जाकूं सेस सहसमुख गावै रसना दोइ सहस नये नये नाम ॥
मछ कछ वाराह सिंघ नर वांवन भृगुपति लियो औतार ॥
तामैं रामकृष्ण अधिकारी हरि दरियांतामैं लहरि अपार ॥
लोचन दोइ विराट बहु सर सूर्ज सोम परें कुल एक ॥
बद्रीपति जगपति रिणमोचन व्यापक सकल धरै वहु भैक ॥
भव विरंची हरि वरणि अगोचर निगमहूं अगम न पावै भेव ॥
परसराम प्रभु अंतरजामी पूरण ब्रह्म हमारे देव ॥

इतना ही नहीं पौराणिक कथन के आधार पर कृष्ण के पूर्व जन्म की घटना का उल्लेख भी परशुरामदेव ने इसी कारण किया है।

कहा जाता है कि भगवान् कृष्ण को अपने रामावतार के समय का सीता वियोग याद आगया और वे निद्रा में विरह-वेदना से व्याकुल हो उठे तथा असुर-संहार के लिए लक्ष्मण को सम्बोधित करते हुये धनुष-बाण मांगने लगे; यह देख यशोदा को बड़ा विस्मय हुआ। परशुरामदेव ने अपने पदों में इस घटना का उल्लेख कर रामकृष्ण स्वरूपों की अद्वैतता का प्रबल प्रतिपादन किया है:—

> कान्हर फेरि कही जु कहि तव तौंको मेरी संस रे ॥
> सोवित जागि जसोदा उठि सुनि सुत सवद न ऊंस रे ॥
> लछिमन बाण धनुष दै मेरे मोहि जुद्ध की हूंस रे ॥
> सिया साल कौ सहै सदा दुख करि हूं असुर विधुंस रे ॥
> प्रगटि आय जोद्ध विद्यावल सुमन सिन्धु सारौं सरे ॥
> परसराम प्रभु उमगि उठे हरि लीने हाथि हथूस रे ॥

## राम चरित–

परशुरामदेव के पदों में राम का लोकहितकारी असुर संहारक रूप ही प्रतिपादित हुआ है। आराध्यदेव राम भक्तों के सर्वस्व हैं तथा उनकी सारी असुरसहारक घटनाएं भक्त-वत्सलता के कारण ही हुई हैं। परशुरामदेव ने कृष्ण की भांति ही आराध्यदेव राम का ऐश्वर्य गाया है। रामकथा के कई प्रसंग यहां वर्णित हुये हैं। राम का जन्मोत्सव वर्णन, धनुप-भंग, हनुमान के समक्ष सीता का विरहोद्‌घाटन तथा रावण-वध के प्रसंग उल्लेखनीय हैं।

नृप दशरथ के यहां रामावतार हुआ है। मंगल अवसर पर विप्र वेद पाठ कर रहे हैं; वंदीजन वंदना करते हैं तथा मंगल-वाद्य बज रहे हैं। दशरथ मुक्त कर से दान दे रहे हैं। बड़ा ही मगल अवसर है:—

> नृप दसरथ गृह मंगलाचार ॥
> गावत उमगि उमगि सब जहां तहां प्रगट भये रघुपति औतार ॥

विप्र पढ़ैं वहु वेद महाधुनि नाचत सुर औसर निजसार ॥
घूरैं सरस नीसांण दुंदुभि सकल पुर जै जै कार ॥
अति आनन्द बधावी देखत वंदि पौल करैं जै कार ॥
पावत दान मान मन वंछित सेवत जे सम्रथ दरवार ॥
देत असीस सकल सिर नावत वदत चरण न पावत पार ॥
परसराम प्रभु अन्तरजामी राजिव लोचन प्राण आधार ॥

अयोद्धा में प्रगट होने वाले ये राम लीलावतारी परब्रह्म, देवाधिदेव, सकल-सृष्टि-विधायक है। सर्वान्तिर्यामी ब्रह्म के रूप में राजाराम सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है, राम परम सिन्धु हैं जिनमें सरिता प्रवाह को भांति सृष्टि का उद्गम-समागम निहित है। वे साकार-निराकार हैं; परम तत्व हैं, अनादि, अकल, अविनाशी है; इनकी लीला अगम्य होने से वे अगम्य-अविगत हैं। शेष-महेश-ब्रह्मादि देव भी इनके रूप और गुण का पार नहीं पा सके है। इनकी महिमा वाणी-निगमादि से भी परे है :—

वलि रघुपति रायन के राय ॥
जाकौ जस कीरति अमृत महिमा सेस सहस मुखि वरनि न जाय ॥
जाकौ वरणि विधाता भूल्यौ अन्ति लीयौ आपण समझाय ॥
सोई पति प्रकट पर्मपुर परहरि वे अवतरे अवधिपुर आय ॥
जाहि धरि ध्यान सम्भारत सिभु अरु निगम रटत नित ल्यौ लाय ॥
सोई पावत नही पार पचि हारैं वै ब्रह्म अगम जनमैं जनमाय ॥
प्रगट समीर पोसि सव सोंखै जो सलिता जल सिधु समाय ॥
परसराम प्रभु राम अकल मैं सकल रुप धरि आवै जाय ॥

परशुरामदेव के राम परमेश्वर, अनन्त शक्तिमान्, अद्भुत कर्ता और असुर सहारक हैं। उनकी लीलाएं मानवीय होते हुये भी अप्राकृत्व से ढ़की हुई है। भक्तों के उपकारार्थ ही उन्होंने अवतार लिया है। पथ्वी को असुरो से मुक्त करने हेतु रामवीर वेप में प्रकट हुए हैं। जनक

की राज-सभा में सारंगधर राम को देखकर असुर समाज भयभीत हो जाता है। धनुष के टूटते ही रावण जैसे दम्भी-दैत्यों का साहस टूट जाता है। दूसरी ओर जनक और सीता जैसे परम भक्त आनन्दित हो जाते हैं।–'गरीब निवाज' राम ने ऐसी कितनी ही असुर-संहारक-लीलाएं भक्त-हितार्थ की हैं:—

राजत सारंग कर धरैं आजि ।।
रघुपति राज सभा में सोभित सुन्दर राजि कै राजि ।।
दीनूं चाप चरण तरि करणि करण कौं हरि साजि ।।
उठै असह असुर देखत ही भूप चलै भै भाजि ।।
नाना रूप अनूप जनक कैं धारैं हैं गरीब निवाजि ।।
परसराम प्रभु प्रगट स्वयंवर राम सीया कैं काजि ।।

रावण-वध के प्रसंग में परशुरामदेव ने राम के ऐश्वर्य, बल, तेज, प्रतापादि अलौकिक गुणों का प्रतिपादन करते हुये उनका महावीरत्व प्रगट किया है। जो राम सर्वशक्तिमान् जगतपति हैं, वे ही आज लौकिक सेनानायक की भांति लंका आक्रमण की योजना में व्यस्त हैं। जिनका नाम-स्मरण ही महापतितों का भवतारक है, वे ही आज कपि-सैन्य सहित सिंधु पार करने को सेतु वान्ध रहे हैं। जीव-जगत तथा अखिल ब्रह्मांड के अधिनायक राम की शक्तियां अनन्त और अजेय हैं, जिनके निमिष मात्र से ब्रह्मा का सृष्टि-कल्प पूर्ण हो जाता है, उन महा-काल राम की क्रोधाग्नि में रावण लंका सहित भस्म हो जायगा। महा प्रलयंकारी राम दशों दिशाओं में वाण वर्षा कर रहे हैं; महाकाल की झाल में सुभट्ट–असुर पतंग की भांति जल रहे हैं। जो राम गज,सिंह, चींटि आदि सभी जीवों के पालन हार है; तथा भक्त जिनकी शरण में मुक्ता फल प्राप्त करते हैं वे ही आज सती सीता की करुण–पीड़ा से व्याकुल हो वीर–वेश में प्रकटे हैं:—

देखि यह मोहि अचिरज आवै ॥
जाकौं नाम अतिरगिरण तारण सु महासिंधु करि सिन्धु वन्धावै ॥
जाकी सकति जगपति जग जीते जगत जीव वलि सौ न वन्धावै ॥
जाकै काजि ब्रह्म कपिदल वल वीरा रिण मांभ सूर कहावै ॥
प्रलै कालि निजरूप महावत परमा पति महा वीर वीरा रस भावै ॥
रामचन्द्र रिण रमित विराजत कर गहि वाण दसौं दिस धावै ॥
सबै सुभट्ट भै कंपनि पौरिष महाकाल की भाल दिखावै ॥
भपटत लपट असुर गन दाभत सुर्ण समान पतंग गिरावै ॥
महामृगराज नमै दूरि चित दैनि जग जरा जन चींटि चावै ॥
पर्म हंस विलसत मुकताफल ताकौं भोजन कीट न भावै ॥
जाकै अर्थ पलक ब्रह्म वीते ताकों क्रोध नृपति कहा पावै ॥
परसराम रघुपति हित सौं सति सुदरद निसांण सुणावै ॥

परशुराम ने राम कथा के इस प्रसंग का विशद वर्णन किया है। मदोदरी और विभीषण द्वारा रावण को समझाने वाले प्रसंग भी वड़े सुन्दर हैं; जिनमें राम के अतुल-वल और ऐश्वर्य का आलंकारिक वर्णन हुआ है:—

(१) हो प्रिय रघुपति लंक पधारे ॥
लये सब सेन संगि वै आवत दीसत वादर कारे ॥
धावत हैं वनचर दिस दिस तें अति आतुर अहंकारें ॥
मानं घटा मेघ की उमगि घूरत अति जलधारै ॥
तिरत सिला सितवंध सिन्धु जल करत केलि किलकारैं ॥
सिन्धु पारिवर वारि मद्धि वहु अति चंचल वह भारै ॥
सिन्धु सकति करि दूंरि आपवल कपि समूह हरि तारै ॥
आय भरे भुवन भीर सव वहु रोकै हैं पौरि पगारै ॥
मानं गिरवर तजि भजत जलधि कौं जल पूरित नदी नारै ॥
आय वस्यो दल वल सिन्धु तिरि जो महाकाल असुरारे ॥

दिष्टि अग्नि करि जिनि आगैं हरि बहु लंकासुर जारै ।।
इन रघुपति अनन्त अन्त बिनि रिरिण रावण बहु मारै ।।
तैरो कहा अधिक वल उन तें जु हरि हिरिनाखि मारैं ।।
जीत्यौ नहीं जुद्ध करि कोई जू बहुत असुर पचिहारै ।।
मानि कंत सिख सौंपि सिया लै मेटौ साल हमारै ।।
परसा प्रभु सौं मिलौ दीन होय करौ बहुत मनुहारै ।।

(२) रघुपति हितू हमारै तात ।।
मनक्रम वचन सत्य करि रसना गावत सुनत सदा निसि प्रात ।।
अगम नीर जहां नांव न चलै पंखी न पहुंचै लगै न घात ।।
ता जल मैं रघुनाथ नांव तें देखौ सिला तिरि ज्यौं पात ।।
देखि प्रगट कपि भुवन भुवन परि फिरत निसक न नैक डारत ।।
रामचन्द्र वल चपल विचारत गिणत न तौहि पलक पलमात ।।
सोई मतिमूढ़ अज्ञान अन्ध पसु जाहि न भावै हरि जी की बात ।।
परसराम प्रभु प्रगट विराजत मेरी जीवनि वै सुनि भ्रात ।।

वनवास के चौदह वर्ष पूर्ण हुये और राम रावण का संहार कर अयोध्या लौट रहे हैं; कितना मंगल अवसर है, पुरवासियों की चिर-कामना पूर्ण होरही है। सभी नर-नारी कंचन-कलश पुष्पादि लेकर राम का अगवानी कर रहे हैं; भ्राता भरत की प्रेमदशा को देखकर "लीला" वतारी ब्रह्म राम नेत्रों से जल की वर्षा कर रहे हैं। सरस सुमंगल वाद्य वज रहे हैं:—

राजत है रघुपति पुर आवत ।।
सोलह कला संपूर्ण ससि ज्यौं निसि मैं सोभा सिन्धु दिखावत ।।
घरघर के नरनारि बाल लुनि सिमिट सकल सनमुखि उठि धावत ।।
चन्दन तिलक थाल माला करि कनक कलस आरति बंधावत ।।
मिलत भरथ रघुनाथ सौं भ्राथा दरस परस सब जन सुख पावत ।।
ब्रह्म अगम गमि निगम न पावत ताकै लोचन जल बरिखावत ।।

अति औसर कपि सेन विचारत महाचरित गति उर न समावत ॥
घुरे सरस निसांण सुमंगल जय जय सुर परसा जन गावत ॥

यहां राम कथा का सबसे सरस प्रसंग सीता विरह का है। रामदूत हनुमान के समक्ष सीता की जो विरह-वेदना परशुरामदेव की इस पदावली में प्रकट हुई है, वह अद्वितीय है। तत्सम्बंधित पदों में सीता की असह्य-वेदना, मिलन-उत्कंठा और वि व कल्याण की भावना मार्मिक ढंग से व्यक्त की गई है:—

रघुपति हितू विना दिन जात ॥
सोई दिन आदिन अलेखै लागत निसि ही निसि होत न प्रभात ॥
इह अति अन्देस जू राम विण राकिस अधिक होइ किनि तन घात ॥
ज्यौं मृगीवन विछुटी वाग तें सोइ देखि असुर पुर अधिक डरात ॥
सही न सकत दुख दर्द डाह उर आस लाग्यों नहिं प्राण समात ॥
सूलत सर हरि नीर विन प्यास सु चात्रिग ज्यौं विललात ॥
पावत नाही वहुरि बावरी याहु अबला अति भई अनाथि ॥
नाहिन कछु अवि वसि मेरो वान भई तापति कै हाथि ॥
वीचि पर्‌यो जलनिधि को अन्तर यहां को आवै कहूं संग न साथ ॥
क्यो मिलिये परसा प्रभु को अब वै हैं कछू सू जाणैं रघुनाथ ॥

प्रत्युत्तर में हनुमान द्वारा दिया गया आश्वासन ऐसा लगता है मानों कोई वीर पुत्र अपनी वन्दिनी माता को अविलम्ब मुक्त कराने की चेष्टा कर रहा हो:—

अब माता मन जनिहि डुलावो ॥
धीरज धरो भजो सोई सति करि मति चित तें न भुलावो ॥
विछुरन विरह वियोग सुरति धरि अब तन कों न जरावो ॥
सोई दुख हरण करण कारण प्रभु सोई सुमरि सुख पावो ॥
अब एक निसास सहै कौ तेरो त्रिभुवन प्रलै पठावो ॥
कितियक संक असुर दससिस की करि जो वरत लजावो ॥

जाके पति रघुनाथ महाबल ताहि कहा पछितावो ।।
परसराम प्रभु प्रगट करौं अब मांगौ आई बधावो ।।

रामकथा के अन्य स्थल यहां वर्णित नहीं हुये हैं। इस प्रकार हम देख आये है कि परशुराम के इस साहित्य में राम कृष्ण-दोनों अवतारों का व्यापक वर्णन हुआ है। परशुरामदेव के कृष्णभागवत के गोपाल कृष्ण हैं; वे किशोर-वय में गोपियों के साथ प्रेम-लीलाएं करने वाले गोपीश्वर-हैं तथा रास में वे राधावर हैं पर इनका यह स्वरूप निम्बार्कीय-कृष्ण से भिन्न है। निम्बार्कीय-कृष्ण निकुंज-विहारी हैं जिनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व राधा में समाया हुआ है। निम्बार्कीय रसिक-भक्त सखी-स्वरूप में राधा की ही अनुचरियां हैं, वहां तो राधा ही सर्वेश्वरी है कृष्ण तो राधा लाल हैं। कृष्ण के इस स्वरूप का प्रतिपादन परशुरामदेव के गुरू हरिव्यासदेव ने अपने महावाणी ग्रथ में किया है और उल्लेखनीय बात यह है कि परशुरामदेव के काव्य पर महावाणी का प्रभाव न होकर भागवत-महापुराण का प्रभाव है। यही कारण है कि परशुरामदेव के साहित्य में प्रछन्न-अप्रछन्न किसीभी रूप में निम्बार्कीय सखी-उपासना प्रकट नहीं हुई है। इसी प्रकार परशुरामदेव ने निर्गुण-संतों की भांति 'राम' शब्द का प्रयोग निराकार ब्रह्म के लिए भी किया है। यहां उनके राम दाशरथि राम से भिन्न निर्गुण-ब्रह्म के प्रतीक है जिनके नाम हरि, सहज, साहब, साईं, सतगुर है; वे ही रहीम और करीम है। ऐसे राम रूप-रंग-देह रहित तथा अलख है; कागज पर उनके स्वरूप का विवेचन नहीं किया जा सकता:—

अविगति गति तेरी को धो पावै ।।
अगम अगाही काहि गमि आवै ।।
अकथ अतीत सु कथ्यो न जाई ।। कागद अलख लिख्यौ न समाई ।।
आदि न अन्त न हीण बड़ाई ।। नहीं अवरण वरण सुदेत दिखाई ।।
काया कर्म काल नहीं खाई ।। सहज सून्य अकल कल लाई ।।
परसापति गति लखी न जाई ।। राम सुमिर जीऊं जस गाई ।।

भक्ति-विवेचन—

परशुरामदेव का यह काव्य भक्ति-तत्त्व की दृष्टि से विशेषतया उल्लेखनीय है। यहां सभी प्रकार के भक्ति-भावों का सैद्धान्तिक विवेचन हुआ है, आचार्यों ने भक्ति के जितने भेद निर्धारित किये हैं यहां उन सब का निरूपण विशद रूप से हुआ है। भक्ति के दो प्रमुख भेद माने गये हैं-साधन और साध्य। साधन-भक्ति को विधिमूला तथा साध्य को रागमूला कहा गया है। वैधी, नवधा मर्यादा, शास्त्रीय आदि साधन-भक्ति के विविध स्वरूप हैं। साध्य-भक्ति को रागात्मिका, प्रेमा-भक्ति, रागानुगा, प्रेमलक्षणा, उत्तमा आदि नामों से भी व्यवहृत किया जाता है। भागवत में भक्ति के सात्विक राजसी, तामसी और निर्गुण चार भेद बताए गए है। भेद-दर्शी, क्रोधी-स्वभाव वाला मनुष्य यदि हिंसा-दम्भ रख-कर भी ईश्वर से प्रेम करता है तो वह परमात्मा का तामस-भक्त है। विषय, यश-ऐश्वर्य की कामना से भक्ति करने वाला राजसी-भक्त; तथा पाप-क्षय हेतु पूजन-कर्म परमात्मा के समर्पित करने वाला भक्त सात्विक कहा जाता है।[1] भागवतोक्त निर्गुण भक्ति निष्काम-भक्ति का ही दूसरा नाम है जहां निष्काम-भक्त सालोक्य-सामीप्य-सारुप्य-सायुज्य-मुक्ति का भी तिरस्कार कर देता है। जिस प्रकार गगा का प्रवाह अखंड रूप से समुद्र की ओर प्रवाहित होता है उसी प्रकार परमात्मा के गुणों के श्रवण-मात्र से भक्त के मन की गति तैल धारावत् अविच्छिन्न रूप से सर्वान्तर्यामी के प्रति हो जाती है। परमात्मा के प्रति इस प्रकार का अनन्य प्रेम एवं निष्काम-भाव ही निर्गुण-भक्ति योग है जो सात्विक-राजसी-तामसी तीनों वृत्तियों से श्रेष्ठ है। यह अनन्य-भाव अप्राकृत प्रेम की स्थिति है; इसी को परम पुरुषार्थ अथवा साध्य कहा गया है।[2] नारद-पांचरात्र में इसे 'निर्मल' भक्ति कहा गया है; यही भूमानन्द है, अहैतुकी तथा पराभक्ति है। परवर्ती आचार्यो ने इसे 'उत्तमा' कहा है।[3]

---

१—भागवत ३/२९/७-१०/ २—वही० ३/२९/१०-१४/

३—हरिभक्तिरसामृत सिंधु—(रूप गोस्वामी)—पूर्व प्र० ११।

भागवत के सप्तम स्कन्ध में प्रहलाद ने श्रवण, स्मरण, कीर्तन, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्म निवेदन नामों से न वधा भक्ति का विवेचन किया है; जिसे तीन वर्गो में विभाजित किया जाता है[1]:-

(१) श्रवण-स्मरण-कीर्तन:—श्रद्धा पर आधारित हैं अतः इन्हें विशुद्ध निर्गु ण भक्ति कहते हैं।

(२) पाद सेवन-अर्चन-वंदन—साधन होने से वैधी भक्ति के अंग कहे जाते हैं।

(३) दास्य—सख्य—आत्मनिवेदन:—भाव-साधन हैं जो रागात्मिका भक्ति के अंग कहे जाते हैं।

नारद-भक्ति-सूत्र ८२ में प्रेमरूपा-भक्ति की ग्यारह आसक्तियों का विवेचन हुआ है—गुणमहात्म्या सक्ति, रूपासक्ति; कान्तासक्ति, स्मरणा-सक्ति, दास्यासक्ति, सख्यासक्ति, वात्सल्यासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, तन्मया-सक्ति, परमविरहासक्ति। हरिभक्ति-रसामृत सिंधु में रूपगोस्वामी ने 'उत्तमा' भक्ति के तीन भेदों का निरुपण किया है—साधनभक्ति, भावभक्ति तथा प्रेमाभक्ति। साधन भक्ति के दो प्रकार हैं वैधी और रागानुगा। भावभक्ति शान्त, दास्य, सख्य; वात्सल्य और मधुर भावों के आलम्बन से पांच प्रकार की होती है। यही भावभक्ति रस स्थिति में पहुंचकर प्रेमाभक्ति कहलाती है।

परशुरादेव के इन पदों में उपर्युक्त भक्ति-अवस्थाओं एवं भक्ति-प्रकारों का सांगोपांग चित्रण हुआ है। यहां भक्त-कवि ने अपने प्रभु के समक्ष अपने मन की सच्ची अभिव्यक्ति की है। उनकी आत्मा ने परमात्मा के साथ रागात्मक-सम्बन्ध स्थापित कर महाविरह-रस के मार्मिक उदगार प्रकट किये हैं। यहां भक्तात्मा परशुरामदेव ने दास्य-सख्य-कान्ता आदि भक्ति-भावों को प्रमुख रूप से ग्रहण किया है। दूसरे रूप में परशुरामदेव ने भक्ति-महात्म्य का प्रतिपादन किया है तथा संसार को भक्ति-तत्व का रहस्य समझाया है। उनके अनुसार भक्ति ही मनुष्य जीवन का सार है। हरि-भक्ति बिना जीवन निष्फल है; जिस प्रकार शूर बिना युद्ध-स्थल, राजा बिना राज्य, सूंड बिना

१—भागवत ७/५/२३—२४।

गजराज, पीव विना नारी, जल विना सिंधु, पराग विना पुष्प, कीर विना नांव, पूंजी विना व्यापारी का होना निरर्थक है उसी प्रकार हरि-भक्ति रहित मानव जीवन व्यर्थ है:—

जीवन निफल हरि भगति विसारी ॥
आसावसि वेकाम राम तजि वादि मुएं भी धर्म भिखारी ॥
ज्यौ कायर दल चलत सूर विण धीर न धरत गहै भंभारी ॥
जाणि परत वलहीण राजविण जो पहुच्यौ तिनहि चढ़ि मारी ॥
ज्यौ गजराज अनाथ नाकविण पीव विहुण सोभित नहीं नारी ॥
सिंधु अपीव पहुप विन परमल सकल साच विण विपै विकारी ॥
ज्यौ जल नांव कीर विण डोलत पूंजी तूट थकित व्यौपारी ॥
परसराम हरि भगति हीण नर नांव कहाई महानिधि हारी ॥

संसार के वैभव में जीव की प्रवृति होना भक्ति-विरोध है; इस प्रवृतिपरक जीवन से अलभ्य मानव जीवन की हानि होती है; उसका आवागमन वना रहता है; और जीव निरन्तर कालचक्र में बंधा रहता है। अतः परशुरामदेव ने निवृतिपरक-वैराग्यपूर्ण जीवन का प्रतिपादन किया है:—

नरदेही धरि हरि न कह्यौ जो ॥
धिग जीवन जग जनम गंवायौ भौसागर भ्रम धार वह्यौ जो ॥
देखि विभव विस्तार अलप सुख अभिमानी मन मगन भयो जो ॥
माया मोह विलास विपै सुख पावक परि तन प्राण दह्यो जो ॥
कनक भुवन नृप राज महावल है गै वंदी करत गयो जो ॥
मानं वसत भुजंग सदानिसि नीर विनां वनि कूप ढह्यो जो ॥
अति अहंकार विकार आप वलि गयो सुण्यो न सुजस लयो जो ॥
परसराम भगवंत भजन विन अनुज सहित जमलोकि गयो जो ॥

हरि-भक्ति का प्रादुर्भाव वैराग्य-भाव से परिपूर्ण निवृतिपरक हृदय में होता है जो माया-मोह, सुख-दुख, हानि-लाभ के प्रपंचों से परे

नितान्त शुद्ध और सरल होता है। मन की इसी सुसंयत-समभाव-स्थिति का नाम 'संतभाव' है। इसी स्थिति में राम के-प्रतिअनुराग उत्पन्न होने लगता है और भजन के प्रति दृढ़-विश्वास का प्रादुर्भाव होता है जिससे अन्ततः समस्त दुखों का नाश होता है, तथा जीव को परमसुख की प्राप्ति होती है। परशुरामदेव भगवान् से इसी उच्चतम जीवन की कामना करते हैं:—

कब गाइवो जीवनि राम, होवौ मन को विराम,
वसियो रसुनाँ नाम हरि ही हरी ॥
कब कटिबो आसा को पास, करि बौ कर्म को नास,
हो वौ भजन अभ्यास, जनम सही ॥
कब पाइवौ प्रेम निवास, हरि कौ हदै प्रकास,
आइवौ मन वेसास, दुरति दही ॥
कब छूटिवौ काल भै भागि, रहिवौ नाम सौं लागि,
जीतवो जनम जागि, भागि जो होई ॥
कब होईवौ संत समागि, रहिवौ ज्यौं अनुरागि,
जरिवौ न भ्रमि आगि, सुख है सोई ॥
कब कहिवौ जगि वेकाम, मिटवौ सुख सकाम,
चितवौ जापति जाम, सुफल घरी ॥
कब पाइवौ मन विश्राम, हरि सौं सुख सुधाम,
है प्रभु परसराम, सरण-खरी ॥

भगवान् के प्रति भक्त हृदय में दृढ़-आस्था, अमिट-विश्वास, तथा अगाध श्रद्धा का होना आवश्यक है; इनके उत्पन्न होते ही संसार से विरक्ति हो जाती है, साधना के विभिन्न साधन-कर्म निरर्थक हो जाते हैं और भगवान् के चरणों में अनुराग होने लगता है। परशुरामदेव ने इसी विशुद्ध भक्ति-भावना का प्रति-पादन किया है। वे भक्ति मार्ग में विधि-निषेध के प्रतिपादक हैं, उन्होंने व्रत-पूजा-पाठ, जप-तप-तीर्थ, कुल-आचार-विचारादि को आडम्बर माना है। उनके मतानुसार दृढ़ अनुराग और

श्रद्धा के साथ राम-नाम का अंतर्जाप ही सर्वोपरि भक्ति साधन है:—

राम राम राम सूं मेरे काम ।।
और सबै बकिवौ बेकाम ।।
कुल आचार-विचार न जाणूं तप तीरथ व्रत की नहीं आस ।।
ऊंच नीच कुछ समझि न आवै निहचै हरि सुमरण बेसास ।।
कथनी कथूं न व्यास कहाऊं आस लवधि जित तित नहीं जाऊं ।।
राम चरण तजि और न भावै हरि समृथ की सरणि रहाऊं ।।
परसा खटक्रम पाक पूजा विधि करणी करि उतिम न कहाऊं ।।

## वैधी भक्ति (अ) श्रवण-स्मरण-कीर्तन;—

मन की एकाग्रता के लिए भगवान् का श्रद्धा-पूर्वक नित्य श्रवण-स्मरण-कीर्तन अपेक्षित है। यहां भगवन्नाम का ही विशेष महत्व है। भक्त श्रद्धा पूर्वक भगवान् के गुणों-लीलाओं एवं ऐश्वर्यों का गान करता है। परशुरामदेव ने भगवान् के गुणों का कीर्तन-स्मरण अनेक पदों मे किया है। उनके प्रभु भक्त-प्रतिपाल, पतितपावन, अशरणशरण और भक्त-वत्सल है। गज-गनिका-ध्रुव-प्रहलाद-द्रोपदी आदि भक्तों का उद्धार भगवान् के इसी विरद की साक्षी देता हैं:—

वरद उधारण को हरि सार्‌यौ ।।
भव बूडत गज पारि पठायो ।। गज सगति हरि ग्राह वुलायो ।।
गनिका हरिपुर मैं घर छायो ।। विप्रन फिरि ग्रभ संकट आयो ।।
सोई हरि अतर रहत समायो ।। परसा मन दै जात न गायो ।।

हरि नाम श्रवण-स्मरणकीर्तन का बड़ा वहत्व है। यह नाम-भक्ति मन को पवित्र करने वाली है। हरि नाम में अद्‌भुत-अलौकिक चमत्कार है। परशुरामदेव ने हरिनाम के इस रहस्य को कितनी सुन्दर-अनुप्रासिक भाषा में व्यक्त किया है। भगवन्नाम ही सर्वकार्यसारण-भवतारण है; यही विकारो से मुक्त कराने वाली दिव्य-औषधि है और ईश्वर साक्षात्कार कराने वाला महामंत्र है:—

अघ तिमिर दूरत हरि नांव तें ॥
क्यौं रजनी चलिवै की चंचल थिर न रहत रवि घाम तें ॥
सुमिरण सारण प्रगट जसु जाकौं भवतारण गुणग्राम तें ॥
जामण मरण विघण टारण कोई और नहीं वड़राम तें ॥
कलह केलि कलु काल कलपना कटत कलपतर छाम तें ॥
मिटत दुरति दुर्वास दुसह दुख सुख उपजत अभिराम तें ॥
पतित पावन पद परसत छूटत छल बल काम तें ॥
तन मन सुद्ध करण करुणामय नर निर्मल निहकाम तें ॥
हरि हरि हरि सुमरन सोई सुकृत विरक्त मन धन वाम तें ॥
असरण सरण प्रेम रत जन कौ करण अरति भ्रम भाम तें॥
हरि सुमरें ताकौ भय नाहीं निर्भै निज विश्राम तें ॥
लिपें नहीं संसार सु परसा अधिकारी जल जाम तें ॥

श्रवण-कीर्तन की भांति स्मरण-भक्ति का भी महत्व है। मन को विषय-वासनाओं से हटाकर वार वार प्रभु का स्मरण करना, हरिनाम का मनन एव मानसिक जाप करना ही स्मरण भक्ति है। यही नाम स्मरण पाप हरण है तथा मोक्ष दायक है; जिन्होंने हरि स्मरण किया है उन्हें इसका शुभ फल मिला है:—

हरि हरि सुमरि न कोई हार्‌यो ॥
जिन सुमर्‌यौ तिनहि गति पाई राखि सरणि अपणी निस्तार्‌यो ॥
केरूं सभा सकल नृप देखत सती विपति पति नाम संभार्‌यो ॥
हा हा कार सबद सुनि संकट तहि औसरि प्रभु प्रकट पधार्‌यो ॥
परसराम प्रभु मिटै न कवहूं साखि निगम प्रहलाद पुकार्‌यो ॥

(ब) पाद सेवन-पूजन-अर्चन और वंदन:—

सगुण संप्रदायों में वैधी-भक्ति की इन साधनाओं का वड़ा महत्व है। भक्त जब अपने सेव्य-स्वरूप की इन विधियों से साधना करता है

तो उसके मन में दास्य-भाव का उद्रेक होता है और धीरे धीरे वह मानसिक पाद पूजन-अर्चन की कोटि में पहुंच जाता है। परशुरामदेव के काव्य में इन भक्ति-साधनों के पर्याप्त लक्षण मिलते हैं:—

(१) गोविन्द मैं वंदीजन तेरा ॥
प्रात समै नित उठि गाऊं तौ मन मानै मेरा ॥
कितम कर्म भर्म कुल करणी ताकि नाहिन आसा ॥
तेरा नांव लियां मन मानै हरि सुमरण वेसासा ॥
नित करूं पुकार द्वार सिर नाऊं गाऊं ब्रह्म विधाता ॥
परसराम जन करत वीनती सुनि प्रभु अवगति नाथा ॥

(२) सेवा श्री गोपाल की मेरे मन भावै ॥
मनसा वाचा कर्मणा याही मन आवै ॥
करि दंडौत सनेह सौं सनमुख सिर नावै ॥
लोचन भरि भरि भाव सौं हरि दरसन पावै ॥
हरि चरण कंवल हिरदै सदा थिर बसावै ॥
प्रेम नेम निह्चौ गहै मन दै लिव लावै ॥
उमगि उमगि आनन्द सौं हरि के गुण गावै ॥
यौं प्रसाद फल परसराम जो हरिभगत कहावै ॥

### प्रेमाभक्ति

प्रेमाभक्ति की दो अवस्थाएं मानी गई हैं-प्रेमावस्था और भावावस्था। दास्य-सख्य-आत्मनिवेदन भक्ति-रस के उत्पादक भाव हैं। रूपगोस्वामी ने पांच भक्ति रस माने हैं और समस्त भावों को इन्हीं के अन्तर्गत माना है। आपने प्रीति रस में दास्य भाव, प्रेम में सख्य भाव, वात्सल्य में वात्सल्यता, मधुर रस में आत्मनिवेदन तथा शांत रस में वैराग्य भाव माना है। इस प्रकार आपने शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर-पांच प्रकार की रसोपासना का विवेचन किया है। परशुरामदेव

के इन पदों में दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन भावों की प्रमुखता है। इस प्रकार परशुराम दास्य-सख्य-मधुर भक्ति के श्रेष्ठ कवि हैं।

दास्य:—

भक्त के शान्त-दास्य भाव समन्वित होकर चलते हैं। यहां भक्त भगवान् के ऐश्वर्य-सामर्थ्य एवं कारुण्य का गुणगान करता हुआ अपने प्रति दया की याचना करता है। भगवान् सर्व समर्थ हैं, भक्त के स्वामी और नाथ हैं; भक्त अकिंचन-असमर्थ और हीन है। दास्य-भक्त इसी प्रकार के गुणानुवाद के साथ निवेदन करता हुआ भगवान् के समक्ष अपने दोषों का खुलकर प्रकाशन करता है। भगवान् की भक्त-वत्सलता, अशरणशरण वृति और दयालुता पर उसे दृढ़-भरोसा होता है। वह उनसे दीनता पूर्वक कातर पुकार करता है "भगवान् मेरी रक्षा करो"—यही दास्यभक्ति का सार है।

भगवान् ही दास्य-भावोपासक के परमाश्रय हैं ; उन्हीं की दयालुता, कृपालुता एवं भक्तवत्सलता पर उसे पूर्ण भरोसा है। वह उनकी भक्त-हितकारिणी करूणा पर रीझ कर उनका स्तवन करता है; यही उसका आनन्द है:—

भगतवछल मोहि गायो ही भावै ॥
मन क्रम वचन सत्य सुमिरन कौं हरि बिन हृदै और नहिं आवै ॥
उग्रसेन को छत्र सिंघासण दै आपण आगै सिर नावै ॥
ह्वै सेवग सुकुंवार सकलपति चरण जुगल कर सौं सहिरावै ॥
करि सेवा सब टहल जाय की चरण धोय नृप बोलि जिमावै ॥
दीन दयाल भक्त हितकारी पारब्रम्ह कर झूंठि उठावै ॥
जिन लीनो चक्र महाभारत में देखत सुभट प्रकट जो धावै ॥
राखत पैंज भगत भीषम की अपनी निज परतीति दुरावै ॥
सुरग सधीर रूप की सेवा गज चींटि कै नैंत्र समावै ॥
परसराम भगवंत भगतवसि महासिंधु को बूंद नचावै ॥

दास अपने स्वामी के समक्ष अपनी असहायावस्था, दीन-हीन-दशा का वर्णन करता है, तथा स्वामी की सामर्थ्य का उद्घाटन करता हुआ उद्धार के लिए युक्तियुक्त निवेदन करता है:—

तुम हरि असरणसरण सबै औ गाहैं ॥
हम असरण सरणाई चाहैं ॥
तुम दीनबन्धु हरि दीनदयाला ॥ हम हैं दीन आधीन दुखाला ॥
तुम अनाथ के नाथ कहावत ॥ हम अनाथ क्यों तुमही न भावत ॥
तुम कृपनपाल कृपासिंधु कहावो ॥ हम हैं कृपन तुम कृपा न दुरावो ॥

दास भक्त निरन्तर भगवान की सेवामें ही रहना चाहता है; उन्हीं की शरण में आश्रित होकर रहना उसका आनन्द है। उसे किसी भी अन्य उपाय-उपासना का भरोसा नहीं होता। वह दीन-हीन-पतित कैसा भी है, हरि का ही दास है। अतः वह स्वामी से यही निवेदन करता है कि मेरी लाज आपके ही हाथ है; आप जैसे भी हो मुझे अपना लो:—

मेरी तुम ही कौ सब लाज बड़ाई ॥
ज्यौ जाणूं त्यौ ही त्यौ राखो अपणूं कर अपणूं हरि राई ॥
कर्म उपाय बहुत करि देखे मति निहकलपि त्रिपति न आई ॥
हरि कलप तरोवर की छाया बिण कबहूं मन कलपना न जाई ॥

शरणागत भक्त भगवान् से उनकी कृपा की याचना करता है। उसे सांसारिक सुखों की तो क्या मोक्ष की भी अभिलाषा नहीं होती, वह तो भगवान की दृढ़-भक्ति की आकांक्षा करता है। परशुरामदेव निवेदन करते हैं कि मुझ दीन पर आप इस प्रकार कृपा करो कि मन-क्रम-वचन से मैं आपकी सेवा में रत हो सकूं। हृदय में आपके प्रति दृढ़ विश्वास हो जाय, मेरी रसना आपके कीर्ति-रस में सिक्त हो जाय, श्रवण-यशगान से परिपूर्ण हों, प्राणों में अभय-रूप की झांकी अंकित हो जाय, नैन नखसिख सौंदर्य पर मोहित हो जायं; मैं नत मस्तक, करबद्ध हो चरणों में श्रद्धा

सुमन चढ़ा सकूं और तन मन धन वार सकूं। क्या ही मार्मिक अभिलाषा है ?

याही कृपा दीन पर कीजै ।।

मन क्रम वचन तुम्हारी सेवा सुमिरन मौकों दीजै ।।

दिढ़ वेसास उपासन नरहरि उपजै प्रेम भगति मन धीजै ।।

पर्म रसाल रसायन रसुनां गाइ गाइ श्रवननि सुणि लीजै ।।

अभै करण निजरुप तुम्हारो प्रगट देखि मेरो प्राण पतीजै ।।

सीस नाय कर जोरि सुमन दै जनम सुफल अपनौ करि लीजै ।।

परम उदार दरस नखसिख लौं निरखि निरखि लोचन भरि पीजै ।।

परसराम परम सुमंगल परसत वारि वारि तन मन डारी जै ।।

दास्य-भावना का चरमोत्कर्ष उस समय आता है जब भक्त अपने में ही अपरिमित दोषों की विद्यमानता प्रकट कर देता है। स्वामी के समक्ष पश्चाताप करता है, अपने पर खीझता है; तथा आत्मग्लानि में डूबा हुआ स्वामी से उद्धार की कातर पुकार करने लगता है। यहां दास्य-भाव में निमग्न आचार्य परशुरामदेव का भक्त हृदय गहरी आत्मग्लानि प्रकट कर रहा है:—

कबहूं हरि प्रीतम न सम्हार्‌यौ ।।

स्वामी पणैं भरोसे तेरे जनम जु बाजी हार्‌यौ ।।

हितकरि करी पराई निन्दा डिंभ कपट उर धार्‌यौ ।।

भेष पहरि आसावसि भर्‌म्यो हरि वेसास बिसार्‌यौ ।।

दक्ष्या दई न लई नहिं कबहूं हठि दंडोत करायौ ।।

मूयो बूडि मान सलिता मैं माया संगि बहायौ ।।

जग आधीन बस्यो विषयन मैं विषै विकार बढ़ायौ ।।

परसराम सतसंग सरण सुख नेक व हिरदै आयौ ।।

दास स्वयं ही अपनी इस दयनीय दशा का कारण है क्योंकि उसके हृदय में दीनबन्धु के प्रति विश्वास ही नहीं उपजा था; वह

भगवान् पर वृथा दोषारोपण नहीं करना चाहता:—

देव दीनबन्धू तुमहि दोस नाहीं ॥
मोर तोर वेसास उपज्यों न माहीं ॥
मति अंध अग्यान जग आस भ्रमत फिर्यो ॥
सदा मन मूरख तृष्णा न जाहीं ॥

पर इस बिगड़ी अवस्था का उपचार अब भी स्वामी ही के हाथ है। भक्त को उन पर पूर्ण भरोसा है; वह उनके पतित पावन विरद की विनम्रता पूर्वक याद दिलाता हुआ उद्धार की याचना करता है:—

हरि मेरी आरति क्यों न हरौ ॥
मैं अनाथ प्रभु अंतरजामी सुनि किन कृपा करौ ॥
मैं जन दीन दुखित दिस नाहीं तुम बिन गत सगरौ ॥
अब करुणासिंधु सहाय करौ किन गुण औगुण न धरौ ॥
तुम किये पवित्र पतित पुरमंडल अघ होई अगनि चरौ ॥
जन जीवन दुख हरन कृपानिधि वैसो क्यों विसरौ ॥
खोट कमाई गांठि मैं बांध्यौ दीनूं डारि खरौ ॥
लेहु सुधारि सकलपति सति करि खोजों कहा परौ ॥
मैं मतिहीण भाव सेवाविण परघरि घालि घरौ ॥
परसराम प्रभु भगत वछलता यह जिन विरद टरौ ॥

दैत्य-विनय और याचना करते करते भक्त के कंठ गद् गद् हो जाते है। दुखाधिक्य और निष्कपट-निवेदन से अश्रु धारा प्रवाहित होने लगती है। उसकी आत्मा 'त्राहि त्राहि' की अन्तिम पुकार करने लगती है। दास मूक हो प्रभु के चरणों में गिर पड़ता है और उसका विनय स्वर अब करुण-विलाप में बदल जाता है। यही दास्य-भक्ति की चरम स्थिति है; परशुरामदेव का दास्य-भाव भी इसी पराकाष्ठा पर पहुंचा है:—

सूरगं राम रघुनाथ या बीनती दास की-
मेरे दीन बन्धू सु तुम सौं पुकारों ॥

\+ \+

संसार वड़ सिन्धु कछु पार पाऊं नहीं-
नांव नरहरि विन मांझिक लीया ॥
अधिक संकट बड़े वेग वाहिर करो-
जात उलट्यो दाह बूडत नीया ॥
मैं मुगध मतिहीरा गुर ग्यान खोजूं नहीं-
गर्व गाफिल वह्यो जात भ्रमधार ॥
हा नाथ, हा नाथ। त्राहि त्रिभुवन धरिए-
राखिलै राखिलै सरण या वार ॥

सख्यः—

भक्ति के क्षेत्र में सख्य-भाव का अत्युच्च स्थान है। यहां भक्त भगवान् के साथ गहरी आत्मीयता स्थापित कर लेता है; तथा उन्हें अपना अभिन्न मित्र, सुहृद, सहायक समझकर, वह अनोखी मस्ती में निस्संकोच और निर्भीक आत्मनिवेदन करता है। विश्वास उसका इतना दृढ़ हो जाता है कि भगवान् उसका उद्धार करेंगे ही। वह उद्धार के लिए विरद की याद दिलाता हुआ चुनौती भी देता है। उसके सख्य-भाव में एक प्रकार से हड़ताली का सा हठ होता है, वह द्वार पर धरना दे देता है और-आग्रहपूर्वक मोक्ष का वरदान प्राप्त करता है। परशुरामदेव का सख्य-भाव इन पदों में अनेक स्थलों पर प्रकट हुआ है। सख्य-प्रीति का व्यापार पारस्परिक निस्वार्थ-भावना तथा कर्त्तव्य-परायणता पर निर्भर करता है। सख्य-भाव का एकांगी निर्वाह निभ नहीं सकता। यहां मीन के प्रति जल की उपेक्षा खटकने वाली होती है। परशुरामदेव इसी तथ्य को दर्शाते हुये कहते हैं- 'हे भगवान् मैं आज कटु सत्य का उद्घाटन कर रहा हूं कि आप सर्वसुखदाता, अशरणशरण होते हुए भी मेरे उद्धार की बारी आने पर संकोच और उपेक्षा वर्त रहे

हैं। आप पतित पावन रहे होंगे-मैं क्या जानूं? जब तक आप मेरा उद्धार नहीं कर देते तब तक मैं क्या जानूं कि आप मेरे स्वामी हो? वेद और गुरू आपके पतितपावन-विरद की प्रतीति कराते हैं; लेकिन जब तक मैं स्वयं भवसागर पार न कर सकूं तब तक इस कथन पर कैसे विश्वास कर सकता हूं। आप अनन्त काल से सर्व-सुखदाता रहे हैं पर आज तो आप निःसदेह मुझ पतित को देखने में ही लजा रहे हैं" – कैसा निस्संकोच निवेदन है जिसमें स्नेह की प्रगाढ़ता एवं दृढ़ता स्पष्ट झलकरही है:—

जबलग सरै न हमारौ काज ॥
तब लग कौण तुम्हारौ सेवक काकै तुम राम खसम सिरताज ॥
हरि सम्रथ गुर वेद वदत यौं तारण पतित रह्यो व्रद वाज ॥
अब लग तिरयो न तार्यो तैं कोई जो पै हम न लह्यो सुजिहाज ॥
विप प्रतीति कही को मानैं जो मन की संक न जावै भाजि ॥
जो अपणैं जन सौं न प्रसन्न प्रभु तौ क्यों सेवक सुखराजि ॥
तुम राखि सरणि सबै सुखदाता आदि अनंत अंति अरु आजि ॥
परसा प्रभु सुनि साच कहत हूं क्यों मोहि देखि तोहि आवै लाजि ॥

भक्त परशुरामदेव की यह सख्य भावना देखिये जहां वे बाल-हठ करते हुए उद्धार की याचना करते हैं। भगवान् की कृपा-प्राप्त करना तो मानों उनका जन्मसिद्ध अधिकार है; वे अधिकार पूर्वक उद्धार के लिए अड़जाते हैं; हड़ताली की भांति स्वामी के द्वार पर धरना दे बैठे हैं। वे छाती ठोकर निधड़क भाषा में तथा साथ ही माथा टेक कर विनम्र पुकार करते हैं। यही सख्य भाव की चरम सीमा है जहां भक्त भगवान् में तन्मयता प्राप्त कर लेता है; घुल मिलकर भक्त-भगवान् एक प्राण हो जाते हैं; जहां फिर आचार-विचार की ज्ञान-सीमा नहीं रहती, कुछ भी दुराव-छिपाव नहीं रहता और जहां एकदम निष्कपट और अभिन्न भाव से आत्मनिवेदन होता है। सख्य-भाव की इसी आत्म-

विस्मृति और अविचल प्रेम भावना के साथ भक्त का हड़ताली पन प्रस्तुत पद में प्रकट हुआ है:—

हरि हौं पर्यौ सदा दरवारी ।।
छांडि न जाऊं कहूं कायर होय हौं सेऊं व्रत धारी ।।
तुम ही भले कहो कछु मोको हौं न कहूं हरि तारी ।।
करुणासिंधु कहावत हो प्रभु सो मैं लई विचारी ।।
तुम धार्यौ विड़द पतितपावन सिरसों जिन देऊं उतारी ।।
हम पतित पाप कौ पल न विसारत करत संभार संभारि ।।
तुम असरणसरण अनाथ वन्धु हरि सब कोय कहत पुकारि ।।
परसा प्रभु निर्वाहि सांच करि कै न झूठि करि डारि ।।

आत्म निवेदन:—

विनय करते समय भक्त अपने भगवान् से कुछ छिपाना नहीं चाहता, और वह छिपाये भी कैसे? भगवान् घटघट वासी तथा सर्वान्तर्यामी हैं; वह उनके इस स्वरूप को भली भांति जानता है। भगवान् के साथ वह गहरी आत्मीयता स्थापित कर लेता है तथा उन्मुक्त हृदय से आप वीति सुनाने लगता है; जिससे उसका हृदय हल्का हो जाता है तथा उसके हृदय में वैराग्य की भावना वलवती हो जाती है। वह तो शरणागत भाव से प्रभु के परमाश्रय की याचना करने लगता है।

शरणागति, करुण-निवेदन, अनन्याश्रता, दैन्य–निवेदन, पश्चाताप, मानमर्षण आदि आत्मनिवेदन–भक्ति के प्रमुख तत्व हैं। यहां भक्त शरणागत होकर उद्धार की याचना करता है पर उसके आत्म निवेदन में दास्य–भाव की सी विवशता नहीं होती और न सख्य–भाव की सी खुली चुनौति ही होती है। उसके हृदय में भगवान् के प्रति यह अडिग–विश्वास विद्यमान रहता है कि वे उसका उद्धार तो करेंगे ही; पर फिर भी अविलम्ब–उद्धार हेतु उसका दैन्य–निवेदन निरन्तर चलता रहता है। परशुरामदेव का आत्मनिवेदन अनेक पदों में प्रकट हुआ है। वे कहते हैं—"करुणामय

मैं आपकी शरण हूं पर आपकी छत्रछाया में रहते हुए भी मैं परवश होता जा रहा हूं। आपकी मुझ पर अविलम्ब कृपा नहीं होती, बस यही मुझे चिन्ता है।' यहां उनके आत्मनिवेदन में सख्य-भाव की सी निर्भीकता और विरद विगाड़न की चुनौति नहीं देखी जाती पर वे भगवान् की आशु-कृपालुता, पतितपावनता की स्मृति कराते हुये विनम्रता पूर्वक कहते हैं—'प्रभु देखत परवसि भयो—तो रहि कहा तुम्हारी':—

हरि कवल नैन कैसो करुणामय करुणासिंधु मुरारी ।।
अति आतुर आवत सुमिरत ही सदा भगत हितकारी ।।
वल करि दुष्ट भाव दुसासन त्रिय तन भुजा पसारी ।।
प्रभु प्रकट भये पट्टपूरण कौ द्रोपदी की ताप निवारी ।।
असरण सरण अनाथ बन्धु प्रभु पैंज टरत नहीं टारी ।।
भगत वछल भै हरण उजागर सुनियत हो सुखकारी ।।
ऐसी समझी हौं करौ किन ऊपर मिटत न सोच हमारी ।।
प्रभु देखत परवसि भयो परसा तो रहि कहा तुम्हारी ।।

अपने अनन्य-शरण-प्रभु को पाकर जो आत्मानुभूति भक्त को होती है उसे वह प्रभु के समक्ष प्रकट करता है। वह अपना हर्ष-विपाद प्रभु के समक्ष प्रकट करता है जिससे उसे विशेप आनन्दानुभूति होती है। स्वामी के प्रति जो भी कोमल-भाव उसके हृदय में होते है उन्हें भी वह व्यक्त कर देता है। शरणागत को भगवान् कैसे लगते है, उनके प्रति उसकी भावनाएं कितनी दृढ़ और अनुरागपूर्ण हैं; तथा भक्त—भगवान का अनन्यसम्बन्ध कैसा सरस है—यह सव उसके आत्मनिवेदन में प्रकट हो जाता है:—

मेरे तुम विन और जीवनि काय ।।
जो कछु कथा हमारे मनकी और न जाणी जाय ।।
तुम चिंतामणि पद प्राण हमारे वसैई रहत उर मांहि ।।
सुणि सेवग निजवचन सत्यकरि मोहि तोहि अन्तर नांहि ।।
तुम सव सुखसिंधु पर्म हितकारी तन मन रहे समाय ।।
तुम बिन और सबै दिस सौनी बसत काल कै भाय ।।

पल न बिसारत हौं चित्त तैं ज्यौं चात्रिग रुति भुलाय ।।
परसराम प्रभु रटत दास जस सुख अपणौ ल्यौ लाय ।।

प्रपत्ति–

आत्मनिवेदन भक्ति का ही एक पक्ष शरणागति है जिसे वैष्णवाचार्यों ने 'प्रपत्ति' कहा है जहां भक्ति की अपेक्षा भक्त को भगवान् के शरणागत होने की आवश्यकता होती है। शरणापन्न ( प्रपन्न ) भक्त निष्कपट भाव से निवेदन करता है —"हे करुणामय ! मैं अपराधों का आलय, अकिंचन, निराश्रय और उपाय हीन हूं तथा आप ही मेरे उद्धार के उपाय बनो।" शरणागति मानसिक भावना है जिसके छः प्रकार हैं:—अनुकूल का सकल्प, प्रतिकूल का त्याग, रक्षा का विश्वास, गोप्तृत्ववरण, आत्म-समर्पण तथा कार्पण्यता। इन्हीं तत्वों के आधार पर परवर्ती वैष्णवा-चार्यो ने आत्मनिवेदन के सात तत्व माने हैं—दीनता, मानमर्षण, भय-दर्शन, भर्त्सना, मनोराज्य, आश्वासन और विचारणा। परशुरामदेव के इन पदों में इन तत्वों के पर्याप्त लक्षण विद्यमान हैः—

मान मर्षन–

अपन मन तजत न मदन विकार ।।
जहां तहां भ्रमत असार ।।
ज्यौ रुति स्वान असुद्ध अंधमति होई सहत सिर भार ।।
ऐसो विटल अटल आसावसि तनहूं कि सुधि न संभार ।।
घर घर फिरत हाथ नहीं आवत हेरत विषय विकार ।।
अति लंपट लालच ल्यौ लाये ढ़के उघारत द्वार ।।
परसराम पतिहीण निआदर कोई न करत रखवार ।।

भर्त्सना–

मन तोहि समझावत हार्‌यो ।
मिटि न कठिन कुबानि तुम्हारी अति अहंकार विगार्‌यो ।।

मनोराज्य–

भावत है मन मोहन गायो ।।

जनमि जनमि जो प्राण सनेही,

सोई प्रीतम क्यों विसरत विसरायो ।।

भगतवछल भैहरण कृपानिधि करुणा सिंधु संगि मैं पायौ ।।

अव न तजू मन दै भजि हूं मन क्रम वचन सत्य उरि आयो ।।

विचारणा–

हरि हौं कर्महीन अज्ञानी ।।

हरि तैं विमुख विषै सु सनमुख रहत सदा मन दीयो ।।

परसा परम अमीरत परहरि मांगि तांगि विष पीयो ।।

मधुर भक्ति–

भक्ति के क्षेत्र में शृंगार रस का प्रमुख स्थान है; लौकिक क्षेत्र का शृंगार भक्ति का मधुर रस कहलाता है। यहां संयोग-वियोग दोनों पक्षों की मान्यता होती है। स्वकीया-परकीया दोनों भावों को स्थान दिया जाता है। मधुर भक्ति का उद्देश्य जीव को ऐन्द्रिय प्रलोभन से वचाना है, उसके लौकिक काम-कालुष्य को मिटाना है। भगवान् के प्रति आत्म समर्पण और अनन्यभाव ही मधुर भक्ति के प्रमुख अंग हैं। नारद–सूत्रोक्त कान्तासक्ति भी शृंगार-रति से पूर्ण होने से मधुर-भक्ति ही कही जाती है।

कृष्ण-भक्त कवियों ने गोपी-भाव से मधुर-भक्ति स्वीकार की है। उन्होंने दानलीला, रासलीला, चीर हरण, वसन्त–होली आदि रचना–प्रसंगो में मधुर भक्ति प्रकट की है; जहां उनका कान्ता–भाव और रति-रस चरमसीमा पर पहुंच गया है। भ्रमरगीत के प्रसंगो में इसके विरह–पक्ष का प्रवल प्रतिपादन हुआ है। परशुरामदेव की कान्ताभक्ति भी गोपी-भाव से व्यक्त हुई है। उनके स्त्री भाव का प्रतिनिधित्व गोपियां

करती है। कृष्ण के प्रति उनकी प्रीति कामरूपा होने पर भी वे निष्काम हैं; उनमें अनन्य-भाव, तल्लीनता और आत्म समर्पण की प्रधानता है। कृष्ण के प्रति उनका स्वाभाविक अनुराग है। प्रियतम कृष्ण का प्रेम रंग उन पर करारा चढ़ गया है; यह प्रगाढ़ प्रीति अब छूट नहीं सकती। प्रीति पल पल में नवनवरंग से विकसित हो रही है; मन निरन्तर प्रिय का स्मरण करता है। इस प्रकार का दृढ़ गोपी-प्रेम एवं मधुर-भाव परशुरामदेव के अनेक पदों प्रकट हुआ है:—

मन मोहन मन में बसि रह्यो सखि दिष्टि अचानक आय री ॥
सोई हरि सुमननि बसि भयो भावत अब कैसे करि जाय री ॥
छूटत नही जनमि जो लागो पूरि करारो रंग री ॥
पलु पलु प्रीति नई नागर सो अब न होय रस भंग री ॥
सो कैसे बिसरत है सजनी जापति सो पणु प्रेम री ॥
अब न तजौ भजि हौ पतिव्रत धरि मैं बांध्यो नित नेम री ॥
चितवन प्रगट भयो चित्त ही मै चिंतामणि चितचोर री ॥
ताकौ रूप नाम गुण गावत कछु चीति न आवत और री ॥
जीवनि जनम सफल विलसत हम जीवत हरि लाग री ॥
परसा प्रभु सों सदा समागम रहे, सोई वड़भाग री ॥

लौकिक शृंगार की परिपूर्णता संयोग रति में होती है उसी प्रकार माधुर्य-भक्ति की परिपूर्णता आराध्य-प्रियतम के समागम में प्रकट होती है। परशुराम ने रास-वसन्त वर्णन में संयोग-रति की पूर्णावस्था का चित्रण करते हुये माधुर्य-भक्ति के उज्जवल रस का परिपाक किया है:—

हो सुणी ब्रजराज राग सारग सुरि गावत गुण ब्रजनारी ॥
अति सनेह आरति हरि उरि धरि रहि न सकत पल न्यारी ॥
स्याम समागम भयो जहां तहां सोई सोई लै उर धारी ॥

करत प्रीति की बात प्रगट सब सुनि लागत अति प्यारी ।।
बोली लई हरि निकटि आय दिसि अंतर मेटि मुरारी ।।
सब गावत सरस सुकंठ सुमिल सुख रीझत बनवारी ।।
मगन भई नाचत चांचरी गति समि दै दै करतारी ।।
हंसि हंसि आप हंसावत औरनि देत परस्पर गारी ।।
प्रभु भजि बधु विलास विवसि भयो मनहरि रत त्रिपुरारी ।।
हरि सुखसिंधु सुमंगल परसा सखि ललिता उनहारी ।।

माधुर्य-भाव की श्रेष्ठता का निरूपण विरह कोटिक शृंगार में होता है। विरही-भक्तात्मा मिलन के लिए तड़पती है जिससे उसके हृदय का उत्पीड़न, उद्वेग, निवेदन, आतुर-भाव प्रकट होता है; यहीं आत्म समर्पण और अनन्य भाव का प्रादुर्भाव होता है। यहां आराध्य प्रियतम का चिन्तन निरन्तर बना रहता है; इस प्रकार विप्रलंभ-शृंगार माधुर्य-भक्ति की परमावस्था है । परशुरामदेव के माधुर्य-भक्ति-विषयक पदों मे विरह-भाव की प्रधानता है:—

रहि न सकौ पीय तो विनां मेरे प्रीतम हो प्राणन के नाथ ।।
स्याम सनेही सुनि साच कहूं भावत है मोहि तेरो साथ ।।
तन मन तेरे वसि भयो निमख न होईचरणन तें दूरि ।।
तां विछुरिया क्यों जीववों जे विन देख्यां दुख मरे विसूरि ।।
सग विछुर्‌यौ धौ कब मिले ता दुख तै हम खरै उदास ।।
मेरो प्रीतम प्रीति न बूझई जीवै क्यों विरहनि वे आस ।।
सुनि साच कहूं मनमोहना मोहन हो मोहे सब साथ ।।
सिव विरंचि सुर मुनिजन गण गंधर्व मोहे नव नाथ ।।
राखि सरणि सुमिरण कहौ प्रेम सरस पीऊ ल्यौ लाय ।।
मेरी या प्रीति पीव विचारिये परसराम प्रभु तेरो सहाय ।।

भ्रमरगीत भी विरह कोटिक माधुर्य-भक्ति का प्रतिपादक है। परशुरामदेव के भ्रमरगीत में मार्मिक विरह-भावना प्रकट हुई है। यहां

उनके गोपी-भाव में दृढ़-प्रेम, अनन्य-भाव, आत्म-समर्पण, उद्वेग-पीड़ा, मिलन-आतुरता का सुन्दर चित्रण हुआ है।

## निर्गुण-कान्ताभक्ति तथा दाम्पत्य कोटिक रहस्यवादः-

परशुरामदेव निर्गुण-काव्यकार भी हैं। निर्गुण-संतो ने भी लौकिक काम एवं ऐन्द्रिय प्रलोभन से वचने के लिए अपने व्यक्ताव्यक्त परमात्मा के प्रति स्त्री-भाव से ओत प्रोत कोमल-भावनाएं व्यक्त की हैं। निराकार ब्रह्म, अविगत नाथ, हरि, राम के प्रति उनकी निष्काम-कान्ता-रति तथा दाम्पत्य-प्रीति प्रकट हुई है। निर्गुण-उपासना की काव्य-परम्परा में इसे रहस्यवाद की संज्ञा दी गई है। यहां साधक की आत्मा दाम्पत्य प्रीति की अनन्य–भावना से ओतप्रोत हो परमात्मा के साथ घनिष्ठ सम्वन्ध स्थापित कर लेती है तथा एकमेक की परमावस्था प्राप्त करने के लिए महाविरह की स्थिति में पहुंच जाती है; इतना ही नहीं उसे अलौकिक सेज पर प्रियतम के साथ समागम की आनन्दानुभूति भी होती है। परशुरामदेव के निर्गुण–काव्य में कान्तासक्ति और दाम्पत्य कोटिक रहस्यवाद की मार्मिक अभिव्यक्तियां हुई हैं। वे निर्गुण ब्रह्म को 'प्रीतम' कहकर पुकारते है। अनेक स्थानों पर उन्होंने आत्मा–परमात्मा की मिलनावस्था का चित्रण किया है जो संयोग–रति की चरमावस्था है। वे अविगतराय का परम–मंगलदायी मिलन देख रहे हैं। उनकी आत्मारुपी सखी के भवन में हरि प्रीतम पधारे है। परममंगल अवसर है; वह लोक–मर्यादाओं को त्याग प्रीतम का परम प्रेम प्राप्त करेगी, उमंग से प्रियतम को अंक में भरकर कंठों से लगायेगी तथा सुखनिधि के साथ विलास करेगी और विना किसी दुराव–छिपाव के सर्वस्व अर्पण कर देगी। प्रस्तुत पद में सखी द्वारा किया गया आग्रह इसी भाव को अभिव्यक्त कर रहा है:—

सखी हरि पर्म मंगलगाय ॥
आज तेरे भुवनि आये अकल अविगति राय ॥

लोक वेद मर जाद कुल की काणी वाणी विहाय ॥
हरि पर्म पद निसांण निर्भय प्रगट होय वजाय ॥
उमगि सनमुख अंक भरि भेंटि कंठ लगाय ॥
विलसि सुखनिधि नेमधरि सखि प्रेम सों ल्यौ लाय ॥
वारि डारि तन मन प्राणधन कछु राखिये न दुराय ॥
परसा प्रभु को सौंपि सर्वस सरणि रहीं सुखपाय ॥

निर्गुण-सन्तों ने कान्ता-भाव में विरह-पक्ष को अधिक महत्व दिया है। परशुरामदेव के दाम्पत्य कोटिक रहस्यवाद में भी विरह-पक्ष की प्रधानता है उनकी विरहणी आत्मा अविनाशी प्रीतम से मिलने के लिए बड़ी आतुर है; उसकी विरहोक्तियों में मार्मिक वेदना, मिलन-आतुरता, असह्य-पीड़ा और अभिलापा-व्याकुलता विद्यमान है:—

अविनाशी हो प्रीतमां तो विन अकल उदास ॥
हरि चितवनि चितही रहे पुरवो मेरी आस ॥
पंथ निहारों जी प्रीति सों पीव मिलिवे की प्यास ॥
विरहनि मन आतुर भई मिलि प्रभु प्रेम निवास ॥
एक प्रेम पुंज निवास नरहरि नांव की वलि जाइए ॥
मैं बहुत व्याकुल देहू दरसन प्राण तहां विरमाइए ॥
आतुरी अधिक अपार आरति पीव मिलिवे की आसा ॥
मोहि राखि सरणि मिलाई लै प्रभु राम प्रेम निवासा ॥

## निम्बार्कीय सहचरि उपासना और परशुरामदेव:—

निम्बार्क-सम्प्रदाय में माधुर्य-रसोपासना का महनीय स्थान है, पर यह निम्बार्कीय रसोपासना पूर्वालोचित माधुर्योपासना से भिन्न है। यहां राधाकृष्ण की निकुंज-लीला का विशेष विधान है। यहां भक्त सखी रूप से निकुंज-सेवा करते हैं जो अत्यन्त सरस और गोपनीय है। राधाकृष्ण की युगल-लीलाओं का विधान करना तथा निष्काम-भाव से निकुंज-केलि का रसास्वादन करना ही निकुंज भक्ति है। गोपी-भक्ति में

गोपियां कृष्ण-वल्लभाएं होती है तथा उनके हृदय में परमाराध्य कृष्ण के प्रति रति-भाव विद्यमान रहता है; परन्तु निकुंज-भक्ति के क्षेत्र में सहचरियां राधिका की ही अनुचरिया होती हैं; श्रीकृष्ण के आग्रह करने पर भी उनके प्रति इनके हृदय में रतिभाव का उद्रेक नही होता। प्रिया प्रियतम की रति–क्रीड़ा का अहर्निश विधान करने वाली तथा निकुंज–केलि की साक्षिणी साखियां केवल निकुंज–रन्ध्रों से युगल-क्रीड़ा का दर्शनानन्द लेती है; यही उनका सहचरि-भाव है।

परशुरामदेव यद्यपि निम्वार्काचार्य थे और सहचरि उपासना उनकी साम्प्रदायिक भक्ति थी तथापि उनके काव्य में यह उपासना व्यक्त नही हुई है। निकुंज-सेवा अत्यन्त मधुर मानसी और गुह्य होने से परशुरामदेव ने उसे अपने तक ही सीमित रखा है। भागवतोक्त गोपी-भाव की मधुर उपासना ही आपके काव्य में अवतरित हुई है। इनके कृष्ण–चरित्र में भी गोपाल–चरित्र ही गुम्फित हुआ है जो निम्वार्कीय निकुंज–विहारी राधालाल कृष्ण से सर्वथा भिन्न है। परशुरामदेव ने राधा को इष्ट-देवी माना है तथा सर्वेश्वर–कृष्ण का भी चित्रण किया है, उनके युगल–रूप का भी एकाध पदो में वर्णन किया है; पर उनकी निकुंज–लीलाओं का उल्लेख कही नहीं किया है। परशुरामदेव के गुरू हरिव्यास ने उन्हे निकुंज–सेवा का महनीय ग्रथ महावाणी दिया था तथा उन्हे निकुंजोपासना में दीक्षित भी किया था परन्तु युग की विषमता ने परशुरामदेव को सकुचित साम्प्रदायी घेरे से ऊपर उठा व्यापक और समन्वयवादी भक्त-कवि एवं आचार्य के रूप में प्रस्तुत किया था, इसी कारण उनके काव्य में तो निर्गुण-सगुण, राम कृष्ण रहीम–निरंजन सभी स्वरूपों की घुली मिली उपासना व्यक्त हुई है। सहचरी-भक्त अपना सखी नाम भी रखता है, इसी परम्परानुसार सम्प्रदाय में परशुरामदेव का सखी नाम परमा विख्यात है पर यह नाम उनके काव्य में किसी भी स्थल पर प्रकट नहीं हुआ है। अस्तु यही कहा जायेगा कि परशुरामदेव कट्टर निम्वार्कीय न होकर अत्यन्त उदार और समन्वयवादी वैष्णव भक्त और सत थे।

### नाथ मत की हठयोग-उपासना:—

परशुरामदेव के इस काव्य में नाथमत की हठयोग उपासना भी प्रकट हुई है। कतिपय पदों में योगपरक-रूपकों एवं उपमानो द्वारा उलटवासियों की रचना की गई है। इन पदों में अधोमुखी-कुंडलिनी को जाग्रत कर सहस्त्रार चक्र में खेचरी मुद्रा द्वारा अमरत्व प्राप्त करने तक की योगिक-उपासना का उल्लेख हुआ है:—

अवधू उलटी राम कहाणी ।।
उलट्या नीर पवन कौ सोखै यह गति विरलै जाणी ।।
पाचौ उलटि एक घर आया तब सरि पीवण लागा ।।
सुरही सिंघ एक संग देख्या पानी कौ सर लागा ।।
मृगही उलटि पारधी बेध्या भींवर मछ बसेख्या ।।
उलट्या पावक नीर बुझावै सगम जाई सूवा देख्या ।।
नीचै वरषि उचकौं चढ़ियावा जब टेरी राख्या ।।
ऐसा अणगत डूवा तमासा छावै था सो छाख्या ।।
ऐसी कथै कहै सब कोई जो वरतै सोई सूरा ।।
कहि परसा तब चौकि पट्टौं ता बीज समेत अकूरा ।।

परशुरामदेव कबीर के समकालिक थे। इस समय गोरखनाथ द्वारा प्रतिपादित आचार-विचारों पर आधारित हठयोग-प्रधान नाथ-उपासना का सभी साधना-सम्प्रदायों पर पर्याप्त प्रभाव था और इसी कारण समन्वयवादी कवि परशुरामदेव के काव्य में इसका प्रादुर्भाव हुआ।

### परशुरामदेव के काव्य का सामाजिक महत्व:—

परशुरामदेव क्रांतिकारी आचार्य और समाजसेवी संत थे। उन्होने समाज में आचार-विचार और नैतिकता की पुनर्स्थापना के लिए युग निर्माणकारी काव्य का सृजन किया। हिन्दूधर्म के परिष्कार हेतु

छुआछूत, जातिपात, सम्प्रदायवाद का प्रबलखंडन किया। वैष्णवाचार्य होते हुये भी आपने तिलक-माला, भेष तीर्थ-व्रत-पूजादि वाह्याडम्बरों का तिरस्कार किया और विशुद्ध-मानसी भक्ति का प्रचार किया। आपने रामकृष्ण, निर्गुण-सगुण, नाथ-शैव-वैष्णव आदि सम्प्रदायों में समन्वय स्थापित किया। साथ ही आपने आक्रांता मुस्लिम संस्कृति को भी अपने सदुपदेशों से उदार बना दिया। आपने उनकी धर्मांधिता, कट्टरपंथी तथा हिंसाप्रवृति पर गहरा आघात पहुंचाया; आपने उनकी हिन्दू-विरोधी तथा विनाशकारी धर्म-नीति को उन्हीं के एकेश्वरवाद द्वारा पराजित कर सदा के लिए अनुकूल बना लिया। सर्वप्रथम मरूधरा में आपने ही हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करने का महत्वपूर्ण-कार्य किया। बड़ी ही दार्शनिक कुशलता और संतोचित-बुद्धि से आपने दोनों विरोधी संस्कृतियों में समन्वय की स्थापना की; तथा दोनों में तात्विक एकता, पारस्परिक सहयोग और सद्भावना का संचार कर दिया। प्रस्तुत पद इसी का परिचायक है:—

भाई रे का हिन्दू का मुसलमान जो राम रहीम न जाणां रे ।।
हारि गये नर जनंम वादि जो हरि हिरदै न समाणां रे ।।
भांडे वहुत कुमारा एकैं जिनि यह जगत घडाणां रे ।।
यह न समझि जिन किनहूं सिरजें सो साहिब न पिछांणां रे ।।
भाई रे हक्क हलाल निआदर दोऊ हरखि हराम कमाणां रे ।।
भिस्ति गई दूरि हाथ न आई दोजग सौं मन माणां रे ।।
पंथ अनेक नयन उर घर ज्यौं सबका एक ठिकाणां रे ।।
परसराम व्यापक प्रभुराम वपु धरि हरि सबको सुरताणां रे ।।

काव्य कला:—

परशुराम-पदावली में शृंगार, शांत और करुण रस का परिपाक हुआ है। मधुर-भक्ति के प्रसंग में इसकी चर्चा कर चुके है। रास, हिंडौला, वसन्त; फाग आदि के प्रसंगों में संयोग शृंगार के वर्णन मिलते

हैं। संयोग श्रृंगार चित्रण में रति की आश्रय गोपियां हैं तथा कृष्ण-आलम्बन हैं। कमल नयन श्रीकृष्ण ने मधुर चितवन से गोपियों के मन को मोह लिया है। प्रियतम की मधुर-मुस्कान, मोहक-चितवन उनके हृदय में बस गई है; वे आंखे मूंदकर उनका ध्यान करती हैं; तथा तल्लीन अवस्था में चित्र की भांति जड़ होकर बैठी रहती हैं। प्रस्तुत पद में संयोग श्रृंगार के सभी अंग विद्यमान हैं:—

कमल नैन नैननि चित चोर्‌यो ॥

मो देखत मेरो मन मोहन हरि लीयो हरि न बहोर्‌यो ॥

लै जु गयो सरवसि अंतरि नैक मुसकि मुख मोर्‌यो ॥

निरखत वदन ठगोरी सी परगई रही चित्र जैसो कोर्‌यो ॥

नैकबूंद जल पर्म सिन्धु मिलि बिछुरत नाहि न विछोर्‌यो ॥

अब कहा होय कहै काहूं कै जाणि बूझि जासौं मन जोर्‌यो ॥

भयो विवसि परसा प्रभू सौं मन नेह न टूटत तोर्‌यो ॥

विप्रलंभ-श्रृंगार की दृष्टि से परशुरामदेव का काव्य अत्यन्त मार्मिक है। श्रीकृष्ण गोपियों के प्रेम को तृण की भांति तोड़कर मथुरा चले गये पर गोपियों का चित्त तो अब भी उनके ही साथ है; वे पति के बिना पलभर भी जीवित नहीं रह सकेंगी। वे अभिमानी मन को कोसती हैं; उनकी स्मृति में उन्मादिनी बनकर वन-कुंजों में उन्हें ढूंढती हैं। वे स्याम को प्रेम-बन्धन में बांध न सकी, बस इसी बात का पश्चाताप उन्हें जला रहा है। विप्रलंभ-श्रृंगार का सुन्दर परिपाक हुआ है। यहां कृष्ण आलम्बन हैं, गोपियां रति की आश्रय हैं। प्रिय की चेष्टाएं और स्मृति उद्दीपन है तथा उन्माद में आंखे मूंदना, चिंतन करना, एकटक देखना अनुभाव हैं; 'रहत न प्राण निमष' से व्यंजित मरण, 'मोह तिणां ज्यौं तोरि' से व्यंजित ग्लानि आदि संचारी भाव हैं। इस प्रकार यहां विभावादि से पुष्ट रति स्थायी भाव की श्रृंगार रस में सिद्धि हुई है:—

लै गये मोहन मन कौं चोरि ॥

नाणेकार, रहत न प्राण निमस तापति विण भई विकल मति मोरि ॥

करत विलास रास रुचि रचि हित कर सौं कर जोरि ।।
सु तजत न लागि विरंब छिनक मैं मोह तिणांज्यौं तोरि ।।
मुरझि परि बेहाल लाल बिण अब भई भ्रमवसि खोरि ।।
मिट्यो न मन अभिमान मनावत सक्यो न स्याम बहोरि ।।
अब इतवत ढूंढत वन वेलि द्रुम साखा फल फोरि ।।
सोई सुखसिंधु न पावत सलिता सूकत वीचि बल छोरि ।।
धरि धरि ध्यान संभारत सोचत लोचत नैन निहोरि ।।
परसराम प्रभु पकरि न राखै बांधि प्रेम की डोरि ।।

### भ्रमर गीत–

विप्रलंभ-श्रृंगार के क्षेत्र में परशुरामदेव ने 'भ्रमरगीत' की रचना भी की है। हिन्दी साहित्य जगत में आज सूर को ही सर्वप्रथम भ्रमर-गीतकार माना जाता है; परन्तु परशुरामदेव का भ्रमरकाव्य सूर से भी पूर्ववर्ती है। यद्यपि परशुरामदेव ने भ्रमर गीत को व्यवस्थित कथात्मक–स्वरूप प्रदान नहीं किया तथापि उनके अनेक पदों में एतद्विषयक सामग्री पर्याप्त रूप में प्राप्त हो जाती है। यहां गोपी-विरह का उपालम्भ-व्यंग्य पूर्ण वर्णन तथा सगुण-भक्ति का प्रतिपादन मार्मिक ढंग से हुआ है। सूरनन्ददासादि भक्तिकालीन भ्रमरकाव्यकारों ने जिन विशेषताओं का प्रदर्शन किया है उनके प्रारम्भिक लक्षण यहां दीख पड़ते हैं। भागवत के भ्रमरगीत की भांति यहां राधा की चर्चा नहीं हुई है। यहां परशुरामदेव ने यशोदा की वात्सल्य-भावना का प्रकाशन नहीं किया है। एकाधिक पदों में सांकेतिक रूप से कुब्जा पर व्यंग्य हुये हैं, मुख्य रूप से गोपी विरह की व्यंजना करना ही परशुरामदेव का लक्ष्य है। गोपी-भक्ति के द्वारा सगुण–भक्ति का प्रतिपादन मार्मिक ढंग से हुआ है। अन्त में ज्ञानी उद्धव प्रेम-चोट से आहत होकर लौटते हैं और वे कृष्ण के सम्मुख गोपियों की दारुणावस्था को आहत–ढंग से इंगित करते हैं। इस प्रकार परशुरामदेव के और भागवत के भ्रमरगीत में अधिक अन्तर नहीं हुआ है परन्तु सूरदास ने राधाविरह, कुब्जाउपालम्भ, पाती सन्देश आदि तत्वों का समावेश किया है; तथा गोपी विरह को भी उन्होंने निजी

सूझबूझ एवं मनोवैज्ञानिकता के साथ व्यक्त किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि परशुरामदेव की भ्रमरकाव्य-परम्परा सूर से पूर्ववर्ती है जिसमें भागतवोक्त भ्रमर गीत से अधिक हेर फेर नहीं हुआ है। उसमें प्रारम्भिक भ्रमरकाव्य होने के सभी लक्षण विद्यमान हैं। अतः परशुरामदेव की पूर्ववर्ती भ्रमर–रचना सूर के लिए पृष्ठभूमि सिद्ध हुई है। परशुरामदेव के प्रारम्भिक भ्रमरकाव्य से सूर को भागवत स्रोत से निसृत तथाकथित विकसित कथा मिली है जिसमें उन्होंने अपना महत्वपूर्ण योगदान देकर उसे चरमोत्कर्ष पर पहुंचा दिया है। सूर का भ्रमर गीत प्रारम्भिक और सर्वप्रथम रचना के रूप में नहीं माना जा सकता; वरन् वह तो सुव्यवस्थित एवं प्रौढ़ काव्य है जो भ्रमर काव्य के चरम विकास का द्योतक है। भागवत से प्रारम्भ होने वाली भ्रमर-काव्य-परम्परा हिन्दी के भक्ति कालीन सूर में आकर व्यापक रूप से प्रकाशमान हो उठी है। सूरदास से पूर्ववर्ती भ्रमर काव्य अनुपलब्ध हैं और इसी अभाव के कारण सूर को भ्रमर गीत का प्रथम रचियेता माना जाता है परन्तु सूर की सुव्यवस्थित रचना से पूर्व भागवत से प्रारम्भ होने वाली भ्रमरकाव्य-परम्परा अवश्य विद्यमान थी जो मौलिक रूप में भागवत से अभिन्न थी; सूर ने इसी प्रचलित काव्य परम्परा में अपने महत्वपूर्ण तथ्यों का समावेश कर उसका चरमोत्कर्ष किया है। अस्तु हिन्दी के सर्वप्रथम भ्रमरगीतकार सूर न होकर परशुराम हैं।

परशुरामदेव के उद्धव गोपियों के बीच प्रकट होते हैं और इसी प्रसंग से गोपी-उद्धव संवादप्रारम्भ हो जाता है। अपने प्रिय के सखा और संदेशवाहक को आया जान गोपियां अत्यन्त हर्षित होती हैं; ग्रीष्म ऋतु में दादुरों की भांति उनके प्राण घनश्याम बिना व्याकुल हैं पर हरि-प्रियतम की मन चाही कथा सुनाने वाले उद्धव के आगमन से उनके प्राणों को शांति मिली है। मन के इसी आह्लाद को व्यक्त करती हुई वे उद्धव से प्रियतम के मधुर संदेश सुनाने का आग्रह करने लगती हैं:—

ऊधौ भली भई तुम आये ॥
हरि प्रीतम की कथा अनूपम हम चाहति तुम ल्याये ॥
आरति अधिक हुति सुवदन देखत ही नैन सिराये ॥
मानूं ऋति ग्रीष्म कै अंत की मैं दादुर मरत जिवाये ॥
निसि वासुर हेरत ही तुमकौ अति आतुर हम पाये ॥
अब कहि नीकै परसा प्रभु कै गुण मुखि मीठे मन भाये ॥

पर ज्यौं ही उद्धव गोपियों को योग-साधना का उपदेश देने लगे, वे सोच में पड़ गईं और अपनी विरहावस्था का चित्रण करती हुई करुण स्वर में स्याम के आगमन की बात पूछने लगीं:—

ऊधौ जी कब मिलि हैं गोपाल पियारे ॥
पर्म हितू हरि प्राण हो हमारे ॥
हम तौ मरत मीन की सी नाईं ॥
ज्यौ जलहीण तलफि मुरझाईं ॥
मुरझि ज्यौं जलहीण तलफत मीन तन मन वसि कीयो ॥
प्रकट जल पाताल गति यों सौंपि हम सरवसि दीयो ॥
हम रटत निसदिन दिस न दूसर स्याम विन सूनी सबै ॥
हरि प्राण धन गोपाल जीवनि कहौ वे मिलि हैं कबै ॥

पर जब उद्धव अपना मन्तव्य बघारते ही रहे तो गोपियां झुंझला कर कह उठीं; हम इतना ही जानना चाहती हैं कि श्याम कब आयेंगे इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। वृथा बकवास सुनने की हमें फुर्संत नहीं, अच्छा हो कि आप मौन धारण करलें। हमने कृष्ण प्रेम का महाव्रत ले रखा है; उस प्राण प्यांरे का ध्यान हटाये नहीं हटता, उसके प्रकट रूप से मिलन होने पर ही हमारी विषम स्थिति का शमन हो सकेगा। प्रेम की विवशता और दृढ़ता का कथन कितनी स्पष्टोक्ति और फटकार के साथ हुआ है:—

ऊधौ कव मिलि हैं अव सोई धौं कहौ ।।
और वादि ही वकत कित मौन ही गहौ ।।
हम न सुहाय ऐसी तुम जू ल्याये वनाय ।।
प्रकट करौ न निज ऐसी इहां न विकाय ।।
मेरे जीव की जीवनी प्राण प्रेमहेतु सुजान ।।
हम लीयों है वरत जाकौ ताहि को ध्यान ।।
वसेई रहै उर मांहि उर तें टरत नाहि ।।
अव सुन्दर वदन देख्याहि नैण सिराहि ।।
ऐसे आप जो पाइये हरि प्रकट आपणे घरि ।।
परसा प्रभू उरलगाय भेंटिये भुज भरि ।।

यहां कितने ही स्थलों पर भ्रमर गीत के विविध प्रसंग रखे गये हैं जिनमें गोपियों की विरह वेदना, प्रेम विवशता, व्याकुलता बड़े ही मार्मिक ढंग से व्यक्त हुई है। नारी-हृदय के अनुकूल प्रेमाभक्ति ही है न कि नीरस योग उपासना, इस तथ्य को समझाने के लिए प्रवल तर्क प्रस्तुत किये गये है। यहां गोपियों के तर्क-उपालम्भ-व्यंग्य तीखे हैं जिनके प्रभाव से निराकारोपासक उद्धव का ब्रह्म -ज्ञान परास्त हुआ है। उद्धव का साहस टूट जाता है और वे प्रेमाहत हृदय से लौटते हैं; उनके हृदय से प्रेमा-भक्ति की अवस्था का सहज चित्रण स्वतः ही कृष्ण के सम्मुख होने लगता है; और वे अन्ततः प्रेमाभक्ति की विजय स्वीकारते हुये कहते हैं—"हमें सब सुधि विसरि हरि देखि उनको प्रेम:—

सुनि ब्रजराज ब्रज की वात ।।

रटत निसिदिन हरि हरि सुपन जागत प्राणधार ।।
चलत हरि की वाणी उचरत वन भुवन इकतार ।।
उमंगि उदार गावत सुनत प्रकट लीला नेम ।।
हमें सब सुधि विसरि हरि देखी उनको प्रेम ।।

चरन कंवल न पल विसारत जाणी जीवन ठौर ।।
परसराम सुध्यान परिहरि उर न आवत और ।।

साहित्याचार्यों ने विरह की एकादश दशाओं का निरुपण किया है; परशुरामदेव के काव्य में उन सभी विरह-दशाओं का चित्रण हुआ है। इस प्रकार परशुरामदेव का विप्रलंभ काव्य अत्यन्त मार्मिक वन पड़ा है। भक्ति के दास्य और आत्म-निवेदनादि भाव-पदों में शान्त-रस का परिपाक हुआ है; सीता के विरह-वर्णन में करुणारस का चित्रण हुआ है, तथा राम-रावण-युद्ध के प्रसंगो में वीर रस का चित्रण हुआ है।

## प्रकृति चित्रण–

परशुरामदेव द्वारा वर्णित कृष्णलीला प्रसंगों में, तथा उनके विरह-चित्रण में प्रकृति का सुन्दर चित्रण हुआ है। झूला-हिंडोला-फाग-वसन्त सम्वन्धी पदों में प्रकृति का आलम्वन चित्रण हुआ है। वारह-मासा की परम्परानुसार यहां वर्षा ऋतु चौमासे का वर्णन हुआ है। यहां प्रकृति का उद्दीपनकारी रूप ही विशेष रूप से गृहीत हुआ है। वर्षा का यह उद्दीपनकारी स्वरूप देखिये :—

उमग्या वादल बरसन आवै ।।
देखि सघन घन अरि दल वरषत इन्द्र निसांण वजावै ।।
लागत बूंद विपम पावक सम हरि विन तनहिं जरावै ।।
क्यों सहिये दुख दरसन दुर्लभ विरह भुवंग सतावै ।।
गिर गिर सिहर सिहर सिर दामिनी सोभित मोहि न सुहावै ।।
सुन्दर सौंज सरस घर सरवन मोहन दिपि न आवै ।।
कठिन परी सुख तें दुख उपज्यो पति सौं क्यों न मिलावै ।।
परसराम प्रभु अबर सहूं क्यों मोर मल्हार सुणावै ।।

इसी प्रकार बसन्त का प्रस्तुत आलम्बन चित्रण बड़ा ही सांगोपांग और आलंकारिक बन पड़ा है:—

वन फूले अति सोभहिं आयो री सखि मास वसन्त ।।
नाना रंग बास नवी नवी नव नव तर पल्लव विगसन्त ।।
नव नव सुर कोकिल वोलहिं गुंजित अति मधुकर मैमंत ।।
पखी वहु वाणी चवै गुण नव नव गावै सुरसंत ।।
नव नव किसलै दल वीनहीं नव नागरी कर भरि वरिखंत ।।
नव संगति नव नेह सौं नव नागर नवरस विलसंत ।।
रति नाइक रूति विहरहीं राजित अति तामैं हरिकंत ।।
परसराम प्रभु भजि लीजै हरि सुख सब सोभा को अंत ।।

अलंकार–

परशुराम-पदावली में प्रमुख रूप से अनुप्रास, श्लेष, उपमा, उत्प्रेक्षा रूपक, दृष्टान्त, विभावना, अर्थान्तरन्यास, विशेषोक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है। जिनमें प्रमुखता शब्दालंकारों की रही है। अनुप्रास उपमा और उत्प्रेक्षा तो किसी भी स्थल पर देखे जासकते है। अनुप्रास के प्रयोग से भाषा अत्यन्त आलंकारिक वन गई है। एक उदाहरण देखिये:—

अघ तिमिर दुरत हरिनांव तैं ।।
जामण मरण विघण टारण कोई और नहीं वड़राम तैं ।।
कलह केलि कुल काल कलपना कटत कलपतर छाम तैं ।।
मिटत दुरति दुर्वास दुसह दुख सुख उपजत अभिराम तैं ।।
पतित पावन पद परसत छूटत छल वल काम तैं ।।

भाषा:–

परशुरामदेव राजस्थान की मारवाड़ी भाषा के कवि हैं। राजस्थान का चारण-साहित्य डिंगल में लिखा गया है; लोक भाषा मारवाड़ी में मीरां-साहित्य के अतिरिक्त उल्लेखनीय भक्तिसाहित्य की खोज अब तक नहीं हुई है। परशुरामदेव राजस्थान की लोक भाषा मारवाड़ी के सबसे वड़े

कवि हैं; इनके काव्य में अपनाई गई यह भाषा राजस्थान के पश्चिमोत्तर तथा मध्य-भाग में आज भी बोली जाती है। इस भाषा क्षेत्र में आज जोधपुर, जैसलमेर, बीकानेर, जयपुर, अजमेर-पुष्कर, किशनगढ़ के भूभाग आते हैं। इस भाषा में उपभाषा ढूंढाड़ी के शब्दों का बाहुल्य है क्योंकि परशुरामदेव का जन्म स्थान ठीकरिया (रींगस) इसी क्षेत्र में विद्यमान है। परशुरामदेव की भाषा का यह भूभाग ब्रजभाषा के क्षेत्र से मिला हुआ था, साथ ही मध्यकालीन भक्ति-साहित्य में ब्रजभाषा की प्रमुखता थी, और परशुरामदेव भी राजस्थान में आने से पूर्व अपने गुरू निम्बार्काचार्य हरिव्यास देव के साथ वृन्दावन में रहते थे; इन्हीं कारणों से इनके काव्य में ब्रजभाषा का भी प्रयोग हुआ है; खासतौर पर पदावली में ब्रजभाषा की ही प्रमुखता है। पदावली में कोमल-भावों की प्रधानता होने से तथा इसके रागबद्ध होने से यहां परशुरामदेव की भाषा अत्यन्त सरल-मधुर और आकर्षक बन पड़ी है। आपकी भाषा बड़ी मुहावरेदार, लोकोक्तियों से पूर्ण और अनुप्रासमयी है; वह सीधी सादी होने पर भी बड़ी चटकीली बन गई है:—

श्री मन मोहन कै रंगि रंग्यौ सु न जात निचोर्‌यो ॥
रग तजै न सौ फीकौ परै झाझै झक झोर्‌यो ॥
हरि सनमुख जबहि चाल्यौ तबहि मैं न बहोर्‌यो ॥
हरि सौं मिलि सर्वस दीयौ मो तैं मुख मोर्‌यो ॥
पलटि प्राण तही कौ भयो मो तैं चित्त चोर्‌यो ॥
हरि आधीन कुरंग ज्यौं डोलत सगि डोर्‌यो ॥
जतन जतन करि प्रीति सौं पहिली मैं जोर्‌यो ॥
मनमोहन चितयो नहीं उर मैं हूं न निहोर्‌यो ॥
नैंन उभै सुखसिंधु ज्यौं आवत न अहोर्‌यो ॥
ऐकमेक पिय प्रेम सौं अंग सग डहोर्‌यो ॥
परसा पै पाणी मिल्यौ सु बिछरत न बिछोर्‌यो ॥

# परशुराम-पदावली

## परशुराम सागर-चतुर्थ खण्ड

### अनुक्रमणिका

(क)

| क्रमांक | पद | | पृष्ठांक |
|---|---|---|---|

| पद | | पृष्ठांक |
|---|---|---|
| नरहरि यह संसौ मोहि आवै | .... | ९४ |
| नृप दसरथ गृह मंगलाचार | .... | ११४ |
| नीर सौ क्यौं मिटत मीन को नेह | .... | १३४ |
| नन्द वधाई देहु कृपा करि तेरैं गृह हरि मंगल आयौ | .... | २०० |
| नरहरी भै मानि न जो अनुराग्यौ | .... | २१३ |
| निर्भै जन भगवंत भरोसैं | ... | २७५ |
| निर्मल सौ जु माया मोह न बहै | .... | २८३ |
| नैण राती है काहू और सों सु तो सौं न राचै | .... | २९५ |

(प)

| | | |
|---|---|---|
| प्रीतम है वसि प्रीति कैं सुन्दरि सु पिछाणैं | .... | १५ |
| प्यारे प्रीतमावे प्रीति न तौं भजें वे | .... | ३५ |
| प्रीतम हरि अंतरि न संभार्‌यो | .... | ३८ |
| पीव रे जीव रस राम नाम प्यारा | .... | ४४ |
| पायो जनम न हारि राम संभारि रे | .... | ४४ |
| प्रीतम प्रान नाथ सब्र माहीं | .... | ४७ |
| पंडित मिलि यक करहु विचारा | .... | ५० |
| प्रगट भये हरि मंगलकारी | .... | ५४ |
| पाई निधि निरफल बहुत गई | .... | ६५ |
| प्रीतम केसवै हो मोहि विरह सर लाग | .... | ६९ |
| प्रीतम पर्म दयाल सौ मिलि मैं सुख पायो | .... | ९३ |
| पलट सि नां हो नाथ पलटिसि नां | .... | ९४ |
| प्रीतम श्री गोपाल सौ मेरौ मन माने | .... | ९७ |
| प्यारे लाल हो लालनी लै संगि आय | .... | १२६ |
| पिपो भयो भगति अंभमति धीर | .... | १३९ |
| प्रभ जीसो प्रभु ही सुखदायो | .... | १५६ |
| प्रभुजी से प्रीति परम सुख सोई | .... | १६४ |
| प्राण सनेहीया हौ पीय दरस देउ किन मोही | .... | १७४ |
| प्रीतम कर लीजै गोपाल | .... | १७९ |
| प्रेम विन प्रिय काहु कौं न पतीजै | .... | १९१ |
| प्रीत विन हरिनागर न पतिजै | .... | १९१ |

| क्रमांक | पद | | पृष्ठांक |
|---|---|---|---|

| क्रमांक | पद | | पृष्ठांक |
|---|---|---|---|

| क्रमांक | पद | | पृष्ठांक |
|---|---|---|---|
| ३८०. | राम सुमिर मन रामहिं गाइ | .... | ३० |
| ३८१. | राम विसंभर तेरा नाऊ | .... | ३० |
| ३८२. | राम नै जाण्यौ नर अंधा | .... | ३७ |
| ३८३. | राम निआदर आदर नाहीं | .... | ३८ |
| ३८४. | राम नाम सुमरि निजसार नेम धारि | .... | ६६ |
| ३८५. | राम विण सरणि कवण की रहिए | .... | ६१ |
| ३८६. | रसना राम नाम निज गाय | .... | ६८ |
| ३८७. | रहि न सकौ पीय तो बिनां मेरे प्रीतम हो प्राणन कै नाथ | .... | १०१ |
| ३८८. | राम न विसरौ मैं धन पायो | .... | ११० |
| ३८९. | राजत सारंग कर धरै आजि | .... | ११५ |
| ३९०. | रघुपति हित विना दिन जात | .... | ११५ |
| ३९१. | राजित राजिव लोचन राम | .... | ११९ |
| ३९२. | राखि सरणि रघुनाथ सहाइ | .... | १२० |
| ३९३. | रिझायो कृष्ण कवीरै गाय | .... | १३८ |
| ३९४. | राम विमुख धृग धर्म विचारो | .... | १४१ |
| ३९५. | रहिये मन हरि की सरणाई | .... | १४८ |
| ३९६. | राम न बिसरौं मैं धन पायो | .... | १४९ |
| ३९७. | राम रमत कित करिये लाज | .... | १४९ |
| ३९८. | राम अगम गम आवत नाहीं | .... | १५० |
| ३९९. | राजित रंगभूमि तैं आवत हरि जीते रिण खेत | .... | १८२ |
| ४००. | रूप अनूप वने हरि राय री | .... | १९२ |
| ४०१. | री सजनी हरि अजहू न घरि आये | .... | १९५ |
| ४०२. | राजा रघुपति सौ जगि को है | .... | १९८ |
| ४०३. | राज को राज महाराज विराजै | .... | २०४ |
| ४०४. | रहि हौं परचो सदा दरबारी | .... | २२८ |
| ४०५. | राम सुमरि सचु पाइए तजिऐ विषै विकारौ रे | .... | २३७ |
| ४०६. | राम बिसार्यो रे जीया | .... | २३८ |
| ४०७. | राम रमि जोऊं रे मेरौ मन मानै हरि गाय | .... | २४२ |
| ४०८. | रसना हरि हरि हरि गाय | .... | २५९ |
| ४०९. | रसना मेरी हरि जस गाय | .... | २८७ |

| क्रमांक | पद | | पृष्ठांक |
|---|---|---|---|
| ४३६. | सुणि पीय तुमहि कहू हित गाथ | .... | १५ |
| ४३७. | सति सति करिकैं हरिराम दरस जो पाइये | .... | १६ |
| ४३८. | सांच पियारो पीव कूं झूठें न पतीजै | .... | १८ |
| ४३९. | सांच कहत कित मरिये सोचौ जिय मांहि | .... | १९ |
| ४४०. | सांचि करणी विन करै करतां न पतीजै | .... | २७ |
| ४४१. | सेवा श्री गोपाल की मेरे मन भावै | .... | २८ |
| ४४२. | सीतल रुति राख्यो विस्तार | .... | ३० |
| ४४३. | सोवै कहा सुख जागि न देखै | .... | ३७ |
| ४४४. | समझि न रे मन मेरा भाई | .... | ४१ |
| ४४५. | साई हाजरां हजूरि देखि निकट है न दूरि | .... | ४६ |
| ४४६. | सखि तन मन धन हरि कै बस कीजै | .... | ५५ |
| ४४७. | सुणौं देव देवाधि येक अरज तुम सौं | .... | ७५ |
| ४४८. | सुणहू हे राम जैसी बात भई मोरि | .... | ७६ |
| ४४९. | सुणूं राम रघुनाथ या बीनती दास की | .... | ७६ |
| ४५०. | सोई हरि अभै पद ताहि भै नाहीं | .... | ८१ |
| ४५१. | सोई हरि प्राण पति प्रगट मन किन संभारै | .... | ८१ |
| ४५२. | सुमरि मन सुमरि हरि हेत करि हृदे | .... | ८२ |
| ४५३. | सत्य है साध को सबद मिथ्या न होई | .... | ८४ |
| ४५४. | सु कैसे करि हरि पति को व्रत धारै | .... | ८६ |
| ४५५. | संतौ राम भजन भै भागा | .... | ८९ |
| ४५६. | सुहरि सौं झगरौ किस्यौ पति देऊ हमारा | .... | ९२ |
| ४५७. | सुणी प्रीतम तुमसौ कहौ तै मोह्यो मन मेरौ हो मोहन | .... | १०२ |
| ४५८. | (सखी) हरि प्रीतम अपणो करि लीजै | .... | १११ |
| ४५९. | सोइ अब न पलटि न पति व्रत लजाउं | .... | ११५ |
| ४६०. | सारंग राग सखि सुरि गावै | .... | १२६ |
| ४६१. | सखि हरि पर्म मंगल गाय | .... | १२७ |
| ४६२. | स्याम सनेही करिये सत्य करि | .... | १२७ |
| ४६३. | सुणि सखि स्याम अधिक मोहि प्यारो | .... | १२८ |
| ४६४. | सांचो जन प्रहलाद कहायो | .... | १३७ |
| ४६५. | सैन भगत हरि कौं अति भावत | .... | १३७ |

| क्रमांक | पद | पृष्ठांक |
|---|---|---|
| ४६६. | सुनि मनु तोहि करौं मनुहारि .... | १४५ |
| ४६७. | सुजस मन काहे न गावै .... | १४८ |
| ४६८. | सोई भगवंत भज्यौ मोहि भावै .... | १५८ |
| ४६९. | सब सुख तजि भगवतहि भजिये .... | १५९ |
| ४७०. | सुन्दर वदन रूप राजा .... | १७३ |
| ४७१. | सुनियत हरिजन के रछिपाल .... | १८० |
| ४७२. | सखि वरिसत भादु री मास सर सलिता जल पूरिया .... | १८५ |
| ४७३. | स्याम सघन बरसा रुति आई .... | १८९ |
| ४७४. | सुमंगल गावत ब्रह्म अपार .... | १९० |
| ४७५. | सुभारें भजिनि लीयें पतित पावन कारे हरि .... | १९४ |
| ४७६. | समझि मन करि लै राम सनेहीं .... | १९५ |
| ४७७. | सब सुख निधि गोपाल न गायो .... | २०७ |
| ४७८. | सखी सुखीं रमै रसिक वसि आयो .... | २१० |
| ४७९. | समझि मन हरि भजि और न आनि .... | २१२ |
| ४८०. | सुणिन हो प्रीतम केसवे जन की जाणी पुकारा .... | २३१ |
| ४८१. | समझि मन मेरे हरि भजि .... | २३९ |
| ४८२. | सुमरि मन मेरे रे सब सुख राम सहाय .... | २४० |
| ४८३. | स्याम सनेही प्रीतम मोहत मिलि सुख देहि हो .... | २४३ |
| ४८४. | सब जग काले सांप सघारया .... | २४५ |
| ४८५. | समता ऐसे दिष्टि न आवै .... | २५० |
| ४८६. | साहिब जन एकै करि जानि .... | २५० |
| ४८७. | संतो को हरि को जन कहिये रे .... | २५२ |
| ४८८. | संतो सो सेवग हरि प्यारा .... | २५२ |
| ४८९. | संतो राम सगौ किन गावो .... | २५३ |
| ४९०. | संतो काम धेनु गहि आणी .... | २५३ |
| ४९१. | साधो मैं जीवनि की निधि पाई .... | २५३ |
| ४९२. | साध कहावत लागै वार .... | २५६ |
| ४९३. | सर्व रूप सर्व स्वर स्वामी .... | २५८ |
| ४९४. | सुमरि सुख पाइये रे अति अमृत हरि नांउ .... | २६० |
| ४९५. | सुनि सुत यो परपंच परायो .... | २७० |

| क्रमांक | पद | पृष्ठांक |
|---|---|---|
| ४९६. | सोभित अति हरि को मंगल सुख .... | २७५ |
| ४९७. | सुनि व्रजनाथ व्रज को नेह .... | २८० |
| ४९८. | सुनि व्रजराज व्रज की वात .... | २८० |
| ४९९. | सतगुरू पति आसानि वतावै .... | २८२ |
| ५००. | समझी न परै कछुयक पायो .... | २८२ |
| ५०१. | सोई दास परम पद पावै .... | २८३ |
| ५०२. | सखीरी सुणि मन दीये कीं सुणाऊ .... | २८६ |
| ५०३. | सुणिये हो प्रीतम स्याम सदेसौ .... | २९० |

(ह)

| | | |
|---|---|---|
| ५०४. | हरि हरि हरि हरि हरि हरि हरे .... | २ |
| ५०५. | हरि हरि हरि हरि हरिदै धरै .... | २ |
| ५०६. | हरि रस महिगा पीया न जाइ .... | ३ |
| ५०७. | हरि राम कृष्ण मूल मंत्र साधै जो कोई .... | ७ |
| ५०८. | हरि सुमिरन न विसारिये जपिये मन लाई .... | ८ |
| ५०९. | हरि हरि सुमरि न कोई हार्यौ .... | ८ |
| ५१०. | हरि सनमुख जो पै मन रहि है .... | ९ |
| ५११. | हरि जी सौ प्रेम नेम जो रहि है .... | ९ |
| ५१२. | हरि प्रीतम सौं मन मिल्यौ मिलि मोह लगायो .... | १० |
| ५१३. | हरि पिव सौं मिलि सुख भयो दुख दूरि गवायो .... | १० |
| ५१४. | हरि प्रीतम सो प्रेम को नित नेम न छूटै ... | ११ |
| ५१५. | हरि प्रीतम सौं जो मिल्यौ सोई मन सारा .... | ११ |
| ५१६. | हरि पीव विना कासों कहू मेरे मन की वात .... | १३ |
| ५१७. | हरि प्रीतम मोसौं सखी वोलै न वुलायौ .... | १३ |
| ५१८. | हरि सुमिरण विन तन मन झूठा .... | २१ |
| ५१९. | हरि जी को नाम भज्यौ मोहि भावै .... | २३ |
| ५२०. | हरि जी को नाम कवहू न तजिये .... | २४ |
| ५२१. | हरि विण घर सोभित जैसे कूवा .... | २४ |
| ५२२. | हरि अमृत रस रोग कौ हरता गुरि दीयौ .... | २४ |
| ५२३. | हरि अमृत रस प्रेम सौ प्यासौ जो पीवै .... | २५ |
| ५२४. | हरि गावत सुमिरत फल नीकौ .... | २६ |

| क्रमांक | पद | | पृष्ठांक |
|---|---|---|---|
| ५२५. | हरि ठाकुर करता केसवा सव जीव जीवनि देव नरहरि | .... | ३१ |
| ५२६. | हरि हरे हरि हरि हरे हरि | .... | ३१ |
| ५२७. | हरि गाइ वरि कब गावैगा | .... | ३१ |
| ५२८. | हरि है एक अवुर नाहि कोई | .... | ३२ |
| ५२९. | हरि मारग चालत भै नाहीं | .... | ३२ |
| ५३०. | हरि सुमिरण करिये निसतरिये | .... | ३३ |
| ५३१. | हरि सुमरै ताहि कर्म न लागै | .... | ३४ |
| ५३२. | हरि विण घरत मन वहु भेष | .... | ३६ |
| ५३३. | हरि सुमिरण बेसास बिसार्‌यो | .... | ३८ |
| ५३४. | हरि विण लगी माया धाइ | .... | ३९ |
| ५३५. | हो विधनां विधि रचि जु काई | ... | ४८ |
| ५३६. | है कोई सांचौ दिवाणी | .... | ५० |
| ५३७. | है कोई साध सुभट संग्रामी, धरि संग्राम संभारै | .... | ५१ |
| ५३८. | होई साधू सोई हरि गावै | .... | ५१ |
| ५३९. | हरि पद गावै जो गाइ जाणै | .... | ५२ |
| ५४०. | है कोई अणभै पद को बूझै | .... | ५३ |
| ५४१. | हरि मेरी आरति क्यो न हरो | .... | ५४ |
| ५४२. | है पतित पावन प्रभु मैं सुणि पायो | .... | ५७ |
| ५४३. | हो ब्रजराज सनेही सुणि कहूं एक तुमहीं तुम्हारी वात | .... | ६० |
| ५४४. | हरि सुख सौ सुख और न कोई | .... | ६१ |
| ५४५. | हरि परहरि भरमत मति मेरी | .... | ६२ |
| ५४६. | हरि विण धृग जीवण व्यौहारा | .... | ६४ |
| ५४७. | हरि दीन दयाल जी अपणी दया न दूरि करौ | .... | ६६ |
| ५४८. | हरि सग खेलन हूं चलि तू कित है सखी वरजै मोहि | .... | ६९ |
| ५४९. | हे देव दीनबंधू तुमहि दोस नाहीं | .... | ७४ |
| ५५०. | हो मन मोहन होरी खेल ही लिये संगि सखा बहु वृंदरी | ... | ९९ |
| ५५१. | हरि भजिये मन हेत सों हरि तजिये और रे | .... | १०३ |
| ५५२. | हो सुणि बृजराज रागसांरग सुरि गावत गुण ब्रजनारी | .... | १०९ |
| ५५३. | हरि हरि भजिए कोई सफल घरी | .... | ११२ |
| ५५४. | हो कपि आयो तो मोहि भायो | .... | ११६ |

कैरूं सभा सकल नृप देखत चीर गह्यो अवहारी ।।
हरि सुमरत द्रौपदी पति राखो प्रगटो प्रीति पुकारी ।।३।।
रावण रंक कीयां जिण छिन मैं अनुग सहित सब सेनि संघारी ।।
परसराम प्रभु थापि विभीषण अरु निर्भैकरि लंक संभारी ।।४।।२।।

राग ललित–

तौ मन मान्यो मोहन जी कौ ।।
जाट धनं जु किसाण राम कौ जाणत मरम जमी कौ ।।टेक।।
नाऊ सेवक सैन कहावत सो मरदनियां नीकौ ।।
अरु रैदास चमार चरणं कं पण ही जोरन सीख्यो ।।१।।
बुणी कबीर मिहींमद मंदी घण मोला रंगजी कौ ।।
नामौ छीपौ वागौ सीवै सुंदर वर के जीकौ ।।२।।
जैदे तिथि पाखी बतावै गाइ सुणावै हीकौ ।।
जाकै हृदै बसै जस निर्मल परसराम प्रभु पीकौ ।।३।।३।।

राग भैंरू–

हरि हरि हरि हरि हरि हरि हरे ।।
राम राम राम जपि जन विस्तरे ।।टेक।।
गोविंद गोपाल नांव संभारि ।। माधौ मोहन मुकंद मुरारि ।।१।।
कैसौ कृष्ण कृष्ण निराकार ।। अगम अगोचर अपरंपार ।।२।।
नरहरि नरहरि निर्भै साथ ।। अविगत अकल विसंभर नाथ ।।३।।
पूरन ब्रम्ह निरंजन ठांऊ ।। परसराम प्रभु निम्रल नांउ ।।४।।१।।

राग भैंरू–

हरि हरि हरि हरि हरिदै धरौ ।।
राम राम राम रसनां उच्चरौ ।।टेक।।
तजौ जंजाल कर्म भ्रम पास ।। भावभगति करिधरि वेसास ।।१।।
प्रेम सरस पीवो ल्यौ लाइ ।। नित आनंद काल नहिं खाइ ।।२।।
वाद विवाद झखन जंजाल ।। परसा हरि विण ग्रासै काल ।।३।।२।।

राग भैंरू-

राम राम राम राम जपि मेरे मंना ॥
राम नाम विण नर नरधनां ॥टेक॥
अमृत नाउ अमरल्यौ लीन ॥ गावै वेद द्वारि होइ दीन ॥१॥
राम नाम नवका निजसार ॥ तिरे अनेक वैठि भवपार ॥२॥
अविगत आदि अंत नहिं कोइ ॥ परसा अंतरि बोलै सोइ ॥३॥३॥

राग भैंरू-

केवल कृष्ण केसवा नांउ ॥
ताकी मैं बलिहारी जांउ ॥टेक॥
निर्मल नांउ अमोलक हीर ॥ राम रमत मनि उपजै धीर ॥१॥
सोइ हरि जीवकी जीवनि प्रान ॥ परसा भजि जीऊ भगवान ॥२॥४॥

राग भैंरू-

साधु सगति सुमिरण कूं राम ॥
भाव भगति निर्मल विश्राम ॥टेक॥
विण वेसास न लागै रंग ॥ आस अगनि वन मन कौ भंग ॥१॥
र्भमि व है जिन जग व्यौहारि ॥ पसर्‌यौ अकल अनंत विचारि ॥२॥
उलटि देखि आपा पर मांहि ॥ परसराम हरि है कहा नाहिं ॥३॥५॥

राग भैंरू-

हरि रस महिंगा पीया न जाइ ॥
जो पीवै सो या मन कूं खाइ ॥टेक॥
नाम न मरै न माया मरै ॥ तातै जनमि जनमि दुख भरै ॥१॥
आसा तृष्णा अंतरि साल ॥ क्यौ यह मनुवा होइ निहाल ॥२॥
लोग रिझायो हरिगुण भज्यो ॥ पहर्‌यो स्वांग डिभ नहिं तज्यौ ॥३॥
काम क्रौध वांधे घटि रहै ॥ तव लग दास न पतिकौं लहै ॥४॥
आपा पर जाणैं जो एक ॥ राम भगत कै याही टेक ॥५॥

ब्रम्ह बापक बोलै घर लहै ।। हरि रस सोई चाखै सुखि रहै ।।६।।
नां कोई वैरी नां कोई मीत ।। ऐसी दसा रहै मन जीत ।।७।।
परसराम जीवत जो मरै ।। तव ता जन कौ कारिज सरै ।।८।।६।।

राग भैंरू-

सब मै राम संवारै काम ।।
कासूं कौण कहै वेकाम ।।टेक।।
एकै माटी एकै नीर ।। ताकौ विधना रच्यौ सरीर ।।१।।
भीतर पवन बन्धो सुवसंत ।। वोलै वाणी ब्रम्ह अनत ।।२।।
पूरण ब्रम्ह सकल जग संगि ।। राचि रह्यो माया कै रंगि ।।३।।
अपणी सौ आपण रह्यो समाइ ।। चेतन होइ न दास कहाइ ।।४।।
चेतन हू आन होइ विणास ।। वणै न देही कै संगवास ।।५।।
उठै सवद सिंधु की कहै ।। परसराम प्रभु की को लहै ।।६।।७।।

राग भैंरू

जन धनि रामहि जाणै सोइ ।।
सुमिरै लोक वेद की खोइ ।।टेक।।
जप तप तीरथ पूजा पास ।। अंतरि पति खोजै सोई दास ।।१।।
अंतरि खोजि पिछाणै आप ।। छांडै नरक सुरग पुनि पाप ।।२।।
परसा काल न देही दहै ।। हरि सौ मिलै एक होइ रहै ।।३।।८।।

राग भैंरू-

राम राम राम सूं मेरै काम ।।
और सबै वकिवौ वेकाम ।।टेक।।
कुल आचार विचार न जाणूं तप तीर्थ ब्रत की नही आस ।।
ऊंच नीच कछु समझि न आवै निहचै हरि सुमिरण वेसास ।।१।।
कथनी कथूं न व्यास कहाऊं आस लवधि जिततित नहि जाऊ ।।२।।
राम चरन भजि और न भावै हरि सम्रथ की सरणि रहाऊं ।।
खटकर्म पाकपूजा विधि करणी करि परसा उत्तिम नर न कहाऊं ।।३।।६।।

राग भैरू–

सत गुरु सोज बतावै याहि ।।
तन तैं बिछुरि कहां मन जाहि ।।टेक।।
घट फूट्यां प्राणी कहां जाइ ।। जा तन दीसै रहै न माहि ।।१।।
छांडि माया भयो उदास ।। कौण गयो कहां पायो वास ।।२।।
बाजत पवन थकित होइ रह्यौ ।। माटी परी धरणी घरु गह्यौ ।।३।।
बोलन हार मरै नहिं सोई ।। तौ को जीवै को मिर्तक होई ।।४।।
सुरति निरति मैं रही समाइ ।। नां सोई आवै नां सोई जाइ ।।५।।
परसराम एक अचरज भयो ।। तौ को ठाकुर को जन होइ रह्यो ।।६।।१०।।

राग भैंरू–

का कही ए कहणें नहीं जोग ।।
भूलो भरम न जाणें लोग ।।टेक।।
काजी कलमां पढै कुरान ।। ताकी चलि चालै मुस्सलमान ।।१।।
करै हलाल भार सिरि वहै ।। देखत दीन आपणूं दहै ।।२।।
मुसलमान जो मन कू मुसै ।। काटै कर्म काया कूं कसै ।।३।।
पांचूं चूरि सूर होइ रहै ।। मुसलमान भिस्ति सो लहै ।।४।।
हिंदू राम नाम उच्चरै ।। पूजै भूत कर्म वहु करै ।।५।।
जागत जीव मार करि खांहि ।। तातैं सबै नरक मैं जांहि ।।६।।
जोगी गोरख गोरख कहै ।। ता गोरख कौ मरम न लहै ।।७।।
सो गोरख या घट की मांहि ।। सतगुरु मिलै तौ देइ बताहिं ।।८।।
भूलै मुगध न जाणैं मूल ।। ज्यों जल मांहि सिला अस्थूल ।।९।।
भीतरि भिदै न सुख मैं रहै ।। तातैं जनमि जनमि दुख सहै ।।१०।।
हृदै सुद्धराम जो जपै ।। साध संगति रहै सब दिन तपै ।।११।।
राग दोष तैं न्यारा रहै ।। परसराम प्रभु सो जन लहै ।।१२।।११।।

राग भैंरू-

जन भजन निर्भै निर्वाण ।।
मन सम्रथ होइ गही कमाण ।।टेक।।
क्यौ जुति मिलै अंधारौ मांहि ।। विण रवि उदै उजारौ नांहि ।।१।।
व्याल वरण सौ नित व्यौहार ।। लीयो न आइ ब्रम्ह औतार ।।२।।
कस केस थिर नग्र मभ्मारि ।। नद जसौदा दीनों डारि ।।३।।
देवकी कौ सुत सब जग जाणि ।। वासदेव सूं नहीं पिछांणि ।।४।।
परसराम स्वारथ व्यौहार ।। हरि प्रीतम निर्मल निजसार ।।५।।१२।।

राग भैंरू-

सोई जन धनि जो रामहि जाणैं ।।
कर्म भर्म कुल काणि न मानै ।।टेक।।
तीरथ वरत न वेदहि गावैं ।। जपै निरंजन जनमि न आवै ।।१।।
वाहरि जाइ सु जाण न पावै ।। उजड़ अपणू आणि वसावै ।।२।।
परसराम आस तजि गावै ।। ताकी दिष्टि परम पद आवै ।।३।।१३।।

राग भैंरू-

अंजन भेद भनो वणि आयो ।।
अंजन मांहि निरजन पायो ।।टेक।।
अजन मिल्यां निरंजन गायो ।। अंजन विण वोलै न वुलायो ।।१।।
कीयो निरंजन अंजन भायो ।। वोलै अंजन मांहि समायो ।।२।।
परसा अति संजोग वणायो ।। अंजन मांहि निरंजन छायो ।।३।।१४।।

राग भैंरू-

राम चरण सुमिरण निरवाण ।।
सोई हरि न विसारौं मेरी जीवनि प्राण ।।टेक।।
आगम निगम दुहूं तें न्यारा ।। सिमु सुदरसन प्रान पियारा ।।१।।

अविगत नाथ विसंभर देवा ।। सहज सुरति मैं जाकी सेवा ।।२।।
मूरति अकल सकल मैं वास ।। परसराम दरसै कोई दास ।।३।।१५।।

राग भैंरू–

राम राम राम राम जपि मन मूढि ।।
ऐसो राम विसारि न भव जल बूढि ।।टेक।।
तजि व्यौहार कर्म कुल करणी संक्या वाद विषै रस खोइ ।।
सम्रथ राम संभारि सवेरा तन घटि गयां कछू नहि होइ ।।१।।
अब कैं जो भूल्यौ इहि औसर फिरि फिरि वहुत सहैगौ चोट ।।
परसराम प्रभु राम सरण विन उवरण कूं नाहिं न कोई वोट ।।२।।१६।।

राग विलावल–

हरि राम कृष्ण मूल मंत्र साधै जो कोई ।।
मनसा मन करि मिलाप, भजिए–
निज संचि आप, व्यापै नहीं त्रिविध ताप, जीवै सुखि सोई ।।टेक।।
अचवै सुधा सवोक, निर्मल जल प्रेम पोष,
व्यापति संताप सोक, ताकैं नहि होइ ।।
वोखदि हरि नांव सार, जाकै उरि दुरै विकार,
तिरिए भौ जल अपार, देखत गति होई ।।१।।
निर्भै निर्वाण जाप, मेटै दुख सुख संताप,
संकि तापुर पुन्नि पाप, डारै विष धोई ।।
जाकै प्रगट भये अपार, पर्म भाण अति उदार,
तहां न तिमिर अंधकार सूझै निसि खोई ।।२।।
हरि सम सुख नाहिं और, देख्यौ भ्रम ठौरठौर,
जहां तहां जंजाल जौर, पावक मुखि छोई ।।
अकलप घर पर्म नाव, अस्थिर वेसास ठाम,
परसराम विश्राम, तामैं वसि जोई ।।३।।१।।

राग विलावल-

हरि सुमिरन न विसारिये जपिये मन नाईं ॥
तनि त्रिविधि ताप व्यापै नही संसो सब जाई ॥टेक॥
हरि विपत्ति व्याधि वेदनि हरै बहु विथा विराम ॥
हरि ऐसे उपगार रूप तारण मन काम ॥१॥
हरि भर्म भयारण न सरि सकै तन मन कै फंद ॥
सब पीड प्रहारै हरे हरी हरि है बड़ वैद ॥२॥
हरि सम्रथ आनन्द कंद सोखण सब सोग ॥
जरा मरण जम काल आदि त्रास न अघरोग ॥३॥
हरि निर्मल निर्मल करै मेटै सब दुख दोष ॥
ताहि विषै विकार न व्यापई सीतल सुख पोष ॥४॥
सुमरि सुमरि सब सुद्धरे निर्भै निज नांऊ ॥
परसराम प्रभु नांव की हूं वलि वलि जांऊ ॥५॥२॥

राग विलावल-

हरि हरि सुमरि न कोई हार्‌यो ॥
जिनि सुमर्‌यो तिनहि गति पाई राखि सरणि अपणी निस्तार्‌यो ॥टेक॥
कैरू सभा सकल नृप देखत सती विपति पति नाऊं संभार्‌यो ॥
हाहाकार सवद सुनि सकट तहि औसरि प्रभु प्रकट पधार्‌यो ॥१॥
हरि जिसौ सम्रथ और न कोई महा पतित तिन कों दुख टार्‌यो ॥
करुणा सुमरण निरातुर होइ ग्राहग्रसित गज आणि उवार्‌यो ॥२॥
सोई हरि न विसारौं मेरी जा भगत वछल जु विडद जिनि धार्‌यो ॥
आगम निगम दुहू तै न्यारा हूं, साखि निगम प्रहलाद पुकार्‌यो ॥३॥३॥

राग विलावल—

हरि सनमुख जोपै मन रहि है ।।
तोपै कहां चित करिवे को जो चहियत सोई हरि महि है ।।टेक।।
सकल सिद्धि को मूल कलपतर सोई समरथ इच्छा फल देहैं ।।
मनवांछित पद उच्च अभै सुख हरि कौ दियो फेरि को लेहैं ।।१।।
रवि को उदो असह निसि अति हैं आतुर चलत न पलु रहि है ।।
त्यौ अघ तिमिर ताप तन मन तजि पद प्रकास परसत दुरि जैहै ।।२।।
यह परतीति सत्य सब जाणें हरि सुख सिंधु न दुख कौ सहि है ।।
परसराम प्रभु कौ सेवत जन सो न बहुरि कबहु पछितैहै ।।३।।४।।

राग विलावल—

अब न तजौ हरि पीव कौ मैं प्यासे पायौ ।।
हरि अमृत रस प्रेम सौ पीवत मन भायौ ।।टेक।।
सो पति मोहि प्यारौ खरौ न अभायौ ।।
निमष न न्यारौ सहि सकौं राखूं उर लायौ ।।१।।
मैं अपणें निज प्राण लै हरि संगि लगायौ ।।
जाकूं मैं सर्वस दियौ सोई वसि आयो ।।२।।
हित करिकै दुख हरन कौ तन मन लपटायौ ।।
अब न कछु अंतर रह्यौ मन मनहिं मिलायौ ।।३।।
गुण बहुत मोहि विसरूं नहीं जु आरति रस पायौ ।।
परसराम पर्म हितू हरि जु उर जरत बुझायौ ।।४।।५।।

राग विलावल—

हरि जी सौ प्रेम नेम जोरहि है ।।
तौ कहा जगत उपहासि प्रीति तें सरै कहा कोउ कछ कहि है ।।टेक।।
हरि निजरूप अनूप अभै वरसुवसि भयो ऐसो सुख जहि है ।।
पर्म पवित्र पतित पावन जस सौ तजि कौण सुरगि चढि ढहि है ।।१।।

पतिव्रत भयो तौ रह्यौ नहिं कछु वै ऐसी वड हारिण जारिण कौ सहि है ।।
कौण पतित पति कौ व्रत परहरि भ्रमि संसार धार मैं वहि है ।।२।।
आन उपासन करि पति परहरि घ्रिग सोभा ऐसी जो महि है ।।
तजि पारस पाषाण बांधि उरि वसि घर मैं घर कौ को दहि है ।।३।।
हरि सुख सिधु अपार प्रगट जस सेई सुमरि सुणि करि सुख लहि है ।।
परसराम निर्वाह समझि यह तजि हरि सिघ स्वान की गहि है ।।४।।६।।

राग विलावल—

हरि प्रीतम सौ मन मिल्यौ मिलि मोह लगायो ।।
अव हरि तें विछुरै नहीं हरि मिलि सुख पायो ।।टेक।।
पर्म सनेह सदा रहै जो न विसरत विसरायो ।।
हरि तजि अनत न भर्मइ जु कहू कौं भरमायो ।।१।।
मन हरि सौ मिलि थिर भयो डोलै न डुलायो ।।
हरि निर्मल निति नेम तें भूलै न भुलायो ।।२।।
हरि निजरूप अनूप सौ मन मानि लुभायो ।।
सेइ सुमरि सुणि सव तिरे जिनि जिनि मन लायौ ।।३।।
सरण और हरि सौ कहूं किनहूं न वतायो ।।
परसराम प्रभु पतित को पावन जु कहायो ।।४।।७।।

राग विलावल—

हरि पिव सौ मिलि सुख भयो दुख दूरि गवायो ।।
सेवत हरि सुख सिधु कौ जु इच्छा फल पायो ।।टेक।।
तन मन पलटि अभै भयो भै कर्म नसायो ।।
ज्यौ पारस परसत लौह तें कहि कनक वुलायौ ।।१।।
मैं प्रीतम पर्म सनेह सौ राख्यौ उरि लायो ।।
अव न तजौ भजिहूं सदा सुमेरै वसि आयौ ।।२।।

अंतर तजि सर्वस दीयौ दै भलो मनायौ ॥
हित करिकैं सेयो हितू सोई मुख गायौ ॥३॥
मैं निज अमृत आरति पीयो पीवत अति भायौ ॥
सोई हरि रस रसना परसराम लागत न अभायौ ॥४॥८॥

राग विलावल–

हरि प्रीतम सौं प्रेम कौं नित नेम न छूटै ॥
मैं जतन जतन करि प्रीति सौं बांध्यौ सु न खूटै ॥टेक॥
अति नीकै करि जो लाग्यौ सो नेह न तूटै ॥
चित वसि चिंता हरन कै सुवलु करि न विछूटैं ॥१॥
परम चैन मंगल निधान अचवत न अखूटैं ॥
ता अमी सिंधु संगति सदा मिलि कैं रस लूटै ॥२॥
हरि सदन सदा सुख कौ निवास जस भरि जो जूटै ॥
कंचन गिर भीतरि वसै सु पाषाण न लूटै ॥३॥
अति सनेह हरि पीव सौं मन मिल्यौ न फूटै ॥
परसराम प्रभु आनन्द कद तजि को कर कूटै ॥४॥९॥

राग विलावल–

हरि प्रीतम सौं जो मिल्यौं सोई मन सारा ॥
हरि तें विमुख जहां लगै सू फूटौ संसारा ॥टेक॥
पारस कौं परसत लौह तें कंचन हूवा ॥
सो न पलटि करि लौह होइ जीवै नहिं मूवा ॥१॥
पूरै मिलि पूरौ भयो सोइ जाइ न आवै ॥
ज्यौं सलिता सुख सिंधु सौं मिलि सैल न भावै ॥२॥
सुरति सीप हरि सिंधु मैं सतसंग निवास ॥
नग निर्मोलिक नांव तें निमज्यौं तहीं आसा ॥३॥
निर्मल नित निकलंक सौं सेवत सुख सागर ॥
परसा ताकी जोति कौ रहै परकास उजागर ॥४॥१०॥

राग विलावल–

मन मोहन सौं जो मिल्यो सोई रहत न राख्यौ ।।
सो न पीवैं रस तूस कौ जिनि अमृत चाख्यौ ।।टेक।।
अति सनेह हरि सौ भयौ सुहरि ही हरि गावै ।।
हरि कै रंगि रातौ रहै कछु और न भावै ।।१।।
चात्रिग ज्यौं पीव पीड़ करै पीव मिलि सुख पावै ।।
आन आस तज जगति की स्वात बूंद वर सावै ।।२।।
अति रस लुबध पराग कौं मिलि माहिंन छीवै ।।
मधुप कंवल कैं कोस मैं रस पीयां जीवै ।।३।।
सब चित वित आधीन होइ प्रभु कैं वसि कीयो ।।
हरि हित करि अंतर तज्यौ अपणू करि लीयो ।।४।।
गांठि प्रेम की जो परी सु कैसे करि खूटै ।।
परसा मन गोपाल सौ बांध्यौ सुन छूटै ।।५।।११।।

राग विलावल–

श्री मन मोहन कै रंगि रंग्यौ सुन जात निचोर्‌यो ।।
रगतजै न सो फीको परै भाभैं भक भोर्‌यो ।।टेक।।
हरि सनमुख जबहि चल्यो तब मैं न बहोर्‌यौ ।।
हरि सौं मिलि सर्वस दीयौ मोतैं मुख मोर्‌यौ ।।१।।
पलटि प्रान तहीं कौ भयौ मोतैं चित चोर्‌यौ ।।
हरि आधीन कुरंग ज्यौं डोलत संगि डोर्‌यौ ।।२।।
जतन जतन करि प्रीति सौं पहिलीं मैं जोर्‌यौ ।।
ता पति कौं परति प्रवल भयों तूटत नहिं तोर्‌यौ ।।३।।
मन मोहन चितयो नहि उर मैं हून निहोर्‌यो ।।
नैन उभै सुख सिंधु ज्यौं आवत न अहोर्‌यो ।।४।।

एकमेक पिय प्रेम सौ अंग संग डहोर्‌यो ॥
परसा पै पाणी मिल्यौ सु बिछरत न बिछोर्‌यो ॥५॥१२॥

राग विलावल—

हरि पीव विना कासों कहूं मेरे मन की बात ॥
विना परचै पर देश की कैसी कुसलात ॥टेक॥
को जाणैं मन कौण कौं दीयो अनदीयो ॥
हरि जाणैं के हरि नहि जैसो जिनि कीयो ॥१॥
कीट नींव कौ ईष कै संगि लागि न जीवै ॥
जो उपज्यौ रस ईष कै सुजीव न पीवै ॥२॥
मन बांध्यौ जा नेम सौ सोई प्रेम पिछाणैं ॥
परसा साचन छूटई जो भूठैं परवाणैं ॥३॥१३॥

राग विलावल—

हरि प्रीतम मोसौं सखी बोलै न वुलायौ ॥
कहा करूं कैसै रहूं मानैं न मनायौ ॥टेक॥
मैं अनाथि आधीन होइ अपभुवन वसायौ ॥
सर्वस लै आगैं धर्‌यौ रीभैं न रिझायौ ॥१॥
नीकै करि मैं आपणूं ग्रह भेद वतायौ ॥
सव तन मन धन आदि दै कछुवै न दुरायौ ॥२॥
कवण दोस तैं मौनि प्रभु कछु कहि न सुनायौ ॥
यहैं बहुत धोखौ दहै जु मैं मरम न पायो ॥३॥
सव सयान निरफल कछु कियौ न करायो ॥
परसराम प्रभु जब लगैं नाहि न वसि आयो ॥४॥१४॥

राग विलावल—

मन किन करी काहूं सों कहै पेरक होइ पैरैं ॥
यहै सोच संसौ सदा जु व्यापै जीअ मेरैं ॥टेक॥

देत न अंतर और कूं अपणूं ज्यौंही त्यौंहीं ॥
वातै वहुत बनाइ करि मिलवौ कोई क्योंही ॥१॥
कहै कछू कछुवै करै कोई मरम न पावै ॥
जिसौ वाहरि भीतरि तिसौ कछू कहत न आवै ॥२॥
व्यापक वपु धरि धरि सवै जहा तहां जिनि मोहि ॥
आवत जातन जाणीए सु निधि जात न डोहि ॥३॥
सर्वस सव काहू कौ कहूं जाकै वसि आवै ॥
सुमन सु अंतर आपणूं काहूं कौं न दिखावै ॥४॥
रहै समीप सदा मिल्यौ संगि लाग्यौ डोलै ॥
अति न अतर आपणूं काहूं सो सुन बोलै ॥५॥
परसा प्रभु देखै सुणै वोलै संगि सोई ॥
समझि न कछु ताकी परैं जैसो जो होई ॥६॥१५॥

राग विलावल—

अविगत गति जाणी न जाई काहू कै कीऐं ॥
अगम अगोचर निगम तें जु खोजत मन दीऐं ॥टेक॥
अवरण वरण ईहां उहां कहिए जो ऐसा ॥
सेत न पीत न स्याम सो जैसे का तेसा ॥१॥
कोई कैसेही कहौ मति कौ उन मानां ॥
ज्यौं पंखी सवलै उडै अपणूं उडानां ॥२॥
उडि जाणै सोई उडै पांखां कै सारै ॥
गहि राखै न गिराई देई जीतै न कछु हारै ॥३॥
सुरग कवण तै दूरि है अरु कौणै तै नीरा ॥
सव काहू कौ सारिखौ तातौ न कछू सीरा ॥४॥
डोलै डिगै न अरु फिरै कहूं न आवै ॥
जैसे कौ तैसो रहै परसा मुख गावै ॥५॥१६॥

राग विलावल–

प्रीतम है वसि प्रीति कैं सुन्दरि सु पिछाणें ।।
ज्यौ दरपण दिस नैणा कैं पारिख परवाणें ।।टेक।।
दिसि मुसि आवै नहीं ऊंचो असमानै ।।
सोइ पाइयत प्रतिविव मैं अंतरि आमानैं ।।१।।
जलथल कुल व्यापक सवै वरतै निज आणै ।।
ज्यौं वरिषा रुति जलऊंच कौ गिरि तकै निवाणै ।।२।।
दुरै न वात दुराव की जु करिए मनि मानै ।।
अंतर की जाणें सवै हरि खरे सुजानै ।।३।।
सनमुख कौं सनमुख सदा प्रानन कै प्राणै ।।
परसराम प्रभु मिलन कैं सुणि लै सहिनाणै ।।७।।१७।।

राग विलावल–

सुणि पीय तुमहि कहू हित गाथ ।।
रामचन्द्र वल विना जु वल उरि ध्रिग सोई जीवन जनम अकाथ ।।टेक।।
जाकै सिव विरंचि से जाचिक ठाढे द्वार पसारै हाथ ।।
निगम रटत नित नेत नेत कहि पावत नहिं दरस निज साथ ।।१।।
ब्रह्म अगम सोई भयो समागम तेरै भागि प्रकट दसमाथ ।।
पर्म उदार चरण चिंतामणि हृदै सुधरि भेटौ भरि वाथ ।।२।।
साखि अगिरण हूं कहूं कहां लगूं महापतित भजिए सुनाथ ।।
परसराम प्रभू अंतरजामी भजिए जौग तिलक रघुनाथ ।।३।।१८।।

राग विलावल–

रघुपति हितै हमार तात ।।
मनक्रम वचन सत्य करि रसना,
गावत सुनत सदा निसि प्रात ।।टेक।।
अगम नीर जहां नांव न चालै पंखि न पहुंचै लगै न घात ।।
ता जल मैं रघुनाथ नांव तै देखौ सिला तिरि ज्यौ पात ।।१।।

देखि प्रगट कपि भुवन भुवन परि फिरत निसंक न नैक डारत ।।
रामचन्द्र वल चपल विचारत गिणत न तोहि पलक पल मात ।।२।।
सोई मतिमूढ अज्ञान अंध पसु जाहिं न भावै हरिजी की वात ।।
परसराम प्रभु प्रगट विराजत मेरी जीवनि वै सुनि भ्रात ।।३।।१९।।

राग विलावल–

सति सति करिकैं हरिराम दरस जो पाइये ।।
तवही सव आनन्द सुमंगल देखि प्रगट सिरनाइये ।।टेक।।
चरण कंवल की रज लै पट सौं अपणैं कर उर लाइये ।।
तन मन सुद्ध होइ पद परसत अरु त्रै ताप नसाइये ।।१।।
पर्म रसाल सुजस रस रसनां पति कौं गाइ सुनाइये ।।
सोई वड़भागि जन्म साफल्य सोई सर्वस दै भलौ मनाइये ।।२।।
मनक्रम वचन सत्य करि इत उत चितवन चित न डुलाइये ।।
निरखि निरखि निजरूप अनुपम परसा वलि वलि जाइये ।।३।।२०।।

राग विलावल–

राजत है रघुपति पुर आवत ।।
सोलह कला संपूरण ससि ज्यौं निसि मैं सोभा सिंधु दिखावत ।।टेक।।
घर घर के नर नारि वाल सुनि सिमिट सकल संनमुख उठि धावत ।।
चन्दन तिलक थाल माला करि कनक कलस आरति वंदावत ।।१।।
मिलत भरथ रघुनाथ सौं भ्राथा दरस परस सव जन सुख पावत ।।
व्रम्ह अगम गमि निगम न पावत ताकै लोचन जल वरिखावत ।।२।।
अति औसर कपि सेस विचारत महा चरित गति उर न समावत ।।
घुरैं सरस निसाण सुमंगल जय जय सुर परसा जन गावत ।।३।।२१।।

राग विलावल–

उर व्रत धरि करि मन राम-सुजस जो गाइये ।।
तव ही सव आनन्द सुमंगल मन वंछित फल पाइये ।।टेक।।

भजिये हरि हरि हरि आरति करि पुनरपि जनमि न आइये ॥
रहिये चरणि सरणि समथ की भ्रमि जमलोकि न जाइये ॥१॥
जहां वैसे सिरमौर सिरोमनि तही वैकुंठ बसाइये ॥
भव संकट कारणि हरिपुर तैं वहुरिन फैरि पठाइये ॥२॥
तहां निर्भै सदा काल भय नांहि अभै सरणि सिर नाइये ॥
रहिये प्रेम सिंधु मिलि 'परसा हरि अचवत न अघाइये ॥३॥२२॥

राग विलावल—

राम सुमरि सचु पाइये सुमरै जो कोई ॥
काल कर्म की चोट तैं उवरैं जनसोई ॥टेक॥
ऐसी कहिये कौण सौं को कहि न मानैं ॥
मानैं जो जाकौ गुर मिल्यौ निगुरौ कहा जानैं ॥१॥
मन न भजै साचै मतै झूठौ मत ढाणैं ॥
अपणौं पिंड न खोजई ब्रह्मंड वखाणैं ॥२॥
दाता भुगता कोण है तिरि है को तारैं ॥
जात वह्यौं भौ सिंधु मैं आपौ न संभारै ॥३॥
आप संभारैं सोतिरैं वूडै पर आसा ॥
परसा आसा वसि भये न मिलै हरि दासा ॥४॥२३॥

राग विलावल—

ऐसे क्यौं हरि पाइये मन चंचल भाई ॥
चपल भयो चहूं दिसि फिरै राख्यौ न रहाई ॥टेक॥
मैं मेरी छूटै नहिं करता गुण वीध्यौ ॥
काम क्रोध को ध्यान लै विष सौं रचि रीझ्यौ ॥१॥
डिंभ मोह माया वसूं आधीन बडो वंधायौ ॥
आस लबधि परवस पर्यो पति छांडि विकायो ॥२॥

का पूजा परपंच की देखै रु दिखावैं ॥
का जप तप वेसास विण व्रत तीरथ न्हायैं ॥३॥
अनत कला काछै कछै बहु स्वांग दिखावै ॥
मूरख आप न समझई औरनि समझावै ॥४॥
कहा तिलक छापा दिये नाचै अरु गावै ॥
आवा गवण न जाइहै भरम्यौ भरमावै ॥५॥
मूंड मूंडायो तौ का भयो तन पहरि माला ॥
अंतर कपट न छूटई कां वसै गोपाला ॥६॥
कहा कथा कविगुण कहै जो तत्त्व न जाणैं ॥
आपा पर एक आतमा परतीति न आणैं ॥७॥
गायैं सुणैं न सुख भयो अरि मिटैं न भै सो ॥
भीतरि भिद्यो न सुख लह्यो जैसे को तैसो ॥८॥
आस करै वैकुंठ की मनकी नहीं छूटि ॥
जवलग मनवो वसि नहीं तवलग सव झूठि ॥९॥
कपट कियां रीझै नहीं करता नहीं काचौ ॥
परसराम प्रभु तौ मिलै जो होई मत साचो ॥१०॥२४॥

राग विलावल–

साच पियारो पीव कूं झूठैं न पतीजै ॥
झूठे तैं न्यारौ रहै सांचै सौं धीजै ॥टेक॥
परम सुजान ज्यों हरि हंसि कंठि लगावै ॥
तिहिं परचै हरि पीव कौ सेवक सुख पावै ॥१॥
खरि कसौटी जो सहै सहि करि जव सीझै ॥
तव कब हूं ता प्राण सौं हरि प्रीतम रीझै ॥२॥
पूरै पूरौ ऊतरै कसतां कसि पूजै ॥
सो निरमौलिक निपज्यो नग नांव कहीजै ॥३॥

साहिव दरी खोटो खरो विण कस्यो न छूटै ।।
सिरी सहै धमक निसंक होई हीरो सु न फूटै ।।४।।
काच कथीर न सहि सकै कसणी जो काचौ ।।
जतन करत ही विणसी जाइ पति सौ नहीं साचौ ।।५।।
सब काहू को पारिखूं पारिख सव साधै ।।
परसराम परख्यां बिना तौ प्रभु गांठि न बांधैं ।।६।।२५।।

राग विलावल–

सांच कहत कित मारिये सोचौ जिय मांहि ।।
जव लग लज्या लोक की तव लग ल्यौ नांहि ।।टेक।।
देव अगिन को को भये नाहिन अनदेही ।।
देह अगिन अण भै रचै ल्यौ राम सनेही ।।१।।
बांधै भर्म विकार सौ दीसै भै मांही ।।
मन तजि मन हरि सौ रमै तांकौ भै नाहीं ।।२।।
कर्म भर्म आधीन होइ हरिसौ न पत्यारो ।।
हरि आधीन न दीन होइ दुनिया तैं न्यारो ।।३।।
मूआं स्वारथ सब मिटै जीवत साध न होई ।।
कर्म भर्म आसा तजै परसराम जन सोई ।।४।।२६।।

राग विलावल--

जब कबहूं मन हरि भजै तबहि जाई छूटै ।।
नौतरि जग जंजाल तैं कबहूं न विछूटै ।।टेक।।
काम क्रोध मद लोभ सौं वैरी सिर कूटै ।।
हरि विण माया मोह कौ तंतूर न तूटै ।।१।।
हरिख सोक संताप तैं निज नेह निखूटै ।।
हरि निर्मल नीर न ठाहरै मनि वासणी फूटै ।।२।।
सोच पोच संसौ सदा सर्पिणि ज्यों चूंटै ।।
परसा प्रभू विण जीव कौ दुख सुख मिलि लूटै ।।३।।२७।।

राग विलावल-

राम विना कौ राखि है सरणै मन मेरे ।।
भूलौ कित जंजाल मैं सुमिरत नहीं चेरे ।।टेक।।
जै सुमिरै सुख कारणै भीर परयां टेरे ।।
नांहि छूडावण कौ हितू सुमिरे बहुतेरे ।।१।।
अंति कालि संकट परयां देखत जम घेरे ।।
सजन कुटुम्ब सुत सुन्दरि आवत नहि नेरे ।।२।।
छांडि कपट भजि नरहरि मेटै भ्रम फेरे ।।
परसराम जग जनम बंध काटै प्रभु तेरे ।।३।।२८।।

राग विलावल-

घरि गोपाल न देखई बाहिर कित धावै ।।
रे मनसा मन मूरखा तौ कौ बोरावै ।।टेक।।
अह ममता तोकौ दहै तेरी नहीं ठौरै ।।
तूं जाणत कहूं दूरि है करता कोई औरै ।।१।।
त्रिकुट कोटरी क्यौं रहै आवै ताहि मारै ।।
मारि कहूं पठवै नाहि अपणूं करतारै ।।२।।
कलि जुग है घर काल कौ द्वापर भरमावै ।।
त्रेता गुण तीनौं मिटै सत जुग सुख पावै ।।३।।
जाणत है जग की सवै जग नांहिन जाणै ।।
भूलि रहै भौ मैं सवै कोई दास पिछाणै ।।४।।
दीसै सव मैं सारिखौ खोजै सव पावे ।।
परसराम प्रभू निकसत है निसांण वजावै ।।५।।२६।।

राग विलावल-

अव मोहि राम आस तेरी ।।
नांहिन आन उपाय आसिरौ तो विन देव सकल हेरी ।।टेक।।

तूं ही दाता तूंही भुगता तू पूरण सब माया है तेरी ॥
तारण तरण सकल कौ करता तूं समृथ जीवनि मेरी ॥१॥
तो विन ठौर नहीं मो जन कौं तीनौं लोक दई फेरी ॥
परसराम प्रभू तुम चितवन रहौ दुविध्या जिन आवै नेरी ॥२॥३०॥

राग विलावल-

उत्तम कुल तै का सर्यो जो राम न भावै ॥
तातै सुपचि सिरोमनि जु गोपाल ही गावै ॥टेक॥
साखि महामुनि वेद व्यास विध्या अधिकारी ॥
तन की तपति तबैं गई जब फेरी विचारी ॥१॥
छाडि भर्म अहंकार भार नारद गुर किया ॥
करि सेवा तन मन दीया निर्भै निज लिया ॥२॥
और सूनूं सुखदेव कौ तपकुल अभिमानी ॥
आई विदेही गुर कियौ तब तै गति जानी ॥३॥
व्याध गीध पसु पांखि साखि सुमिरत गति पाई ॥
परसराम हरि विण पवित्र मिथ्या चतुराई ॥४॥३१॥

राग विलावल-

हरि सुमिरण बिन तन मन झूठा ॥
जैसे फिरत पसू खर सूकर उदर भरत उंदर भ्रमि बूठा ॥टेक॥
अकर्म कर्म करत दुख देखत मद्धिम जीव जगत का झूठा ॥
निर्धन भये रामधन हार्‌यौ माया मोह विषै मिलि मूठा ॥१॥
हरि सुमिरण परमारथ पति विण जमपुरि जात न फिरत अपूठा ॥
परसराम तिनसौं का कहिये ज्यो पारब्रम्ह प्रीतम सों रूठा ॥२॥३२॥

राग विलावल-

नरदेही धरि हरि न कह्यो जो ॥
ध्रिग जीवन जग जन्म गंवायो भौसागर भ्रम धार वह्यो जो ॥टेक॥

देखि विभव विस्तार अलप सुख अभिमानी मन मगन भयो जो ।।
माया मोह विलास विषै सुख पावक परि तन प्राण दह्यो जो ।।१।।
कनक भुवन नृप राज महावल है गै वदी करत गयो जो ।।
मानं वसत भुजग सदा निसि नीर विनां वनि कूप ढह्यो जो ।।२।।
अति अहकार विकार आप वलि गायो सुण्यो न सुजस लयो जो ।।
परसराम भगवंत भजन विन अनुग सहित जम लोकि गयो जो ।।३।।३३।।

राग विलावल–

गर्व न राघौ सहि सकै गर्वो जिन कोई ।।
उलट पलट छिन मैं करै मैं कीया न कोई ।।टेक।।
सुर्ग धरै घर ऊपरै धर सुर्ग चढ़ावै ।।
मन मानै त्यौं प्रेरवे वहु नाच नचावै ।।१।।
धन जोवन कुल संपदा असपति अधिकारी ।।
गर्वहिं रावण वहि गयो कचन पुर हारी ।।२।।
गाफिल होइ न सोईये मुसिये घर सारा ।।
भोर भयां पछताइये जव होइ उजारा ।।३।।
हरण करण जाणैं सवै अन्तर जामी ।।
परसा सो न विसारिये हरि समथ स्वामी ।।४।।३४।।

राग विलावल–

वल औतार स्याम सुखदाइक ।।
पूरव प्रीति संभारि नंद की भगति हेत जसोदा वसि आइक ।।टेक।।
उधौ कुबिजा अक्रूर देवकी अग्रसेन वसुदेव मनभाइक ।।
संकित असुर कंस कुल जीय मैं आयो काल निकटि न सुहाइक ।।१।।
घर घर मंगलाचार बधाई नरनारी गावै जस वाइक ।।
परसराम प्रभु कृष्ण कंवल दल मथुरा प्रगटै वैकुंठ नाइक ।।२।।३५।।

राग विलावल–

अघ तिमिर दूरत हरि नांव तै ।।
ज्यौं रजनी चलिवे कौं चंचल थिर न रहत रवि घाम तैं ।।टेक।।

सुमिरण सार प्रगट जसु जाकौ भवतारण गुण ग्राम तैं ।।
जामण मरण विघन टारन कोई और नहीं वड राम तैं ।।१।।
कलह केलि कुल काल कलपना कटत कलपतर छाम तैं ।।
मिटत दुरति दुर्वासि दुसह दुख सुख उपजत अभिराम तैं ।।२।।
पतित पतित पावन पद परसत छूटत छल बल काम तैं ।।
तन मन सुद्ध करण करुणामय नर निर्मल निहकाम तैं ।।३।।
हरि हरि हरि सुमिरन सोई सुकृत विरकत मतधन धांम तैं ।।
असरन सरन प्रेम रत जन कौं करण अरति भ्रम भाम तैं ।।४।।
हरि सुमिरै ताकौं भै नाहीं निर्भै निज विश्राम तैं ।।
(जो) लिपै नहीं संसार सुपरसा अधिकारी जल जाम तैं ।।५।।३६।।

## राग विलावल.

जाको हरि जी कौ नांउ न भावै रे ।।
उलट्यौ जाइ नदी कै जल ज्यौं जग मिलि जनम गंवावै रे ।।टेक।।
हरि जी के नाव सुन्यां दुख उपज्ये आन भज्यां सुख पावै रे ।।
आपण विगरि विगारै और निमत्ति भर्म्यो भरमावै रे ।।१।।
गर्व संकट संसार धार मैं आवत जात विकावै रे ।।
सूकर सर्प स्वान खर पसु की अगिन जूणि फिरी आवै रे ।।२।।
जम की त्रास भौ काल पास तैं हरि विण कौन छुडावै रे ।।
परसा प्रभु विण अंत जीव सुभीर पर्‌यां पछितावै रे ।।३।।३७।।

## राग विलावल–

हरि जी की नांव भज्यौ मोहिं भावै ।।
मन क्रम वचन सत्य करि रसना हरि हरि सुमरि सुमरि सुख पावै ।।टेक।।
भगत वछल भै हरण भगत वस भौ तारण भौ पार पठावै ।।
पतित पार कर कृपा सिंधु सो कृपण पाल गौपाल कहावै ।।१।।
असरण सरण अनाथ बंधु हरि अधम उद्धारण विडद वुलावै ।।
दीन वंधु दातार दयानिधि सुनि सोभाग भरोसो आवै ।।२।।

तिरत काठ पाषाण नांव तें नर न तिरैं क्यौं जो हरि गावै ।।
परसराम हरि दीपग उर धरि साखि संत मुनि स्मृति बतावै ।।३।।३८।।

राग बिलावल–

हरि जी कौ नाम कबहूं न तजियै ।।
मन क्रम वचन अविसर रसुनां निसि वासर गोविंद ही भजिए ।।टेक।।
जठरा अगनि जरत जिनि राख्यो सो परहरि आन ही कित रजिए ।।
रहिये सरणि सदा सुखतर की पावन प्रेम रजा सौं गजिए ।।१।।
भौ सागर दुस्तर हरि तारग साखि प्रगट सुणि सुणि सुख सजिए ।।
हरि समृथ सुखमूल कलपतर ताहि बिसारि न औरहि जजिए ।।२।।
निर्फल जाण सयाण विभै वल और सकल बकवौ बेकजिए ।।
असरण सरण पतित पावन जस परसा ताहि न गावत लजिए ।।३।।३९।।

राग बिलावल–

हरि विण घर सोभित जैसे कूंवा ।।
भगति नीर बिन सूनि सदा निसि संसौ साल सोक निधुवा ।।टेक।।
तामाहि वसत भुजंगनि भामनि सपलेटक छोटकते जुवा ।।
विषै विकार भरे नखसिख लौं अक्रम कर्म कर्ण कौं हुवा ।।१।।
अति भयभीत रहत निसवासर घर मही नर बिलावसि सुवा ।।
सदा दुखि सुख लहत न कबहुं घर घर करि पापी पडि मुवा ।।२।।
फूलै फिरत असोम अलखै निर्फल कडबेलि के फुवा ।।
उपजि खिरत बहूवार जगत मैं ज्यौं तरवर के पके पतऊवा ।।३।।
विणसि जात विश्राम विमुख सब क्यौ सुधरत नाहिन हरि दुवा ।।
परसा प्रभु कौं भजि न सकत सठ कहि अंति नर हुवा अण हुवा ।।४।।४०।।

राग बिलावल–

हरि अमृत रस रोग कौ हरंता गुरि दीयौ ।।
सिव सैस आदि सनकादि साखि जिनि जिनि रस पीयौ ।।टेक।।

सव सुमिरण कौ सार सो सुक नारद भाख्यौ ॥
हरि नांव कह्यो तिण सव कह्यो कहिवै न कछु राख्यौ ॥१॥
यज्ञ जोग जप तप तुलां तीरथ व्रत न्हाहिं ॥
हरि नाम वरावर दैन कौं दूजो कोइ नाहि ॥२॥
जदपि वडो वैकुंठ है सोई हरि मांहिं ॥
हरि हरि कहै सु हरि मिलै वैकुंठ न जाहिं ॥३॥
हरि पारकरण संसार तैं तारण सुख नामि ॥
ऐसे–प्रभु कौं परि हरै सोई है लूण हरामि ॥४॥
हरि निहकर्म जहां वसे तहां कर्म न लागै ॥
परसराम पावन सदा जो हरि सों मिलि जागै ॥५॥४१॥

राग विलावल–

विप्र कर्यो तौ का सर्यौ सुचि साच विहिणूं ॥
विषय लीपति सोई आतमां डोलत हरि हीणूं ॥टेक॥
हरि तैं विमुख सदा रहै हरि नांव न जाणैं ॥
हरि जन की निंदा करै मुख आन, वखाणैं ॥१॥
न्हायौ धोयो सुचि भयो निर्मल होइ आयो ॥
घर मैं सुद्राणी वसै ताकै करि खायो ॥२॥
काछाने जल मंजन कहै गाई श्री कैसी ॥
जग्यो पवित्र न आदरै पतनि सव जैसी ॥३॥
खान पान तिन मैं सदा भौंटे सव भांडे ॥
परसा चाल गंवार की तौ काहे कै पांडे ॥४॥४२॥

राग विलावल–

विप्र जनम सव तैं भलो जो हरि फल लागै ॥
हरि लीव लीण सदा रहै जु संसारहिं त्यागै ॥टेक॥

हरि जप हरि तप व्रत हरि तीरथ न्हावै ।।
हरि तजि कर्म न भर्मई सोई विप्र कहावै ।।१।।
द्वादश अर्द्ध सदा करै अष्टार्द्ध जानी ।।
सष्टार्द्ध न परहरै विप्रा सत्रमानी ।।२।।
हरि सेवा सुमिरन करै और न करि जाणैं ।।
ब्राह्मण सोई परसराम जो ब्रह्म पिछाणैं ।।३।।४३।।

राग विलावल—

वैद कहा जो विथा न बूझै ।।
करि न सकै उपचार और कौ जीवनि जडी नजीक न सूझै ।।टेक।।
कछुवै कहैं करै कछु औरैं वोषधि व्याधि संग नहीं साथौ ।।
अड़क वैद नाड़ि सुम्रति विण जो दूखै पेट पपोलै माथौ ।।१।।
नाभि वसत मद मृग निकस्यो भजिलीनूं मानि भर्म भरिवाथौ ।।
भज्यौ सकल संसार आस धरि तज्यौ नाथ भर्मि भयो अनाथौ ।।२।।
उद्र उपाई करत पापी पसु भगति विमुख डार्‌यो हरि हाथौ ।।
परसराम परचै विण पाणी ताकौ जीवन जनम अकाथौ ।।३।।४४।।

राग विलावल—

वात विचारौ सांच की दिल मैं जो आवै ।।
दिल आइ दुख कौं हरै दूजी न समावै ।।टेक।।
मुसलमान खतने कियां औरति हींदवानी ।।
उजूकल मैं खतनैं बिनां क्यौं मुसलमानी ।।१।।
उनि काटि पठायो क्यौं नहीं जु ग्रभ मैं ही पासा ।।
हरि हिंदु करि पठ्यो यहां तुम काट्यो किहि आसा ।।२।।
सुनति दिसक देह कौ करि कै कहा कीनूं ।।
जो हरि प्रेरक प्रान कौं सोई हेरि न लीनूं ।।३।।

साहिव मानैं सांच की करणी जो करिये ।।
जूठि करणी परसराम करी पार न परिये ।।४।।४५।।

राग विलावल–

साची करणी विन करै करतां न पतीजै ।।
काची कौ मानै नहीं तौ काहे कौ करीजै ।।टेक।।
जीव दया दिल मैं नहीं भावै मद मांसा ।।
चाहै भिस्ति खुदाय पैं मोहि आवै हांसा ।।१।।
पकडि मंगावै जीव तौ मृतक कर खांहि ।।
जौर जहर जगदीश सौं करि दोजिग जाहि ।।२।।
आपण मारै हक कहै हरि हथि हरामा ।।
जिवा अरथ जु कारणै वडे वेकांमां ।।३।।
हक हलाल विना सवै निफंल जो करिये ।।
कर्म अनाहक परसराम करि दोजगि परिये ।।४।।४६।।

राग विलावल–

जो हरि नांव न वीसरैं सुमिरैं सुमिरावैं ।।
मनसा वाचा कर्मना हरिकौ सोई भावै ।।टेक।।
हरि लिवलीण सदा रहै हरि सौं मन लावै ।।
हरि परहरि दिस और कौ मनसा न डुलावै ।।१।।
हरि हरि हरि हरिदै धरै धरि ध्यान लगावै ।।
हरि निर्भै पर पाइकै भव मांहि न आवै ।।२।।
हरि सेवा सुमिरण करै हरि कै गुण गावै ।।
हरि हरि भजत न भूलई हरि पुर सोई पावै ।।३।।
सोभा नर औतार कौं हरि कौं सिर नावै ।।
हरि सौं प्रभू तजि परसराम पदई न लजावै ।।४।।४७।।

राग विलावल-

सेवा श्री गोपाल की मेरे मन भावै ।।
मनसा वाचा कर्मणा याही मन आवै ।।टेक।।
करि दंडोत सनेह सों सनमुख सिर नावै ।।
लोचन भरि भरि भाव सों हरि दरसन पावै ।।१।।
हरि चरण कंवल हिरदै सदा थिर अधिक बसावै ।।
प्रेम नेम निहचौ गहै मन दै लिव लावै ।।२।।
उमगि उमगि आनन्द सों हरि के गुण गावै ।।
यों प्रसाद फल परसराम जो हरि भगत कहावै ।।३।।४८।।

राग विलावल-

हरि अमृत रस प्रेम सों प्यासौं जो पीवै ।।
सो न मरै अस्थिर सदा जुग जुग जन जीवै ।।टेक।।
परम पवित्र सुनाम तैं सुमिरैं सुख पावैं ।।
सो न डरै जम काल कैं सिरी ताल बजावैं ।।१।।
नर पावन सद गति सदा सुमिरै हरि सोई ।।
हरि आसा तजि आन की आधीन न होई ।।२।।
सूझै सकल सनेहियां सम्रथ सुखकारी ।।
तिमिर हरण हिरदै बसै व्यापक बनवारी ।।३।।
लिपै नहीं संसार सौं सब तैं निरभारा ।।
साखि प्रगट जल जाम ज्यों न्यारे तैं न्यारा ।।४।।
जग पंडित दातार सूर कविराज कहावै ।।
हरि लिवलीण गुलाम कौं सबहि सिर नावै ।।५।।
सोई कुलीण उत्तम सदा निरमल बडभागी ।।
परसराम हरि नाम सौं जाकी ल्यौ लागी ।।६।।४६।।

राग टोडी-

मन हरि भजि हरि भजि हरि भजि लीजै ।।
हरि सुमिरण मन विरंबन कीजै ।।टेक।।

हरि सुमिरण विन दादि न आगै ॥
हरि तै विमुख भयां जम लागै ॥१॥
ज्यौ दर्पन सुख अंध न देखै ॥
यौ हरि विण जनम अलेखै ॥२॥
हरि सुख मूल भज्यां दुख छीजै ॥
परसा हरि अमृत रस पीजै ॥३॥१॥

राग टोडी–

हरि गावत सुमिरत फल नीकौ ॥
जीवन जनम सफल ताही कौ ॥टेक॥
हरि नर कौ सुख नाक सखी कौ ॥ नाक विन आभूषण फीकौ ॥१॥
पहुप पराग पियां सुख फीकौ ॥ परसा हरि भजिए सोही टीकौ ॥२॥२॥

राग टोडी–

जो न भज्यो नाव हरि जीकौ ॥
तौ हरि विण जनम अकारथ जीकौ ॥टेक॥
ज्यो विकल जीव संगि बुद्धि भ्रमि कौ ॥
सोच न उपजत समझि गमि कौ ॥१॥
रुचि करि अचवत ऊस जमी कौ ॥
डारत कर तै कलस अमी कौ ॥२॥
परसा तन सुमिरण विन फीकौ ॥
तन वर हरि भजिए सोई नीकौ ॥३॥३॥

राग टोडी–

जाइये न आइये आइये न जाइये ॥
हरि सेवा सुमिरन मन लाइये ॥टेक॥
हरि ल्यौ लीन भयां सुख पाइये ॥
हरि परहरि मनसा न डुलाइये ॥१॥
हरि निर्मल नाव निरंतर गाइये ॥
परसा प्रभु भजि प्रेम समाइये ॥२॥४॥

राग टोडी-

गार्वहि तौ मन रामहिं गाई ॥
राम बिना चित अनत न लाई ॥टेक॥
राम सुमंगल पद निर्वाण ॥ जा घटि वसै सत्य सोई प्राण ॥१॥
नर सोई जो राम ल्यौ लीण ॥ राम विमुख तांको मति हीण ॥२॥
राम संजीवणी मंत्र अधार ॥ परसराम प्रभु हरण विकार ॥३॥५॥

राग टोडी-

राम सुमिर मन रामहिं गाइ ॥
राम बिना नहीं आन सहाइ ॥टेक॥
अपमारग तजि विषय विकार ॥हरिहरि भजि केवल निजसार ॥१॥
कर्म उपाय न करि भ्रम और ॥ राम बिना झूंठि सब ठौर ॥२॥
राम समान मित्र नहीं कोंई ॥ परसा प्राण जीवन धन सोई ॥३॥६॥

राग टोडी-

राम विसंभर तेरा नाऊ ॥
सिर ऊपर राखौं बलि जाऊ ॥टेक॥
पायौ निकट परम सुख ध्यान ॥ सीतल सिंधु भर्यौ अमान ॥१॥
राखौ सरण सकल के धणी ॥ अबकै मोहि तौही निकै बणी ॥२॥
भागौ जिन मैं नाहीं देऊ जाण ॥ परसराम प्रभू तेरी आण ॥३॥७॥

राग टोडी-

सीतल रुति राख्यौ विस्तार ॥
उनयौ सघण अणंत नहीं पार ॥टेक॥
वरिखै ब्रम्ह अमीरस झरै ॥ पीवै सु, जीवै दूजा मरै ॥१॥
पीवण हार मरै नहीं सोई ॥ जो पीवै सो निर्भै होई ॥२॥
परसराम रूप बलि जाऊं ॥ संरस महारस प्रेम समाउं ॥३॥८॥

राग टोडी–

हरि ठाकुर करता केसवा सब जीव जीवनि देव नर हरी ।।टेक।।
ताकूं जपूं सकल की जिन करी ।। अधर धरनी अधकर लै धरी ।।१।।
पवन थंभ दै रच्यौ अकास ।। आप निरन्तर अंतरि वास ।।२।।
तीन लोक जाकै मुख माहिं ।। सेऊ ताहि अवर कौ नाहिं ।।३।।
परसराम प्रभु राम अपार ।। खोजत खोज न आवै पार ।।४।।९।।

राग टोडी–

हरि हरे हरि हरि हरे हरि ।।
हरि दरसिये नैरण भरे भरि ।।टेक।।
हरि कौ रूप अनुपम देखिये ।। जीवन जनम सकल करि लेखिये ।।१।।
नेम धरैं हरि प्रेम सौं गाइयै ।। परसा हरि भजि भगत कहाइये ।।२।।१०।।

राग टोडी–

हरि गाइ वरि कव गावैगा ।।
ऐसी सौंज वहुरि कव पावैगा ।।टेक।।
जो हरि नांव न गावेगा ।।
तौ जनम जनम दुख पावैगा ।।१।।
नाच वहुरि कव नाचैगा ।।
यह गइ कहां लगी सोचैगा ।।२।।
निज साज दीयौ करि सुपद बजाइ ।।
भयौ कुसाजि तव कछु न वसाइ ।।३।।
बैगि विचारि समझ मन मांहिं ।।
परसा विरंव कीयां सुख नाहिं ।।४।।११।।

राग टोडी–

मन हरि भजि हरि भजि हरि भाई ।।
तजि रे निर्फल गर्व गुमान बडाई ।।टेक।।
कितियक दौर आवतो आई ।। काहै कौ सिर लैत बुराई ।।१।।

पारि परसी कैसे हीण कमाई ।। सूधो चालि हरि की सरणाई ।।२।।
पर हरि आन चरित चतुराई ।। परसा प्रभु सों करि मित्राई ।।३।।१२।।

राग टोडी–

श्री गोपालहि गर्व न भावे ।।
गर्व प्रहारी विरह बुलावे ।।टेक।।
गर्व कियां हरि दरस दुरावे ।। दीन भयां हिरदै हरि आवै ।।१।।
हिरणकसिपु उर गर्व जरावे ।। इहां इन्द्र प्रह्लाद कहावै ।।२।।
गर्व ही रावण धरहिं गंवावै ।। दीन वभीषण लंका पावै ।।३।।
गर्व करै सोई बुरो दिखावे ।। साखी सगी ससिपाल मुणावै ।।४।।
परसा गर्वि न कोई सुख पावै ।। दुरजोधन गुन विदुर बतावै ।।५।।१३।।

राग टोडी–

हरि है एक अवुर नाहि कोई ।।
दोही कहैं दो जागि मैं सोई ।।टेक।।
बाहरि भीतरि अंतर जामी ।। व्यापक एक सकल को स्वामी ।।१।।
पूरी दिसि तहीं हरि पूरा ।। दिसी हीण सोई कहै अधूरा ।।२।।
परसराम प्रभू अंतरि बोलै ।। सोई देखै जो अंतर खोलै ।।३।।१४।।

राग टोडी–

अंजन माहिं निरंजन सूझैं ।।
तब हरि सुख कौं कोई यक जन बूझैं ।।टेक।।
निराकार आकार समाणा ।। ज्यौं पावक कासठ पापाणा ।।१।।
माथि काठ्यां तैं बाहरि आवै ।। जागि लगै तब कर्म जरावै ।।२।।
अपणें रंगि मिलवै भजि घरि सौं।।परसा हूंसि परसत जनहरि सो।।३।।१५।।

राग टोडी–

हरि मारग चालत भै नाहीं ।।
हरि विण और सकल मैं माहीं ।।टेक।।

हरि मारगि चालत जन छूटैं ।। हरि बिण जीव सकल जम लूटैं ।।१।।
पावन पंथ सकल सुख कारी ।। जो चालै तिनकी बलिहारी ।।२।।
हरि मारग सब की निसरणी ।। परसा जन पावन हरि करणी ।।३।।१६।।

राग टोडी–

दाता हरि दातार सौं दूजौं कोई नाहिं ।।
दाता भुगता और जौं सबही हरि माहिं ।।टेक।।
भव विरंची जाचिग जहां सुर वती सुरस वही ।।
और नराधिक जीव जन्तु जाचै अब तब ही ।।१।।
जल थल व्यापक सबै अरु सब ही कौं पूरै ।।
ताकौं सेवग और न कोउ तकै क्यौं झूरै ।।२।।
तन मन धन दाता हरिदै दूरि न होई ।।
सब कौं पालै पोष दैं परसा भजि सोई ।।३।।१७।।

राग टोडी–

हरि सुमिरण करियें निसतरियें ।।
हरि सुमिरण विन पार न परियें ।।टेक।।
हरि सुमिरै सोई हरि नाती ।। हरि न भजै सोई आतम घाती ।।१।।
हरि सुमरै हरि कौ हितकारी ।। हरि न भजै सोई विभचारी ।।२।।
हरि सुमरै सेवग सुखनामी ।। हरि न भजै सोई लूण हरामी ।।३।।
परसा हरि सुमरै हरि सोखी ।। हरि न भजै सोई हरि दोषी ।।४।।१८।।

राग टोडी–

जो कछु हुतौ भयौ फिरि सोई ।।
यह अचरज जाणै जन कोई ।।टेक।।
तजि वियोम घर बूंद कहाणी ।। सोई सिंधु मिली पाणी कौ पांणी ।।१।।
पलटि भयो पांणी तें पालौं ।। पालौं अघलि नीर निरवालौ ।।२।।
हरि न मिलै सोई उरवारा ।। हरि अपार पाइ सोइ पारा ।।३।।
परसा आप जाप कर बूझै ।। आप मिटयां आप सोइ सूझै ।।४।।१६।।

राग टोडी–

जीवन भयो पापी अपराधी ।।
भूलि गयो हरि भगति न साधी ।।टेक।।
हरि उपकार कियो सु न मान्यौं ।। आन धर्म आदरि उर आन्यौ ।।१।।
और कर्म सीख्या सुणि लीनां ।।तैं राम विसारयौ क्यौं मतिहीनां ।।२।।
हरि गुण कियो सु हृदै न आयो ।।औगम सों भ्रमि जनम गंवायो ।।३।।
पाथर नांव भरि लैहि भारै ।। परसा प्रभु विण कौं भव तारै ।।४।।२०।।

राग टोडी–

मति सोई जु हरि कै रंग राची ।।
हरि न भजै सोई मति काची ।।टेक।।
हरि सौं मिलि मति होत न पाछी ।।
मति हरि सौं मिलि रहत अति आछी ।।१।।
तन मन मगन प्रेमरस माची ।।
मति सद्गति जु काल तैं वाची ।।२।।
परसराम सोही मति सांची ।।
हरि पै जाइ भगति जिनि जाची ।।३।।२१।।

राग टोडी–

हरि सुमिरै ताहि कर्म न लागै ।।
लिपै नहीं पलु पाप देह तैं हरि कौ नाम सुनत ही भागै ।।टेक।।
हरि निहकर्म कर्म कौं पावक सहि न सकै जारै जग जागै ।।
साखि प्रगट सब संत कहत मुखि पतित भयै पावन सुनि आगै ।।१।।
प्रिथक न होत रहत हरि सु मिलत यौं हरिजन ज्यौं पहूप परागै ।।
संकित जम सारिख सव दोषी देख्यौं दिसि उजागर दागै ।।२।।
जो निर्मल करै सकल मल सोखै इसौ अमृत अचवत अनुरागै ।।
परसराम हरि सुमिल सदा सोई नर औतार तिलक वड भागै ।।३।।२२।।

राग असावरी–

प्यारे प्रीतमावे ।। प्रीति न तौ भजै वे ।।
मैं तेरी पीआवें ।। तू मोहि जिनि तजै वे ।।
पीव सरणौ विनावे ।। कैसी सुख लहूं वे ।।
पंचां मिलि मुसेंवे ।। तौ विण दुख सहूं वे ।।
दुख सहूं तो विण प्राण प्यारे राखि मोहि सरणै पीया ।।
मैं अनाथ अनाथ वंधू तौ बिना धृग धृग जीया ।।
जल विनां क्यौं मीन जीवै तलफि करि तन मन तजै ।।
यौं तौ मिलन कौं प्राणपति मेरी प्रीति तोकौं भजै ।। विश्राम ।।१।।

साच वचन तुम्हांवे ।। सुन्दरि सुणि कहूं वे ।।
मैं परदेशी यावैं ।। उदासीन हरि हूं वे ।।
तू मोहि न मतै मिलि वे ।। तौ तू का सगी वे ।।
तैं मोहि न पिछांणिया वे ।। प्रीति न तोलगी वे ।।
यक लागि प्रीत न तैं पिछाण्या प्राणपति प्रीतम कहीं ।।१।। ❀
तसमात खरे उदास तुम तैं तून कछू मेरी सगी ।।
मैं वस्यौ अंतरि तै न जाण्यां प्रीति तौ सौं ना लागी ।।विश्राम।।२।।

मैं हूं सगुणि वै ।। निगुणां संगि रहूं वे ।।
गुण धर तैं करि वे ।। सुतौ गति ना लहूं वे ।।
मेरै औगुण जिन धरो वे ।। तू दरिया सो भरावे ।।
मैं न कछू पिया वे ।। तू अपरम परा वे ।।
अपरम पार अपार अविगत अकल ताकूं कौ कलै ।।
अन भैं अनंत न अंत आवै संगि रहै सवकूं छलै ।।
ऐसौ विनांणी वड विधाता भेद छेद को लहै ।।
अगुण के घरि वसै निर्गुण जाति पांति न कुल कहै ।।विश्राम।।३।।

---

❀ पद में एक चरण न होने से अधूरा है।

मेरे अंतरि जामीयां वे ।। जन न भुलाइए वे ।।
मेरे औगरा मेटि कैं वे ।। संगि लगाइए वे ।।
मैं सगि तरंगणि वे ।। तोहि मैं रहूं वे ।।
तू दरिया देखिये वे ।। पार न परि लहूं वे ।।
लहूं न पार अपार दरिया अगम गति त्रिभुवन धरणी ।।
तू ब्रम्ह है मैं हूं छांह तेरी मोहि तोहि अब नीकैं वरणी ।।
मै सुवौ मैं तूं समायौ मोहि तोहि अंतर नहीं ।।
परसराम प्रभुराम दरिया दास की मानूं कहीं ।।विश्राम।।४।।१।।

राग असावरी–

कहा करूं करुणा नाथ क्यों मोहि और न कछू सुहाइ ।।
मोहन मेरैं जीअ वस्यौ इत उत कहूं न विरंवइ ।।टेक।।
यह सुख तजि कहां जाइये दुख जहां तहां भ्रम और ।।
हरि प्रीतम विसरूं नहीं मेरे जीव की जीवन ठौर ।।१।।
प्रेम सरस सर सींचि कें मेरे काटे सकल विकार ।।
पल भरि पलक न वीसरूं मेरे प्रीतम प्रान अधार ।।२।।
हरि चितवन चित ही रहै कछु और न आवै चीति ।।
जो रोम रोम अंतरि रमै अब तासौ लागी मोरी प्रीति ।।३।।
अबहि न व्यापै दूसरी मेरे अंतरि उपज्यौ धीर ।।
परसराम प्रभु कै मिल्यां मेरी मिटि विरह की पीर ।।४।।२।।

राग असावरी–

हरि विरा धरत मन वहु भेष ।।
भ्रमत भव अंधार वन मैं चित न सुमिरण सेष ।।टेक।।
भाव भगति न भजन हरिकौ नहीं न वल वेसास रे ।।
प्यास उपजि न प्रेम पीयो तज्यौ नेम निवास रे ।।१।।

दरस परस न समझि सेवा न ग्यान ध्यान अनूप रे ।।
यै हरि न अंतरि वसे कवहूं परस मंगल रूप रे ।।२।।
अस्थिर न जग आधीन मनसा सदा रहत सकाम रे ।।
जनम दुखित न सुखी परसा विनां हरि विश्राम रे ।।३।।३।।

राग असावरी–

जनम गंवायो रे नर मूरिख अंधा ।।
हरि विण कठिण कटै क्यौं फंदा ।।टेक।।
पर घरि रहै कहैं मैं मेरा ।। आवा गवण वहै भ्रम फेरा ।।
सतगुर मिल्यां न मन घरि आया ।। मुगध अचतेन मूल गवाया ।।१।।
काल निरंजन कंवला माहीं ।। राख्यौ काल निरंजन नाहीं ।।
वांव कुबुद्धि भगति न यक साधी ।। छाडि परम सुख सूनि अराधी ।।२।।
कहा जन्म जो राम न जाणां ।। अंतर खोजि न सहजि समाणा ।।
परसा जे सदगति नहीं हूए ।। परलै के जीव जनम लै मूए ।।३।।४।।

राग असावरी–

राम न जाण्यौ रे नर अंधा ।।
जनम गंवायो करि करि धन्धा ।।टेक।।
देही देही करि देही खोई ।। मांगी माया देत नही कोई ।।१।।
दाता भुगता सोई मारै तारै ।। जगत अचेतन ताहि संभारै ।।२।।
सव घटि व्यापक जगत न जाणैं ।। परसा पंति कोई दास पिछाणैं ।।३।।५।।

राग असावरी–

सोवै कहा सुख जागि न देखै ।।
पायो जनम सु जात अलेखै ।।टेक।।
तासंगि जागि जु राम अपारा ।। फाटि तिमिर घटि होइ उजारा ।।
जवलगि निसि तव लगि सुख नाहीं ।।रवि प्रगटे खेलौ सुख माहीं ।।१।।
चेतनि चेत अचेतनि काहे ।। तेरो करता है रमै जो माहे ।।
आपो मेटि न मिलै गवारा ।। हरि विण होत अकाज तुम्हारा ।।२।।

सोवत बहुत गए सब खोई ।। जागत मुस्या न सुणिए कोई ।।
परसा जन हरि धन रखवारै ।। ता जन कौं फिरि राम उबारै ।।३।।६।।

राग असावरी–

हरि सुमिरण वेसास विसार्‌यो ।।
मन कलपत फिर्‌यो काल कौ मार्‌यो ।।टेक।।
बादि बक्यो खायो कै सोयो ।। अति गयो निर्फल खोयो ।।१।।
विसर्‌यो पर्म सिंधु सुखदाई ।। मन स्वारथ विचरत न अघाई ।।२।।
परमारथ पद कौ न पिछानै ।। परसा मन अपणें अग्यानै ।।३।।७।।

राग असावरी–

प्रीतम हरि अंतरि न संभार्‌यो ।।
अतरि थकौ दूरि करि डार्‌यो ।।टेक।।
नेडौ थकौ निआदर कीयो ।। दै आदर उरलाय न लीयौ ।।१।।
मन न मिल्यौ हित सों दै हीयो ।। अंतर जामी न अंतर दीयो ।।२।।
परसा इहां आइ यौहीं जियौ ।। जु अमृत दूर कियौ विष पीयो ।।३।।८।।

राग असावरी–

मिल्यौ ही रहै तासौ मिलन न होई ।।
अमिल रह्यां पाई निधि खोई ।।टेक।।
विधि बिगरिई सु न जान सुधारी ।।
अब सरै कहा पहिली न विचारी ।।१।।
परसा इहै अंदेसो है भारी ।।
भज्यो न हरि प्रीतम हितकारी ।।२।।९।।

राग असावरी–

राम निआदर आदर नाहीं ।।
आवण देत नहीं घर माहीं ।।टेक।।

जोगी हू तौ भयै घरवारी ।। कोयी घरै जौ छूटी तारी ।।१।।
परवसि पर्यो करै जो भावैं ।। वाहरि फिर तन ही सुख पावै ।।२।।
परसा एक अचंभो भारी ।। पति पैं सेव करावै नारी ।।३।।१०।।

राग असावरी—

हरि विण लगी माया धाइ ।।
जीति लियो आपणै वसि स्वाद करि करि खाइ ।।टेक ।।
जित सुतित पसु कंठि कीए लोभ लीयां जाइ रे ।।
भ्रमत ही बहि गयो भौजलि राम सक्यौ न गाइरे ।।१।।
करि चरित संग विरंग वाजी जीव लियो भुलाइ रे ।।
वीसरी सुधि प्राणपति की चल्यो जनम ठगाइ रे ।।२।।
मन क्यों तिरें विण सांच सुख निधि विषै रह्यो समाइ रे ।।
परसराम न भज्यो अविगत अकल त्रिभवण राइरै ।।३।।११।।

राग असावरी—

नरहरि कठिन माया जाल ।।
तो विनां काटै कौण मेरै सुणू दीन दयाल ।। टेक ।।
मोह मिटै न आस पासी धीर धरी न जाइ रे ।।
जात उलटयौ नदी जल ज्यौ राखि राघौ राइ रे ।।१।।
थिर रहै न मन विण सुख निधि विषफल खाइ रे ।।
प्रवल माहिन अवल कौ वल विघन हूवौ जाइ रे ।।२।।
तू धणी अरु दास भर मैं साच विण वेकाम रे ।।
परसराम सु सरणि सेवक राखि सम्रथ राम रे ।।३।।१२।।

राग असावरी—

जब लग काया तब लग माया ।। काया विनां न दीसै माया ।। टेक ।।
काया दुख सुख माया व्यापै ।। काया मिटी भयो मिली आपै ।।१।।

काया पंच तत्त्व का वासा ।। गावै सुणै तिरण की आसा ।।२।।

काया जनमैं काया मरई ।। विण काया को तारै तिरई ।।३।।

काया भाव भगति विश्रामा ।। काया विनां कहै कौर ामा ।।४।।

काया कर्म विना कोई दासा ।। जिनकै भाव भगति वेसासा ।।५।।

परसा पति कै काया नाहीं ।। काया सकल वसै जा माहीं ।।६।।३।।

राग असावरी-

मन जिन वहै माया लागि रे ।।
सुनि मढ राम संभारि हित करि साध संगति जागि रे ।।टेक।।
तजि गर्व ग्यान विचारि गाफिल भूलि जन मन हारि रे ।।
भजि अकल नरहरि नांव निधि ज्यौं ऊतरैं भौ पारि रे ।।१।।
आज काल कि पलक पल मैं लीयौ वस करि काल रे ।।
देखता वहि जाइ औसर समझि राम संभारि रे ।।२।।
छूटि है हरि की सरणि जव तव करिसि जो मन हारि रे ।।
काच साटै खोइ कंचन जाइ जिन निज हारि रे ।।३।।
सुणि सीख साधु जु कहै हित करि हरि कथा व्रत धारि रे ।।
परसराम अपार भजि भ्रम आल जाल विसारि रे ।।४।।१४।।

राग असावरी-

मन सुनि समझि एक विचार रे ।।
सत्य करि रघुनाथ भजि तजि कर्म भर्म विकार रे ।।टेक।।
कर्म करणी सकल संसै नहीं निज परकास रे ।।
भर्म वेई पहरि नख सिख सहीसि दुख सुख त्रासरे ।।१।।
स्वाद स्वार्थ आस पासी प्रगट पसर्यो जाल रे ।।
मीचि चार्यो पर्यो तामैं तौं खेंचि खांसी काल रे ।।२।।

जमपुरी जनम अचेत मति जहां डिंभ वल अहंकार रे ॥
तहां न पति विश्राम दीपक महा घोरंधार रे ॥३॥
नग्र नांउ सु गांउ दीसै चाहिए सो नांहि रे ॥
सरस सैंवल देखि पंखी भरमि भूखा जाहि रे ॥४॥
सुणि सीख निगम निचौड़ वाणी भूल्यो जग मांहि रे ॥
ठाहरै क्यौं नीर निर्मल जहां अपक फूटै ठांहे रे ॥५॥
जब ग्यान तजि विग्यान उपजै सरै सब काम रे ॥
प्रेम सरस निवास निहचौ वसै तौ संगि राम रे ॥६॥
लिव लीण दीन सुभाव अंतरि भगति फल वेसास रे ॥
भजै अकलप रहत निस दिन परसा निज दास रे ॥७॥१५॥

राग असावरी—

समझि न रे मन मेरा भाई॥
झूठ रचै जिनि या भौमि पराई ॥टेक॥
तू परदेसी तेरा विड मैं वासा ॥
तामैं तोहि क्यौं आवै हासा ॥१॥
देखि भूलि सिरे अंध गंवारा ॥
माया मोह भरम संसारा ॥२॥
ना घर बाहिरे ना घर मांहि ॥
ठाढ़ो पंथ विरख की छांहि ॥३॥
पडि है विरख कछु न वसाई ॥
वेग विचारि सोचि रुति आई ॥४॥
चालन हार मोहि जिनि बांधे ॥
तेरे काज काल व्रत सांधे ॥५॥
जाहि है विथा सो क्यौं सुखि सोवै ॥
परसा दास दुखित दुख रोवै ॥६॥१६॥

राग असावरी—

मन रे उलटि मन की सोधि ॥
पाइये क्यौं परम पद यौं आन वसु पर मोधि ॥टेक॥

जल तरु चिपट आस पासी मौह जालि रे ॥
अकल जल विण अंध अपवलि गिले मंसे कालि रे ॥१॥
आप जाप सु वसै अंतरि अकल अविचल साच रे ॥
ताहि लागि विकार परहरि सुभ असुभ कृत काच रे ॥२॥
प्रगटि पावक पवन लागो सकल झल व्यौहार रे ॥
ऊंच नीच निवारण जल थल धरनि धूं धूं कार रे ॥३॥
क्यौ बुझै असमान लागी वाद वल अहंकारि रे ॥
परसराम निवास हरि विण गए जनमन हारि रे ॥४॥१७॥

राग असावरी–

मन जो खोजो खोज विनांणी ॥
अविगत पति सारंग पाणी ॥टेक॥
कंद मूल फल खाइ विचारै वहता पाणी पीवै ॥
छांडि अजोध्या वन मैं वासा आस पास तजि जीवै ॥१॥
पदम अठारह वनचर वन के एक ठौर जो आणै ॥
रामचन्द्र दशरथ सुत सीता अपणै संग पिछाणै ॥२॥
सर पंजर करि साइर तरिये तिरतां विरम न कीजै ॥
रावण मरै असुर सव जीतै तव लंका गढ लीजै ॥३॥
वदि छूटै तैंतीस देवता मिलै विभिषण कौ टीका ॥
परसराम प्रभु राम राजी तो सव जग लागै फीका ॥४॥१८॥

राग असावरी–

मनुवा भरिमि भूलौ जाइ ॥
निकटि राम न समझि देखै रह्यौ सकल समाइ ॥टेक॥
तीर्थ वर्त न कटै पासी जाण आवण आस रे ॥
मृगव दह दिसि दौरि मूवौ छांडि हरि वेसास रे ॥१॥

विण भेद माला पहरि मुंडित तिलक छापा साज रे ।।
करै पूजा फिरै है भटकत सुवांग मार्‌यो लाज रे ।।२।।
कहा स्वांग जो धर्‌यो स्वारथि साच विण बे काम रे ।।
परसराम सु जनम हार्‌यो जो न जाण्यो राम रे ।।३।।१६।।

राग असावरी–

मन मेरै राम रमि यह साच ।।
आल जाल विसारि मूरख छाडि दै भ्रम काच ।।टेक।।
भ्रमि भूलि बहि जिन जाहि भौ जल पकडि हरि की वोट रे ।।१।।
राम पर्म दयाल भजिमन मुगध (अब) डारि विष की पोट रे ।।
चेति मुगध विचारि मन मैं जनम जुवा जाइ रे ।।
परसराम अपार प्रभु विण काल देखत खाइ रे ।।२।।२०।।

राग असावरी–

मन रे राम हिरदै राखि ।।
श्रवण सुदिढ सुप्रीत करि सुणि साध जन की साखि ।।टेक।।
काहे कौ आल जंजाल झांखै छाडि विष फल काच रे ।।
राम अमृत नाम निर्मल सुमरि करि हरि राच रे ।।१।।
काल खाइ न जुरा व्यापै पडै न जम की पास रे ।।
खोजि हंसा संग तेरै सेइ धरि मन वेसास रे ।।२।।
अगम गंज अपार दरिया सकण सीप समेत रे ।।
सौज सेखर सुवणिज करि लै जाइ नर चेत रे ।।३।।
परहरि न हरि समझि सुकृत सोचि देखि सुठौर रे ।।
परसराम निवास नर हरि नांव भजि तजि और रे ।।४।।२१।।

राग असावरी–

जो सति करि हिरदै हरि होई ।।
हरि सुमिरण जन कै सुख सोई ।।टेक।।

हरि निजरूप यह पर्म पद कहिए ॥
सोइ परहरि परवस कित वहिए ॥१॥
जा जन कै हरि कौ वेसासा ॥
परसा सो भरमैं क्यौ दासा ॥२॥२२॥

राग असावरी—

पीव रे जीव रस राम नाम प्यारा ॥
जा पीवत मिटि जाय रे विकारा ॥टेक॥
अमृत जिनि डारै करि खारा ॥ त्रास मिटै पीयां निसतारा ॥
दाता कवि पंडित बल भारे ॥ चाख्यौ नहीं सकल पचिहारे ॥१॥
राजा राइ सूर सुरा तांणी ॥ फासे मुए न पायो सुपाणी ॥२॥
पाणी फूटि भया घटि रीता ॥ पीयां विनां जनम वादि बीता ॥३॥
धीरज धरै सुधारस पीवै ॥ परसा जन सोई सुखि जीवै ॥४॥२३॥

राग असावरी—

पायो जनम न हारि राम संभारि रे ॥
प्रीतम प्रान जीवन धन प्यारौ, सोई भजि पल न विसारि रे ॥टेक॥
दीपक विनां सु मंदिर सूनं घोर अंधारै वास ॥
यौ मन मोहनिसा निज हार्यो परि आसा की पास ॥१॥
ज्यौ उडि जात पिसान पवन मिलि देखत सबै विलाइ ॥
जित तित कलपि पर्यो पावक मै दाझत विरंव न काइ ॥२॥
सोचि विचारि समझि भजि रे परहरि और उपाइ ॥
कर तैं रतन गिर्यो दरिया मैं दिष्टि परै कव आइ ॥३॥
वसत गंवाइ न जाय वह्यो यौ भूलि भर्म की धार ॥
मन कै मतै तिरैगो कैसै खेवट विन भौ पार ॥४॥
तजि व्यौहार सकल सुख दुख लागि मरै मति मांहि ॥
सुमिरण पर्म पद चित करि चिंतामणि तन मांहि ॥५॥

धीरज बांधि कह्यो सुनि सति करि अंतरि धरि वेसास ।।
परसराम हरि सुमरि अविसर पूरण पर्म निवास ।।६।।२४।।

राग असावरी–

मनसा नहीं मरै मन कौ भावै त्यौं परमोधि ।।
रहति कहति करतूति भजन वल अपणं आपण सोधि ।।टेक।।
साधन सधि सुरग चढि उडै तन मन बांधै बंध ।।
अंति पडै आसा वसि पासी राम भजन विन अंध ।।१।।
आगम निगम कहत निज हारे मन की मिटी न पीड ।।
अधिक दर्द दूनूं दुख संकट हरि वोखद नहिं नीड ।।२।।
कर्म करत केते नर मर गए बूडि भर्म भौ मांहि ।।
राम भजन विन जे वूडे तिन मैं उवरना कोई नाहिं ।।३।।
कोई निजदास पीवै रस निर्मल तन मन आस गवांइ ।।
परसा मनसा ताहि न व्यापै जु हरि भजि प्रेम समाइ ।।४।।२५।।

राग असावरी–

भेष भर्म जो राम न गायो ।।
मन परवसि, नांहिन घरि आयो ।।टेक।।
कलपत फिरै मुगध मति हीनां ।। माया काज अकरम वहु कीनां ।।१।।
कर्म करत निज नांव न पायो ।। भव बूडे जस जनम गवायो ।।२।।
कैसे तिरै जो वसै विष मांहि ।। हरि सुमिरण सौ परचौ नांही ।।३।।
सुख न लहै परचै विण देही ।। परसराम विण राम सनेही ।।४।।।२६

राग असावरी–

झूठ साग्यान कथ्यां कछु नाहीं ।।
जो हरिजी सौं प्रीत न उपजै माहीं ।।टेक।।
ग्यान दिढाव झखणि जग आसा ।।
विण निज नाम कटै क्यों पासा ।।१।।

मन कलपै दिल नाहि सवूरी ॥
विण दिढ मतै परै क्यो पूरी ॥२॥
वाहरि फिरै सु जो घरि आवै ॥
तौ सहजैं साईं दरस दिखावै ॥३॥
तव साची जव तीनी त्यागै ॥
परसा प्रेम राम ल्यौ लागै ॥४॥२७॥

राग असावरी–

कहि सुणि कथनी काची ॥
जो हरिजीसौ प्रीत न लागै साची ॥टेक॥
करणि करि करि कर्म वंधाया ॥ छाडि कर्म निजराम न गाया ॥१॥
अंतरि कपट कथ्यां का होई ॥ जलविण पंक न जाई धोई ॥२॥
जव लगि प्रेम प्रीति ल्यो नाहि ॥ तो परसाराम वसै क्यो माहीं ॥३॥२८॥

राग असावरी–

ग्यान गया घरि गोरख आया ॥
जोगि जाति निरंजन राया ॥टेक॥
आसण अटल अकल संजोगि ॥ ताकि त्रास सौं मूए वड भोगि ॥१॥
अचल न चलै चलै न आवै ॥ आवै तो जो आयो न दिखावै ॥२॥
देखन हार मरै न सोई ॥ परसा मिलि ताही सौ होई ॥३॥२९॥

राग असावरी–

साईं हाजरा हजूरि, देखि निकट है न दूरि ॥
ताको भजि विकार रह्यो सकल पूरि ॥टेक॥
दिल मैं संभारि वोलै को मझारि गावै गुण गाथा ॥
कौंण है सो वरण है केसो जो रहई तन साथा ॥१॥
सास वास कहां निवास कैसी कल लाई ॥
आवै सो और जाई कहां खोजो रे भाई ॥२॥

देऊरे मसीत मांही सकल व्यापी कहां नाहीं ।।
सत्य है रहीम राम और दुविधा भरमाही ।।३।।
अखिल ब्रम्हंड राइ सोई प्रभु पिंड माहीं ।।
परसा क्यों विसरिराम दरिया दिल मांहीं ।।४।।३०।।

राग असावरी–

खोजि करीमां वाहरि नाहीं ।।
राम रहीम वसै दिल माहीं ।।टेक।।
दिल खोज्या तें और न कोई ।। तूं जाकौं मारै साहिव सोई ।।१।।
मारा मारी और जोर न करणां ।। तामस तेज भर्म दुख भरणां ।।२।।
गुसाह राम अनाहक करणी ।। हक्क हलाल भिस्ति नीसरणी ।।३।।
भिस्ति लहै जोई दीन संभारै ।। परसा हरि भजि दुनी विसारै ।।४।।३१।।

राग असावरी–

प्रीतम प्रान नाथ सव माहीं ।। देहि का गुण अस्थिर नाहीं ।।टेक।।
ज्यौं नट औसर का छै नाटक मति निर्तत गुणहि संमांनां ।।
जो दूरि भयो सु मिलत सुरिता ज्यौं कहत मांन कौं मानां ।।१।।
ज्यौ विधु आकास सचल श्रवणैं मैं आवत जात दिखावैं ।।
वादल संगि चलतहि चंचल निहचल दिष्टि न आवै ।।२।।
हरि निर्मल निजरूप निरंतरि अंतर तें न सूझै ।।
ज्यौं पंथ चलत पंथी कै चालि थकै थके थक्यो सोई बूझै ।।३।।
ज्यौं जल मैं खेवट कै खेएं नांव चलत सव चालै ।।
यौं निर्गुण गुण मांहि समाणां एक दोय करि हालै ।।४।।
ज्यौं थिर नीर समीर सुमिल चल निहचल रहै न सौई ।।
यौं परसराम व्यापक व्यापति रत निर्मल कदे न होई ।।५।।२३।।

राग असावरी–

मैं हूं अकल सकल मेरी माया ।।
मैं तेहिं लागि जगत भरमाया ।।टेक।।

मैं ही धरणि गिगन रवि तारा ।।
मैं ही हूं पाणी पवन पसारा ।।१।।
मैं तो हूं रैंन द्योम कल लाई ।।
मैं ही काल सकल छलि खाई ।।२।।
मैं ही मूल अनत होय छाया ।।
मैं ही हूं डाल तास फल पाया ।।३।।
मैं ही पहुप पत्र नर नारी ।।
मैं दाता भुगता भूप भिखारी ।।४।।
मैं ही हूं देवल मैं ही देवा ।।
मैं सेवग मेरी सब सेवा ।।५।।
मैं अविगत अलख अभेवा ।।
दिष्टि अदिष्ट सबद सुर लेवा ।।६।।
सब हीं मैं मो बिन कछु नाहीं ।।
मैं व्यापीं ब्रम्ह बसौं सब माहीं ।।७।।
मैं ही निर्गुण सगुण बिनाणी ।।
परसा हूं न निज गति जाणी ।।८।।३३।।

राग असावरी-

हो विधनां विधि रचि जु काई ।।
ताकि गति कछु लखी न जाई ।।टेक।।
जो उतपति परलै होइ सु दीसै यह अविगत भाई ।।
माया मंदिर तन तजि निकसें तौ हंस कहां होई जाई ।।१।।
आवत जावत प्रगट पंथ देखिये रहै न जीवै काया ।।
यो अचरज सतगुरु समझावै कै जिन चरितउ गाया ।।२।।
रहै जहां की तहां सु जाइ न आवै मरै न सोई जीवै ।।
निज सरूप सादिष्टि अगोचर जो अण भै रस पीवै ।।३।।

अवरण वरण रहित करुणा मैं ताहि कोई दास पिछाणैं ।।
दरिया अगम बूंद परसा जन सो महिमां का जाणै ।।४।।३४।।

राग असावरी–

अविगत गति तेरी को धौं पावै ।।
अगम अगाही काही गमि आवै ।।टेक।।
अकथ अतीत सुकथ्यो न जाई ।। कागद अलख लिख्यो न समाई ।।१।।
आदि न अंत न हीण वडाई ।। नहीं अवरण वरण सुदेत दिखाई ।।२।।
काया कर्म काल नहीं खाई ।। सहज न सुन्य अकल कल लाई ।।३।।
परसा पति गति लखी न जाई ।। राम सुमरि जीऊ जस गाई ।।४।।३५।।

राग असावरी–

तुम नांऊ निरालंब अंतर जामी ।।
सहज रूप सहजैं सुर स्वामी ।।टेक।।
वपु अतीत व्यापक वपु धाता ।। गुण अतीत निर्गुण गुण दाता ।।१।।
सवद अतीत सवद जाहि गावै ।। भाव अतीत भाव कौ भावै ।।२।।
सव अतीत सव की गति जानै ।। सवद अतीत नांव गुण छानै ।।३।।
मन अतीत मिलि मनहि न चावै ।। प्रभू सूक्षिम परसा न दुरावै ।।४।।३६।।

राग असावरी–

वे जग धंध कि राम भुलाया ।। किन्हु जनि नर हरि पाया ।।टेक।।
धंधा जांति पांति कुल करणी धंधा मोहरु माया ।।
धंधा करत सकल जग खीणां सुमिरण चीति न आया ।।१।।
धंधा तप तीरथ व्रत आसा धंधै अंध लगाया ।।
धंधै लागि बहुत भी बूडे राम नाम नहीं पाया ।।२।।
धंधौ कर्म भर्म सिधि साधन धंधै भूं दुखाया ।।
परसराम धंधै विण सो जन जिनि हरि सौं चित लाया ।।३।।३७।।

राग असावरी-

पंडित मिलि यक करहु विचारा ॥
वधिक बसि भयौ कुटंुव हमारा ॥टेक॥
वधिक सर घरि सोवत मारे ॥ लागी चोट सु जागि पुकारे ॥१॥
वधिक संगि वस्यो वाजारी ॥ जिनि चुनि २ नगर नायिका मारी ॥२॥
राज निकंटक एक दुहाई ॥ वांधे चतुर मिटी चतुराई ॥३॥
ऐसो नष्ट नाम लै जौरा ॥ लैहै नाम सु व्है है वोरा ॥४॥
वोरा होइ भजै जो कोऊ ॥ तौ रहै निरास आस तजि दोऊ ॥५॥
परसा जन जो पदहि पिछानै ॥ धोखौ मिटै समझि मन मानैं ॥६॥३८॥

राग असावरी-

मरणां वहुत दुख कैसै मरिए ॥
जीवत पति न मिलै कैसी भरिएं ॥टेक॥
मूवां विनां न मिलै रे मुरारी ॥ यह खोजनी मन खोजि संवारी ॥१॥
दूरि पयाणां समझि न आवै ॥ पूरौ मिलै न परचौ आवै ॥२॥
प्रात न होइ अजूं वडराती ॥ ऊजड चलन न देत संगाती ॥३॥
मारगि चलूं तौ भाजै कांटा ॥ सतगुरु मिल्यां मिटै सव आंटा ॥४॥
छाडि विकार विचारौ काया ॥ ता मैं है त्रिभुवन को रायां ॥५॥
पर घर तजि अपणैं घरि आवै ॥ सोई दास परम पद पावै ॥६॥
जा ठाकुर का प्रगट पसारा ॥ छांदै चलत न मिलै अपारा ॥७॥
परसा जन ताहि देख्यां जीवै ॥ अणवै संगि महारस पीवै ॥८॥३९॥

राग असावरी-

है कोई सांचौ दीवाणी ॥
मेरी सुणै रे पुकार विनांणी ॥टेक॥

मोहि जितावै मैं हूं हारी ।।
मेरा घर लीया मैं मारी ।।१।।
मैं लै निकसी काच कथीरा ।।
ता घर मैं विसर्‍यो यक हीरा ।।२।।
ता घर आय वस्यो मुलतांणी ।।
सरस सलिल सुरी सुरि वाणी ।।३।।
परसा या पदहि पिछाणें कोई ।।
तौं सोई वड पापी वौरा होई ।।४।।४०।।

राग असावरी–

है कोई साध सुभट संग्रामी घरि संग्राम सभारै रे ।।
वाहरि जाय भिडे नहीं पर दल अपणूं कुटुम्व संघारै रे ।।टेक।।
सूरी सो जु मद्धि मिलि झूझै निकसि न जीतै हारै रे ।।
दस दल मेंलि हतै सव कायर सूरैं सूर उवारै रे ।।१।।
आसा तजै निरास रहै जो कर सिरभार न लेई रे ।।
सोई रिणी सूर सवीर महा मुनिपति की पूठ न देई रे ।।२।।
मन ल्यौ लीण दीन पौरिस विण फिरि आपणपौ मारै रे ।।
परसा सो जन भिडै न भाजै ता संगति निस तारै रे ।।३।।४१।।

राग असावरी–

होई साधू सोई हरि गावै ।।
जाकौ मन प्रेमि समावै ।।टेक।।
घटि घटि जाय सुघट मैं राख्यै करै न घाटि अधूरा ।।
दूरि करै दुविध्या कौ अंतर सब घटि देखै पूरा ।।१।।
दिढ वेसास गहै निज परचौ हरि सेवा सौं लागैं ।।
धीरज धरै सदा सुख विलसै प्रेम सम्बंध न त्यागै ।।२।।

थिर होय रहै अकल आनंद मैं मगन भयो रस पीवै ।।
वीच न मरै कलपि जग ससैं अकलप जुगि जुगि जीवै ।।३।।
परम रसाल रसायन रसनां पीवै प्यास मन साचै ।।
परसराम प्रभु ताजन कै वसि वांध्यौ तागै काचै ।।४।।४२।।

राग असावरी–

हरि पद गावै जो गाइ जाणैं ।।
विण जाण्या कहा वखाणै ।।टेक।।
श्री गुरु सवद समझि सरि वोलै चालै तहीं परवाणैं ।।
ताकौं भजन भरम कौं भेदै पहुंचै ठौर ठिकाणैं ।।१।।
राखै मन अपणूं अपणैं वसि करि निज नेह पिछाणैं ।।
जाइ जहां कहूं मनकी मनसा फेरि अपूठी आणैं ।।२।।
मनसा वाचा मन सौं मन दै रीझै वै कौण सुजाणैं ।।
ऐसो को आपौ अंतर तजि खेलै मिलि निरवाणैं ।।३।।
अंकुस वाज फिरै मन मुकता अपमारग कौ ताणैं ।।
रहै न प्रेम पालि विण परसा निहचल नीर निवाणैं ।।४।।४३।।

राग असावरी

केवल राम रमैं सोई दासा ।।
जाकै नाहिन आस निरासा ।।टेक।।
रहै ऐकांत सकल विण सारै सोवै कदे न जागै ।।
सदा अकलप अकल गुण गावै भूखा रहै न मांगै ।।१।।
जामण मरण विचारि विस्तरै दुख सुख मनकी माया ।।
इनकै रंगि न राचै कवहु तौ पुनरपि धरै न काया ।।२।।
भाव भगति परतीति प्रेम रस सतगुरु सूझै मांही ।।
परसराम ता जन कै हरि विन इत उत दूजा नाहीं ।।३।।४४।।

राग असावरी–

है कोई अणभै पद कौ बूझै ॥
अंतरगति अविगति सूझै ॥टेक॥
मैंगल बांधि सहज कै संकलि मेटै आस पसारा ॥
अजपा जपै अदिष्टि विचारै रहै सकल तें न्यारा ॥१॥
आगम निगम तजै निज रीझै परहरि विषै विकारा ॥
जो जाई समाइ प्रेम सागर मै ता संगति निसतारा ॥२॥
अंतर जोति अकल प्रकास्या त्रिभुवन भयो उजारा ॥
पूरण कला परम पद परसा पावै सो जन प्यारा ॥३॥४५॥

राग असावरी–

याही हरि कृपा तुम्हारी हूं चाहूं ॥
तुम सौं हूं पति व्रत निभाहूं ॥टेक॥
यह नित नेम न हूं छिटकाऊं ॥
तुमकौं सोई सुमरि सुख पाऊं ॥१॥
जो मन मैं तुम्हरे वसि कीयो ॥
सो मन अवर कौं जात न दीयो ॥२॥
जेहि मन मैं तुम सूंलै बांध्यौ ॥
तिहि मनि जात न और आराध्यौ ॥३॥
जो मन चरण कंवल सौं लायौ ॥
ता मन कै मनि और न आयो ॥४॥
जो सिर मैं तुमकौ प्रभू नायो ॥
ता सिर कूं फिरि और न भायो ॥५॥
सोई मन पर्म प्रेम सौं भेऊं ॥
तुम कौं सेंइ न औरहि सेंऊ ॥६॥

यहै चित परसा प्रभू पाऊं ॥
तुमकौ गाइ न औरहि गाऊं ॥७॥४६॥

राग असावरी–

हरि मेरी आरति क्यौ न हरौ ॥
मैं अनाथ प्रभु तुम अंतर जामी, मुनि किन कृपा करौ ॥टेक॥
मै जन दीन दुखित दिस नाही तुम विन गत सगरौ ॥
अब करुणा सिंधु सहाय करौ किन गुण औगुण धरौ ॥१॥
तुम किये पवित्र पतित मंडल अघ होइ अगनि चरौ ॥
जन जिवनि दुख हरन कृपानिधि सो अब क्यौं विसरौ ॥२॥
सब खोट कमाई गांठि मैं वांध्यो और दीनूं डारि खरौ ॥
लेहू सुधारि सकल पति सति करि खोजौं कहा परौ ॥३॥
मैं मति हीण भाव सेवा विण मन परघरि घालि धरौ ॥
परसा प्रभु भगत वछलता यह जिन विरद टरौ ॥४॥४७॥

राग असावरी–

प्रगट भये हरि मंगलकारी ॥
सब काहू की सोच निवारी ॥टेक॥
गावै गुण नाचै सब नरनारी ॥
देखै सुर औसर अति भारी ॥१॥
जो अपरपार लीला औतारी ॥
आनंद की निधि कैलि विहारी ॥२॥
अविगति अकल सकल धारी ॥
सचराचर व्यापक वनवारी ॥३॥
दीन दयाल भगत हितकारी ॥
परसा परसा वस्ट मुरारी ॥४॥४८॥

राग असावरी-

आनंद नंदक भुवन अति राजै ॥
जहां प्रगटे प्रेम कौ सिंधु विराजै ॥टेक॥
तोरन कलस धुजा सब साजै ॥
घरि घरि नई बधाई बाजै ॥१॥
देव अमर दुंदुभि बजावै ॥
नाचै रिसि जहां तहां मुनि गावै ॥२॥
घुरै सरस नीसांण अपारा ॥
धर अंबर धूंनि जै जै कारा ॥३॥
ब्रह्मादिक सिंभु सुणि आवै ॥
मंगल देखि देखि सुख पावै ॥४॥
दुख मोचन सब के चिंताहर ॥
भूरि भाग जाकै अपरम्पर ॥५॥
निगम करै अस्तुति उर खोलै ॥
जस कीरति बंदीजन बोलै ॥६॥
सब सनमुख चितै अति भावै ॥
देखे सुर औसुर सिर नावै ॥७॥
पर्म रसाल रसिक रस पीवै ॥
जुगि जुगि जन परसा प्रभु जीवै ॥८॥४६॥

राग असावरी-

सखी तन मन धन हरि कै बस कीजै ॥
हरि प्रीतम अपणूं करि लीजै ॥टेक॥
सर्वस सौंपि सरण हरि रहिये ॥
तजि हरि सिंधु अनत न बहिऐ ॥१॥
ज्यौं सुमिल जीव जल्न अंतर नांहि ॥
यौंअंतर तजि रहिए हरि माहीं ॥२॥

मोहि अंतर जामी को हित भावै ॥
हेत विना परि हाथि नहीं आवै ॥३॥
यह मन समझि सत्य जो होई ॥
परसा प्रभु भजिए सुखी सोई ॥४॥५०॥

राग असावरी–

जो हरि हैं व्यापक सब माहीं ॥ ता हरि सौ कछु परचौ नाहीं ॥टेक॥
आदि अंति अंधार वसै जब उर सों क्यौं समझि सलूझै ॥
ज्ञान प्रकास विना दोजग सूं छूटै कैसे करि हरि सूझै ॥१॥
भाव भगति वेसास हीण नर भ्रमि भ्रमि जनम गंवावै ॥
रहणि राजसेवा सुमिरण विण सुख संतोष नहीं पावै ॥२॥
मन जात वह्यौ भ्रम धार मांहि जो भयो कर्म काल कै सारै ॥
तिहि औसरि हरि परम हितू विण भव बूडत कौ तारै ॥३॥
विण परचै सब परपंच पसारा आवै जाई अलेखै ॥
परसराम प्रकट प्राण को प्रेरक दिष्टि विनां को देखै ॥४॥५१॥

राग असावरी–

याकौं समझि सकै जो कोई ॥
ताकौं आवागवण न होई ॥टेक॥
कहां तैं आयो कौण पढायो भेष पहरि जो भूल्यो ॥
नैण महारस आसा वसि कौ डोलत फूल्यो फूल्यो ॥१॥
जलथल जंूनि सकल कुल जल मैं जो थिर न कबही ॥
सुर्ग मृत पताल आदि दै फैरी आवै जो छिन में सबही ॥२॥
कबहू जीव ब्रम्ह होई कबहू कबहू भूप भिखारी ॥
कबहू जीव मैं मेरी करि संचै पुनि त्यागै करि खारी ॥३॥
कबहू कर्म कुलीण जाण घण ग्यांता चतुर विवेकी ॥
कबहू मन मूरिख अभिमानी सूझत सुणि न देखी ॥४॥

समझै सुणै विचारै जौ देखै पर कबहूं बोली न बोलै ॥
प्रगट होइ दुरि रहै निरंतर अंति न अंतर खोलै ॥५॥
कबहूं सूर सुणी कवि दाता पंडित मुनि तप ध्यानी ॥
कबहूं सुनि सुधारस पीवै अरू मौनि गहै मन ज्ञानी ॥६॥
पुरवासी सोवै अरु सुणि जागै सुपिनैं सुख दुख देखै ॥
थाकै पंथ पर पंथी न थाकैं निहचल चलत अलेखै ॥७॥
रहै समीप सदा दुख सुख सौ चलत न भेद बतावै ॥
रहै जो अभेद भेद लै सबको परसा जन ताहि गावै ॥८॥५२॥

राग असावरी—

जिनि सुत हित नांव नरांयण लीनूं ॥
सोई हरि राखि लियो जमपुर तैं विप्र अजामिल जान न दीनूं ॥टेक॥
जगत निरादर सब कोई जाणैं पै सरणि गया तैं कहा पछीनूं ॥
पारि कीयो तिनि संसार धार तैं जिनि रस विषै जनम भरि पीनूं ॥१॥
रति व्रष लीपति कुटिल कामी महा पतित लै हरि पावन कीनूं ॥
असरण सरण विरद पतित तारण परसा प्रभु करि दीनूं ॥२॥५३॥

राग असावरी—

है पतित पावन प्रभु मैं सुणि पायो ॥
पतित सरण लीये तिनहि बतायो ॥टेक॥
पतित पार कर विरद भुलानूं ॥
हम हैं पतित तुम क्यों न पिछानूं ॥१॥
तुम राखि लेऊं अपणी जिनि खोवो ॥
हूं करिहूं पतितन मांझ बिगोवो ॥२॥
और पतित तारे त्यौं तारो हमही ॥
सब की लाज वहन हरि तुमही ॥३॥

जाहिं जाचिग जाचि निरास न होई ।।
सबमें बड दातार कहावै सोई ।।४।।
परसराम प्रभु यह सुणि लीजै ।।
सेवक जोई कहै सोई सोई कीजै ।।५।।५४।।

राग असावरी–

जुगिया जग कै संग बसै जग जुगिपन पावै ।।
घर मंदिर ढूंढै नहीं भ्रमि जनमि गवावै ।।टेक।।
भ्रम तप दहि न पहुंचियै फिरि करमि बंधावै ।।
जित तित विषै बूलूझिक मोहि सौ तहीं समावै ।।१।।
जोग जति चरित बाजी रचि तासो मिलि गावै ।।
जो गाइ बजाइ रिझाई तौ आयौ ताही दिखावै ।।२।।
अकल सकल पूरण पिता ऐसे वसि नहीं आवै ।।
परसराम जो जन सनेह सों ऐसे प्रीती लगावै ।।३।।५५।।

राग असावरी–

मेरी तुम ही कौ सब लाज बडाई ।।
ज्यौं जाणूं त्यौं ही त्यौं राख्यौ अपणूं करि आपण हरि राई ।।टेक।।
कर्म उपाय बहुत करि देखे मति निहकलप त्रिपति नहीं आई ।।
हरि कलप तरोवर की छाया बिण कवहूं मन कलपना न जाई ।।१।।
तुम दीनानाथ अनाथ सब निवाजन अपन पाल गोपाल कन्हाई ।।
परम पवित्र पतित पावन प्रभु अधम उधारण विडद सहाई ।।२।।
पाप हरण त्रैताप निवारण असरण सरण बडी सरणाई ।।
अब न तज्यौ तन मन दै भजिहूं हरि अमृतनिधि प्यासे मै पाई ।।३।।
श्री गुरु कही अरु सुणि मैं नीकै कीरति प्रगटि सकल भरि छाई ।।
सेस आदि निगमादि सुमहिमा भव विरंचि उरि धरि मुख गाई ।।४।।

तुम दीन दयाल कृपाल कृपा निधि दुखहरन सकल सुखदाई ॥
लै निवहन कौं परसराम प्रभू तुम बिन और को सूझै न सहाई ॥५॥५६॥

राग असावरी—

कवण देस जाइवो कहां रहिवो ॥
कवण सुनत काहू की कहा कहिवो ॥टेक॥
यौं न कहत कोई मैं पायो ॥
हरि कौं मिलि अवहि हूं आयो ॥१॥
जात सवै दीसत सब जाणी ॥
कोई आइ उहां की कहै न प्राणी ॥२॥
तहां न कोई आवत जाता ॥
पंथ पंथी संग नहीं साथा ॥३॥
गांव न ठांव नांव कछु नाहीं ॥
आवण जाण भरम जामाहीं ॥४॥
यह अचिरंज जन जो वूझै ॥
परसा प्रभू पूरी जाहि सूझै ॥५॥५७॥

राग असावरी—

अगिण चरित हरि एक अकेला ॥
वाजीगर खेलत वहु खेला ॥टेक॥
समझि न परै अपार कहावै ॥
ताको वार पार को पावै ॥१॥
नाना रूप करै को जाणें ॥
ताहि कहा कहि कूंण वखाणें ॥२॥
अपणी रुचि लीला वपु धारै ॥
जनम मरण दोऊ हरि सारै ॥३॥

चलत अनंत सदा थिर दीसै ।।
मोहि अचिरज सोइ जगदीसै ।।४।।
निकटि न दूर प्रगट सुख स्वामी ।।
परसा प्रभु हरि अंतर जामी ।।५।।५८।।

राग असावरी–

हो ब्रजराज सनेही सुणि कहूं एक तुमही तुम्हारी बात ।।
दान उगाहन की ऐसी तुम क्यौ लाई हो सनेही यह घात ।।टेक।।
पाई किन पाई सुमोहि कहौ सुं कहत रहे पराई बात ।।
अपणी प्रगट कर हू किन हम सौ जु चोरी आवत जात ।।१।।
तुम बात अनोखी सी कही ताको अचिरज आवै मोहि ।।
तुम सीखि लई काहू और पैं किधौ नन्द सिखाई तोहि ।।२।।
तुम मह्यो मह्यो कहि उठी आप ही छाक वर सी आइ ।।
वनहि अचानक आइ हमारी चरित विडाई गाइ ।।३।।
काहे कौं अनहुई कहत जो देखी न सुनी अनकाजि ।।
अबताईं ये हुई न होहि हैं ब्रज मडलि कहूं राजि ।।४।।
परमेसर मानै नहीं हम चोर सुनहूं मन लाइ ।।
कह्यो सुनहूं नही औंर को तौ नन्द बूझि घरि जाइ ।।५।।
अव तौ हम तुम आयबणी है दान देऊ किन देऊ ।।
जैहो तबै सबै जब दैहो यह समझि सखि सुणि लेऊ ।।६।।
हम सब ही नित आई गई इहि मारग कई बार ।।
किनहीं रोकि सकी नहीं यह अब चले नव सार ।।७।।
तुस विन दीनें जैहो कहां अवहि मेटि हमारौ दान ।।
लैहूं सवै निवेरि पलक महि तब देहूं तोहि जान ।।८।।

लेऊ लेऊ जु जानत हौ जो कछू दान लेऊ सब लेऊ ॥
परसराम प्रभु मन हमरो लीयो फिरि किन देऊ ॥६॥५६॥

राग असावरी–

मेरी कब न करी हरि तुम रखवारी ॥
जहां कहूं सुमर्यो जब कबहु तब ही तब सोच निवारी ॥टेक॥१॥
असरण सरण अनाथ बधु सुणि विपति परी हमकूं तुम तारी ॥
तुम विण और को सम्रथ सुख दाता हरि राखण कूं लाजहमारी॥१॥
चीर छुवत अरि असह सभा मैं हा कृष्ण कृष्ण तव नांव पुकारी ॥
तिहिं औसर आतुरत आइ तुम प्रगट भयै पुरवण सिर सारी ॥२॥
तुम करुणा सिंधु आरिज अगमागमि मानूं हरि मेरी मनुहारी ॥
तुम प्रभु सदा रही सिर ऊपरि मैं चेरी हूं जुग जुग बलिहारी ॥३॥
मैं हूं अनाथि अबला मति बोछी अंधक बलि विधनां करी नारी ॥
पावन भई परम पद परसत भली बुरी तऊ दासि तुम्हारी ॥४॥
भगत वछलता विरद निवाहण गुण भजि औगुण किन बिचारी ॥
सिंधु न कदे तजत परसा प्रभू जो आइ मिलन सलिता सग हारी ॥५॥६०॥

राग असावरी–

हरि सुख सौ सुख और न कोई ॥
हरि सुख विण सुख है दुख सोई ॥टेक॥
हरि सुख भव विरंचि मन भायो ॥
हरि सुख सेस सहस मुख गायो ॥१॥
हरि सुख नारदादि मुनि जान्यो ॥
हरि सुख सौं जाको मन मान्यो ॥२॥
हरि सुख मिलि सनकादिक मीठे ॥
अति अमृत निधि निगमनि दीठे ॥३॥

हरि सुख तें सुखदेव उजागर ॥
सव परहरि परसे हरि नागर ॥४॥
हरि सुख व्रज बनितानि लाधौ ॥
हरिमन सौं अपणूं मन बाधौ ॥५॥
परसराम प्रभु जन की राखी ॥
हरि सुख जिन पायौ सोइ साखी ॥६॥६१॥

राग असावरी-

यौं निवहत क्यौं अव विरद की लाजा ॥
असरण पतित पावन व्रत धारि लीयो कहो किहि काजा ॥टेक॥
हम पापी अति आतमघाती खाज तज्यो अरु खायो अन खाजा ॥
अक्रम। कर्म करत मन मान्यौ डार्यो करि निहकर्म निकाजा ॥१॥
गनिका विप्र नांव भजि निरमल वकि परसि पावन तुरि ताजा ॥
पापहरण भव पारकरण कौ सुनियत है नांव प्रेम की पाजा ॥२॥
दरस परस वेसास हीण हम नांव विमुख भरमत बेकाजा ॥
सव पतितन कौ दीयो सोही दीजै हरि मेटौ किन मेरी मौताजा ॥३॥
जिनकौ नाम सुनत मुख देखत बूडि जात जल मद्धि जिहाजा ॥
सुनियत अधिक उजागर जग मैं बडे पतित तिन मैं हूं राजा ॥४॥
हूं कामी कुटिल विषै रस लंपट सव निलजनि मैं वडो निलाजा ॥
मेरी होड पतित को करि है हूं पतितन मांहि पतित सिर ताजा ॥५॥
मेरो नांव सुनत जम डरपत भागि जात तजि असह अवाजा ॥
पतितन मो सारिक परसराम प्रभु होइ सकै को है अनदाजा ॥६॥६२॥

राग धनाश्री-

हरि परहरि भरमत मति मेरी ॥
कहत पुकारि दुरावत नाहिन यह तौ प्रगट फिरत नहिं फेरि ॥टेक॥

श्री गुरू सवद न मानत कवहूं उमगि चलत अपणी हर हेरी ॥
तजि निजरूप विषै मन मानत उरझत हित सौं बूडण की वेरी ॥१॥
नांहिन संक करत काहू की चरत निसंक अति कूप तैं नेरी ॥
परसराम छिटकि परी जो भौ जल मैं सो अब कैसे पाईयत हेरी ॥२॥१॥

राग धनाश्री–

जीव निफल हरि भगति विसारी ॥
आसा वसि वेकाम राम तजि वादि मुएं भौ धर्म भिखारी ॥टेक॥
ज्यौं कायर दल चलत सूर विण धीर न धरत गहै भै भारी ॥
जाणि परत वल हीण राज विण जो पहुच्यौ तिनहिं चढी मारी ॥१॥
ज्यों गजराज अनाथ दांत नाक विण पीव विहुण सोभित नहीं नारी॥
सिंधु अपीव पहुप विन परमल सकल साच विण विषै विकारी ॥२॥
ज्यौं जल नाव कीर विण बूडत डोलत पूंजि तूट थकित व्यौपारी ॥
परसराम हरि भगति हीण नर नांव कहाइ महा निधि हारी ॥३॥२॥

राग धनाश्री–

ऐसे ही जात सकल संसारा ॥
स्वारथ स्वाद विषै रस विलसत रहत न कबहूं न्यारा ॥टेक॥
ढिंभ मोह माया वसि मिलि करि जनम गंवावत सारा ॥
जो सुपनैं सोवत सुख मानत तो सूझत वार न पारा ॥१॥
उपजत खपत अलेखै पल पल आवत जात असारा ॥
बूडत सकल समूह सिंधु मैं बांधि कर्म भर्म के भारा ॥२॥
निसि वासर एक तार कपट मति करत कर्म कौ हारा ॥
जैसे तजत पतंग अपण प्राण कौं परि पावक की धारा ॥३॥
नहीं गुर ग्यान ध्यान उर दीपक मिटत न कबहूं अंधारा ॥
परसराम निरफल तरु फल विण सूक साक खल खारा ॥४॥३॥

राग धनाश्री-

हरि विण धृग जीवण व्योहारा ।।
जो लगत न मन गोपाल भजन सौ तजत न विषै विकारा ।।टेक।।
कलि कौ रस विलसत सुख करि परिगण कठिन कारा ।।
अब मिटत न वै जु दुवासू निकसे गत कागद के कारा ।।१।।
निघट गई निज सौंज वादि पै कछु सोचि न कियो विचारा ।।
हार्‌यो रतन जनम खलि साटै वहुरि न मिलत उधारा ।।२।।
जूंनि अगएा जल थल भर्मंत भुख न लहत फिरि सारा ।।
परसराम जो भगवत विमुख नर धर्मराइ कै प्यारा ।।३।।४।।

राग धनाश्री-

जब लग हरि सुमिरन नही करिए ।।
तब लग जीवन जनम अकारथ भरमि भरमि दुख भरिए ।।टेक।।
अति अथाह दुस्तर भवसागर सों कैसे करि तरिए ।।
हरि जिहाज पाये विण ता महि वूडि भले वहि मरिए ।।१।।
अति संकट ससौ सुख नाहीं जो मित्र मुरारि न करिए ।।
प्रीतम परम हितू पूरै विण परसा पारि न परिए ।।२।।५।।

राग धनाश्री-

जनम सिराय गयो सु न जाण्यौ ।।
हरि सुमिरन विण वादि जहां तहां भरमत सोच न आण्यौ ।।टेक।।
आल जाल जम काल काजि कलि जुग सौं वांनिक वान्यौ ।।
विलसत विषै विकारनि अचवत भव समुद्र कौ पान्यो ।।१।।
अग्य अगिरा अघ भार सांचि उरि सुकृत करि परवान्यौ ।।
पर्म पवित्र पतित पावन जस सो कवहुं न वखान्यौ ।।२।।
गायो सुण्यो न सुमर्‌यो कवहूं हरि देख्यो न पिछाण्यौ ।।
सदा अचेत परम मगल विण कायर कर्म कुठाण्यौ ।।३।।

भयो बूडि व्यौहार हारिण घर जाणि लाभ करि करि मान्यौ ।।
परसा प्रभु विण धूंधकार मैं अंध असमझि विझान्यौ ।।४।।६।।

राग धनाश्री–

पाई निधि निरफल बहुत गई ।।
फूलि फूलि फल विन कुम्हिलाणी त्रिगुण तुषार दहीं ।।टेक।।
कंचन भवन निवास वास पै सुमिरण सुख न कहीं ।।
वै घर अति सब जमपुर जिमि उपजत कर्म जहीं ।।१।।
जीवन जनम विगार्‍यो जग मिलि हंसि हरि हाण सही ।।
प्रभु तै विमुख सदा लघु शोभा जो वड पदई न लही ।।२।।
नांव विना सब सौंजहि सिंधु मैं जहा की तहीं वही ।।
खेवट बिनां वादि भोजल तैं पारि न तिरनि वही ।।३।।
जहां देह सनेह मोह माया सुख दुख को सिंधु तहीं ।।
विभौ विलास आस धृग परसा जहां हरि नांव नहीं ।।४।।७।।

राग धनाश्री–

मन रे हरि नांव हेत काहे न संभारै ।।
भूलो कित भरम लागि पायो निज हारै ।।टेक।।
भौसागर अपार पूर्‍यो भरि थाघ न पाई ।।
करुणा मय कीर बिनां पैरयौ नहीं जाई ।।१।।
अति मोह को जंजाल जाल तासौ सब छाई ।।
सूझै न सेरी संभाल खैंचि काल खाई ।।२।।
उबरण को जाणि और ठौर नहीं काई ।।
वहिए नहीं भर्म धार तिरिये गुण गाई ।।३।।
हरि बिण कोई नाहीं और तेरो सुखदाई ।।
ताको भजि वार वार भूलै जिन भाई ।।४।।

समर्थ सुखधाम काम सांचि सरणाई ।।
परसा दुख हरण तारण त्रिभुवन कौ राई ।।५।।८।।

राग धनाश्री-

मन रे निज राम नाम काहे न संभारै ।।
जिनि दीनों प्राण दान सो पति कौं विसारैं ।।टेक।।
जठराग्नि जरत गर्भ राख्यौ दस मासा ।।
जाकौं तजि भरम भूलि लाग्यौ जग आसा ।।१।।
परहरि जंजाल जाल तामैं सुख नाहीं ।।
परसराम राम राम रमिए रूचि माहीं ।।२।।६।।

राग धनाश्री-

राम नाम सुमरि निज सार नेम धारी ।।
ऐसो सुख नाहीं और दीसे हैं दुख भारी ।।टेक।।
निर्भै निरवाण रुप अजर अमर काया ।।
व्यापै नहीं भर्म सूल अकलप जाहि छाया ।।१।।
तजि और आस निरास निर्भै निज सोई ।।
ताहि सेई कलपि इहां आयो नहिं कोई ।।२।।
बोलै निसांण निगम वाणी रस पियासा ।।
जाको है विडद प्रकट गावै निज हासा ।।३।।
परसा हरि सुख सुधाम धीरज का वासा ।।
सोइ चिंतामणि पर्म नाम भजिए वेसासा ।।४।।१०।।

राग धनाश्री-

मन सुमरि सुमरि, हरि को वरत धारि,
हरि पर्म सुख करि, उर तें न विसारी ।।टेक।।
न करि विरंब वाणि, छांडि दै जग की काणि,
जातैं हो भजन हाणि, सो कहा क्यूं करिए ।।

प्रभु रटि बारूंबार, आपणां सनेही सार,
प्रीतम प्राण अधार, हरि न बिसारिए ॥१॥
हरि है कृपा निधान जीव की जीवनि प्राण,
परम हित सुजान जाणैं तन मन की ॥
तासौं न बनैं दुराउ, जाणैं सबहूं कौं भाउ,
अंतर जामी सुभाउ, समझि सबनि की ॥२॥
हरि सो हितू बिसारि, लाभ धौ कैसो विचारि,
रतन जनम हारि, कित भ्रम बहिए ॥
सोई सेई भ्रम त्यागि, तजि न जाइए भागि,
रहिए ताहिं सौं लागि, पतिव्रत गहिए ॥३॥
व्यापक सबहि माहिं, सबही जामे समाइ,
अभै है ताकूं भै नाहिं, ताही संगि रहिए ॥
परसा अंतर खोई, सेईए सदा ही सोई,
सेवैं सौं ताही सौ हौई, हरि ही सौ कहिए ॥४॥११॥

राग धनाश्री—

निज राम नाम जिनि भज्यौ सोई जीव ब्रह्म हुए ॥
हरि चरण जिन विसारे सु वादि आये मूए ॥टेक॥
गनिका गज व्याध गीध जिनि जिनि चित कीये ॥
तिनके अघ मेटि मोहन आपणें संगि लीये ॥१॥
अमृत श्रुति सार सुरस नेम धारि जो पीये ॥
सो सुर नर प्रेम प्रीति सुमिरत सुखि जीये ॥२॥
पतितन पति प्रेम पुंज विसरैं जिनि भीये ॥
परसा जन त्यौ धरैं लिखि राखि सौ हरि हीये ॥३॥१२॥

राग धनाश्री-

विचरत संत सुधारस पाएं ।।
तजि माया मद धंध जाणि मोहन सौं मोह लगाएं ।।टेक।।
मधुरिखतर विसतार परस्पर पद पल्लव लपटाएं ।।
वक साखा जड़ मूल पहुप फल उसत न उसन लगाएं ।।१।।
सोखत है मधु मिष्ठान महामति ज्यों कीट भृंग ज्यौ लाएं ।।
करि संग्रह रस विलसि प्रगट करि उड़त प्रसंग उडाएं ।।२।।
सजल सुपदम अचै जल जीवनि मिलत न मतै मिलाएं ।।
मधुकर कुसुम सुहास तृपति करि पावत सुख न सताएं ।।३।।
परमारथ कारीन वपु धारै जग सुवारथ विसराएं ।।
पावन करत फिरत भुव मंडल सत्य सुभेप वनाएं ।।४।।
वरिखत है प्रेम प्रभाव सु अमृत पोपत अपहि पिवाएं ।।
लेत सैल जड सरणि सीचि करि सदगति मृतक जिवाएं ।।५।।
श्रिक चंदन श्रुति सार सुदीपक देत सुठौर वताएं ।।
पारस परम हंस जन परसा पर्म सुमंगल गाएं ।।६।।१३।।

राग धनाश्री-

वै हरि एक सकल के धाम ।।
जाकू सेस सहस मुख गावै रसना दोइ सहस भये नाम ।।टेक।।
मछ कछ वाराह सिंघ नर वावन भृगुपति भये औतार ।।
तामैं राम कृष्ण अधिकारी हरि दरिया जामैं लहरि अपार ।।१।।
लोचन हैं दोइ विराट वहु सुर सूर्ज सोम परैं कूल एक ।।
वद्रीपति जगपति रिण मोचन व्यापै सकल धरैं वहु भेक ।।२।।
भव विरंचि हरि अगोचर निगमहूं अगम न पावै भेव ।।
परसराम प्रभु जो अंतरजामी पूरण ब्रम्ह हमारे देव ।।३।।१४।।

राग धनाश्री–

प्रीतम केसवै हो मोहि विरह सर लाग ।।
यों दुख क्यौं सहिये पीव तुम विण होत सुतन कौ त्याग ।।टेक।।
कैसें रहणि रहूं हरि तुम बिन मोहि उपज्यौ वैराग ।।
अब जनि विरंब करौ करुणामैं मिलि मेटौ दुख दाग ।।१।।
तुम हो परम कृपाल कृपानिधि कहां मेरो यह भाग ।।
आरति मोहि मिलहू किन माधौ गुण औगुण तजि राग ।।२।।
अति दीन हम दीन दयाल तुम सुणियो सम्रथ आप ।।
जाग तजि न सोवौ सुख दाइक दीन वचन सुणि आप ।।३।।
प्रीतम निकटि है वोल न वोलै यह अंदेस अनुराग ।।
परसराम प्रभु करुणा सिंधु सौं सखि सलिता समाग ।।४।।१५।।

राग धनाश्री–

हरि दीन दयाल जी अपणी दया न दूरि करौ ।।
हमारे गुण औगुण मन तुम जिन हृदै धरौ ।।टेक।।
हम हैं अनाथ अनाथ बंधु तुम जीवनि प्रान हमारौ ।।
अब तुम हीं कौं सब लाज हमारी आरति हरि न हरौ ।।१।।
अबहि तुम तबहीं तुम हम को कारिज सरि न सरौ ।।
सरणाई सम्रथ सकल सुखदाता सो जनि टेक टरौ ।।२।।
हम न कछु न कछु कहि जानत हैं है भरौस तुम्हारौ ।।
जैसे प्रभु हौ तुम तैसी कछु करियौ इहां कौहे हमरौं ।।३।।
असरण सरण विरद अपणां सोई किन करौं खरौ ।।
परसराम प्रभु आईवणी अब तुम हम तैं न डरौ ।।४।।१६।।

राग धनाश्री–

हरि संगि खेलन हूं चालि तू कित है सखी वरजै मोहि ।।
जिय मैं सोचि न देखई तू हरि सौ प्रीतम है और कोहि ।।टेक।।

दुतिया कह्यो न मानही है यह सखी तौ पैं सरस सुवाणि ॥
आप मुरारि तें उठि मिलि मेटि दई सब कुल की काणि ॥१॥
जो भयो कुल काल सौं ताकी री मोहि नाहि आस ॥
अंतर जामी जो मिलै तासौं प्रीति करूं घरवास ॥२॥
निलज भई लज्जा नहीं तासौं कहिए कहा वणाइ ॥
पडदै राखी ना रहै प्रकट ही पीव पैं चलि जाइ ॥३॥
तर्क वचन जे निर्मित सकलेसनि अंध गंवारी ॥
पीव संग खेलत भै नहीं करि जो कहि विभचारी ॥४॥
भूल्यौ अंति परवसि हम हीं कही जो कही है और ॥
इन बांतनि पति पाऊं तौ जाऊ जहां जीवनि ठौर ॥५॥
प्रेम पुरष चित वसै विसर गयौ आवण जाण ॥
हरि विण और न भावै परसा प्रभु जीवण प्राण ॥६॥१७॥

राग धनाश्री—

कब गाइबो जीवनि राम, हो वौ मन कौ विराम,
बसिवौ रसुना नाम, हरि ही हरी ॥टेक॥
कब कटिवौ आसा कौ पास, करिवौ कर्म कौ नास,
हो वौ भजन अभ्यास, जनम सही ॥
कब पाइवौ प्रेम निवास, हरि कौ हृदै प्रकास
आइवौ मन बेसास, दुरति दही ॥१॥
कब छूटिवौ काल भै भागि, रहिवौ नाम सौं लागि,
जीतिवौ जनम जागि, भागि जो होई ॥
कब होईबौ सत समागि, रहिवौ ज्यौं अनुरागि,
जरिवौ न भ्रम आगि, सुख है सोई ॥२॥
कब कहिवो जगिवेकाम, मिटबौ सुख सकाम,
चितबौ जापति जाम सुफल घरी ॥

कब पाइबौ मन विश्राम, हरि सौं सुख सुधाम,
है प्रभु परसराम, सरण खरी ॥३॥१८॥

राग धनाश्री-

मन राम रांम राम सुमरि देवन कौ देवा ॥
ब्रम्हा सिव सेस सक्र करत जाकी सेवा ॥टेक॥
सुर नर मुनि नारदादि, प्रगट साखी सनकादि,
कहत है यो जस निकट के रहेवा ॥
हरि नांइ जै तारे अपार, लहै को तिन कौ न पार,
नेत निगम कहै पावै नहिं भेवा ॥१॥
वे तौ तिरे कुल जाति हीन, जो भज्यौ हरि होई दीन,
रसनां नेम धारि प्रेम प्रीति हेवा ॥
नवका निज नांव की करि, जात है भव धार तिरि,
पतित तैं पतित पार वहु खेवा ॥२॥
एक है आस सब निरास, दुविध्या है काल पास,
तामैं है दुख जीव छाडि भ्रम भेवा ॥
निज नांव सौं ल्यौ लाइ लै, मन दै गोविंद गाई लै,
परसाराम नाम लै अमृत मेवा ॥३॥१९॥

राग धनाश्री-

मन हरि भजि सारण सब काज ॥
दीन दयाल देह को दाता ताहि सेवत सुमिरत कैसी लाज ॥टेक॥
नर औतार सिरोमनि सब तैं दीनू जिनि सुन्दर करि साज ॥
ताहि हरि कौ नांव लेत नहीं अपराधी क्यों भूलि जात बेकाज ॥१॥
जग्य जोग तीर्थ व्रत साधन सकल धर्म तिन कौ सिरताज ॥
परसा प्रभु सरण सबनि कौ भौतारण हरि नांव जिहाज ॥२॥२०॥

राग धनाश्री-

आरति करि लै अवगति नाथ की ।।
वैगि विचारि विरंब जिनि लावै सौंज सुफल करि साथ की ।।टेक।।
पर्म उदार चरण चितवन करि परहरि भ्रमणि अकाथ की ।।
परसराम सोई सकल पति सम्रथ सुनै पुकार अनाथ की ।।१।।२१।।

राग धनाश्री-

आरति प्रभु अंतर जामी ।।
मैं सेवक तू सम्रथ स्वामी ।।टेक।।
दीपक एक अनंत उजाला ।।
ताकूं परसि कटै भ्रम ताला ।।१।।
घंटा ताल है अनाहद वाणी ।।
घटि घटि व्यापै भ्रम विनांणी ।।२।।
सवद अनाहद वाजा बाजै ।।
सुन्य सिघासण राम विराजै ।।३।।
सहज सुरति साहिंव मेरा ।।
देखै दास जो चरण का चेरा ।।४।।
आतम देव और नहि कोई ।।
परसराम वोलै सति सोई ।।५।।२२।।

राग धनाश्री-

आरति प्रभु कंवल नैन करत मृदित चेरौ ।।
ठाडौ दरवार द्वारि, करत नवनि चौंरि,
मोल कौं लियो तुम्हारि, तेरो हूं घटि केरौ ।।टेक।।
करत न को निहाल, छाडि औरि आल जाल,
हाथ लै मृदंग ताल, गाऊं रे जस तेरो ।।

परसराम प्रभु स्याम, देहू दान हरि नाम,
दीजिए भगति दाम, नेम मेटौ न मेरौ ।।१।।२३।।

राग धनाश्री-

आरति सकल दीपक राम ।।
अखंड जोति अभंग मंदिर रचित वड विश्राम ।।टेक।।
अकल मूरति अटल आसन अखिल अविगत नाथ ।।
पूजा विविध अनंत मोहे जित सु तित तेरे सव साथ ।।१।।
अजर आपणं दिष्टि सव है विस्व रूप मैं विस्तार ।।
ब्रम्हंड पिंड अनेक अंतरि वसै जाकौं वार न पार ।।२।।
ब्रम्ह चरित अपार महिमा अगम गति व्यौहार ।।
रटै संकर सेस ब्रम्हा निगम करत जै जै कार ।।३।।
देखि परम उदार दरसन सरस त्रिभुवन सार ।।
निरखि निज निरवाण औसर थकित सुर अवतार ।।४।।
प्रहलाद ध्रू सुक व्यास नारद करत मुनि जन सेव ।।
परसराम प्रभु निवास नरहरि प्रगट पूरण देव ।।५।।२४।।

राग धनाश्री-

जव लगि हरि हिरदै न समायो ।।
तव लग सुख संतोष न सोभा जग मिलि जनम गमायो ।।टेक।।
कहा सर्‌यो नर नांव रूप तै जो भूपति भूप कहायो ।।
जीवन जनम गयो दुख माहिं पैं सुख सिंधु न पायो ।।१।।
वेद पुराण सुण्यो सव योंही सीख्यो गायो गाइ सुणायो ।।
मेटि न सक्यो कर्म तन मन तैं हरि निहकर्म न गायो ।।२।।
कीयो न करायो सवै गमायो जो हरि मन न वसायो ।।
मन कै दोष मिटै क्यौं परसा जो हरि मन माहिं न आयो ।।३।।२५।।

राग धनाश्री--

जब लगि हरि सुमरण सु न करिए ।।
तब लग जीवन जनम अकारथ सुरत न कहूं दुख भरिए ।।टेक।।
भव सागर तिरिबे कौं दुस्तर विण हरि जिहाज कैसे कै तिरिए ।।
विण हरि परचै संसार धार महि निति र्भमि र्भमि वहि मरिए ।।१।।
जीवत लौं नरक माँहि वसिवौ और मूवां नरक महिं गरीए ।।
जनमि जनमि जम लोक जाण कौ नर मरि मरि कै औतरिए ।।२।।
मिथ्या वाद विवाद भजन विना सो करि करि क्यौं निस्तरिए ।।
झूठ कमाइ सांच कौं परहरि यों परसा पार न परीए ।।३।।२६।।

राग रामगरी--

हे देव दीन बंधू तुमहि दोस नाहीं ।।
मोरै तोर वेसास उपज्यौं न माहीं ।।टेक।।
मति अंध अग्यान जग आस भ्रमत,
फिर्‌यो सदा मन भूख तृष्णा न जाई ।।
त्रिपति निजरूप हरि हंस न सेयो,
सुरग सुख पंथ तजि पर्‌यौ खाई ।।१।।
स्वाद स्वारथ विलसि रोग रोगी भयो,
गयो तामाहीं तउ तज्यौ नहीं जाई ।।
ईसौ मन नीच अपमीच सूझै नहीं,
अमर फल डारी विष गांठि खाई ।।२।।
विथा वपु गई विचरी अपवसि क्यौं,
लागै नाहीं जहां वैद की वल कोई ।।
वोखदी जतन गुण जहां नाहीं लागै,
मरै हैं सोई अंति जीवण न होई ।।३।।

प्रभु पतित पावन मैं असत जाण्यो,
यों करी अपघात विष पान पीएं ॥
सुणूं महाराज दया सिंधु परसा सु,
यों जात जम लोक नर सौंज लीएं ॥४॥१॥

राग रामगरी–

सुणौं देव देवाधि येक अरज तुम सौं
करूं आपणें दास कौं दुख न दीजै ॥
काटि सव कष्ट रिद्धिपाल हरि भैं
हरण अभै करि अपणी भगति दीजै ॥टेक॥
अगणि औतार उपकार कारणि कृपा
भगत कै हेत वहु भेष जो ल्याये ॥
करत वहु रूप निज रूप रछ्या करण
कर धरै चक्र ततकालि आये ॥१॥
वदत है सव साध तव साखि साची सदा
करत हरि सत्य जो संत भाखै ॥
यौं सुणियो मैं सत्य करि भगत वछल
सदा आपणें भगत की पैज राखै ॥२॥
आदि रू अंति इकतार असरण सरण
प्रगट नीसांण तिहूं लोक वाजै ॥
ब्रम्ह सिव सक्र सनकादि सुक सेस
सहस मुखि अमित महिमा विराजै ॥३॥
व्यास नारद निगम कहत निज वाणि
यौं दास कौ दास हरि सम न कोई ॥
परसा सुहरि अघ दवण परम मंगल
प्रभु धरहूं पैज अवैं सोई ॥४॥२॥

राग रामगरी-

सुणहूं हे राम जैसी वात भई मोरी ।।
मैं हूं पतित कैसे रहूं सरणि तोरी ।।टेक।।
ऐंचि अचयो सु विष पैसि भव सिंधु
मैं पिवत वहु प्यास अजहुं न त्यागैं ।।
भयौ रस लूध मन त्रिपति पावैं नहीं
स्वादि लागो असर और और मांगैं ।।१।।
रह्यो जो मन सोइ संसार सुख नींद मैं
सदा निस पूरहिं कवहूं न जागैं ।।
सहिलै नहीं छीन मोह मद मैं ऊपरि
फिरी मंत्र जंत्रादि वोखद न लागैं ।।२।।
लियो वपु जीति अवै नखसिख न सूझै
सुणैं विथा वहु देखि भै वैद भागैं ।।
परसा सु वेसास निज रूप रछया विनां
मरत हूं प्रगट अपणें अभागैं ।।३।।३।।

राग रामगरी-

सुणां राम रघुनाथ या वीनती दास की
मेरे दीन बंधू सुन तुम सौं पुकारैं ।।
विथा दुख विपति तन ताप व्यापै अधिक
झूठहिं संगि सांच की सूझ हारी ।।टेक।।
मैं पर्‌यो भूलि उद्यान मैं वन पंथ लाभै
नहीं किसी दिस जाऊं वस्ती न पाऊं ।।
रोकि लूट्यो पिसन पहूंचि करि लीयो
कृपण धन हीन प्रभु सरणि आऊं ।।१।।

काम रिपु क्रोध रिपु काल रिपु दहै
राति दिन त्रास दुख वंदि वसि कीव ॥
मोह वड़ विघन तृष्णा तरल तनी वसै
क्यों करूं केसवे कर्म वसि जीव ॥२॥
संसार वड सिंधु कछु पार पाउं नहीं
नांव नरहरि विना मांझि न लीया ॥
अधिक सकट वडै वेग वाहर करौ
जात उलटयौं प्रवाह वूडत लीया ॥३॥
मैं मुगध मति हीण गुर ग्यान खोजूं
नहीं गर्व गाफिल भयो जात भ्रम धार ॥
हा नाथ हा नाथ त्राहि त्राहि त्रिभुवन
धणी राखि लै राखिलै सरण या वार ॥४॥
भाव विण भगति विण कौं तारै तिरै
जीवन यौं आस वसि प्रेम विण प्रीति ॥
कुवुधि अहंकार कपट हृदै वसै जो कीयो
वस आपणै जाणि जम जीति ॥५॥
विषै विष फंद अति अंध सुझै न दिसि
कुदिसि अगनि जल जलन पाया ॥
परसा जन दुखि विण साधसंगति सरणि
क्यौं मिटै झाल रिछिपाल राया ॥६॥४॥

राग रामगरी–

कहौ क्यौं विण सु भगति निस्तार होई ॥
जो प्रीति पति प्रेम रसनां न पोई ॥टेक॥

बकिवाद बकिवाद करि स्वारथ सुगण
मंद मति मोह माया समाई ।।
क्यौ होत निरमल जु मल मद्धि
मिलै सुरति सतसंग सिल सौ न धोई ।।१।।

सुणि अंध कित धंध सौ लागि लालच्चि
बहुचौ पाई नर देह तैं वादि खोई ।।
विषै आस वसि मोह की पासि वंध्यो
सुक्रपाण धनहीन निकस्यौ न होई ।।२।।

जो संसार व्यौहार करि कर्म भर्मंत
फिर्‌यो वहि गयो धार भै भार सोई ।।
सूझै नही इहां बार उहां पार हरि
कीर विण परसा उतारै न कोई ।।३।।५।।

राग रामगरी–

गयो मन वादि अस्थिर न होई ।।
जो सत्य निजरूप सुमर्‌यो न सोई ।।टेक।।

हारि चाल्यो महा निधि साथि न तो
मुगध वल वुद्धि विण बस्तु खोई ।।
क्यौ होत निस्तार निज निधि
परहरि भगति नेम निहचै न कोई ।।१।।

तज्यौ आस वेसास विश्राम हिरदै सूं
विण पहिचाणी को देत ढोई ।।
जूंनि अनेक सत जनमि भम्यौ
सूझ्यौ न तटवाणी रस हीन छोई ।।२।।

तृष्णा तरल रूलत न सूल सालै
सदा दुखित सुख सोच्यौ न कोई ॥
त्रिप्ति उरि वोत हरि हेत परसा
समझि प्रीति पति प्रेम मोई ॥३॥६॥

राग रामगरी—

मनां रे कर्म वन्धन है सवै श्रौर
जो देखिए विषै वलवंधु भवसिंधु भारी ॥
रघुनाथ पति भजन तें परम गति
पाइये नांव निरवंध निर्भै मुरारी ॥टेक॥
श्रास की पास पडि जलत रुचि जहां
सु तहां मोह की श्रगनि नहीं जात टारी ॥
सोचि देखि मन वहुत व्याकुल भयो
एक श्रकल विण सकल संसै संघारी ॥१॥
यै श्रचिरज वडौ देखि करि मन डर्‌यो
श्रनंग गति कुमति मिलि माहिं वीझयां ॥
विण भगति ग्यान की धार वहिं पार पायो
न कोई उरवारि वहुरंगि रीझ्यां ॥२॥
जव गांठि की वोखद थकि तो व्याधि
व्यापै वहुत वैद वेसास विण व्है न कारी ॥
यौ श्रवणि सुणिता सीखतां गावतां
सुमितरां देखतां तू देखि वड़ सौज हारी ॥३॥
जीव जग लागि करि राम वल वीसर्‌यो
रहति को कहत रिधि सिधि विकारा ॥
मुकत कौ बंध निरवंध हरि परहर्‌यो
मूल तज चित चढ्यौ है दोरि डारा ॥४॥

अधिक संकट माह मोह घोर निसी मैं
रतै तू ही सीस लै चढायो भार मूआ ।।
परसराम प्रभुराम सुमिरण विनां मन
बहू विगूचण भई जात जुआ ।।५।।७।।

राग रामगरी-

अजू रे जीव जीवै कहा आस वेसास
लै तू निकसी निरवाण पद क्यौं न गावै ।।
सदा सुख सोग संताप संकट दहै रे
मंदमति जगत कित सीस नवावै ।।टेक।।
पकडि गुर ग्यान विग्यान कर धरि करद
मर्मंत की मारि डर भेद मांहीं ।।
होइ घाइल घिरौ घूमि घर मैं परौ
बिण परमगति पाई मरि जाइ नाहीं ।।१।।
सुणि मूढ आरूढ़ होइ सिघणि सुगहि
गवण करि अगम दिसि दूर नाहीं ।।
सव भर्म तजि भेद भजि सुदिढ़ संसौ
न करि तिरि है प्राण सुर पारि जाहीं ।।२।।
समझ सुख धाम सव काम पूरण कला
सकल मैं अकल व्यापक विहारी ।।
देखि बड वैद निहवंण दिष्टि मरि
जहां सुतहां प्रगट पूरण सुखकारी ।।३।।
सकल अरि जीति करि प्रीति निज भजन
सौं हेत करि भेट पति संग सोई ।।
परसा जन प्रेम नेम धरि सुमरि हरि
नांव सुख सिधु सम सुख न कोई ।।४।।८।।

राग रामगरी—

सोई हरि अभै पद ताहि भै नाहीं ।।
मुगध मन और सव देखियत वस्तु भै माहीं ।।टेक।
सहत है जम त्रास भौ पास रत जीव जो
मति विनां निज ठौर निहचल न होई ।।
सोई सेइ पद सरण दुख दोष विष हरण
कौं विना हरि और सम्रथ न कोई ।।१।।
समझि सुणि साखि हरि प्रकट तारण
पतित कहत सव संत मति सति जाणी ।।
और छाडि जंजाल वल काल कुल कलपना
सुमरि हरि नांव निहकलप वाणी ।।२।।
और सव कर्म भर्मादि मत सिद्धि साधन
सकल तुच्छ कण हीण सुणि सोचि जोई ।।
परसा सु आरंभ जो और अगिणत करैं
तोऊ उद्धं मन सुद्ध हरि विन न होई ।।३।।६।।

राग रामगरी—

सोई हरि प्राणपति प्रगट मन किन संभारै ।।
विन भगति नर जनम कित वादि हारै ।।टेक।।
समझि दिढ वुद्धि करि सुद्ध निर्मल
गुपति सत्य सुख रूप निर्भै मुरारी ।।
निरखि निधि सोई भजि गाइ गुण पर्म
पद सर्व सुख सकल आनंदकारी ।।१।।
हरि नांव सुखरूप साधन वडो भजन कौं
जो भज्यो उरधारि भौ पार तारै ।।

सर्व सुख दैत वैकुंठ पुर आदि देइ और
जो दुख सोक सभै हरि निवारै ।।२।।
कछ समझि मति अंध तजि सव धंध
परवंधए कर्म करि सुख न कोई ।।
श्रुति सु संम्रति कहै साखि सुख सिंधु
की श्रवण सुनि सीखि मुखि सुमरि सोई ।।३।।
चित गहि चरण दुखहरण कै सरणि
रहि कृष्ण केसौ सुमरि सार वांणी ।।
परसा वेसास उर धारि प्रभु सेई जो
अंतर निरंतरि वसै सत्य सो जांणी ।।४।।१०।।

राग रामगरी—

सुमरि मन सुमरि हरि हेत करि हर्दै
धरि मंत्र निज मूल मिथ्या न खोई ।।
परम रस प्रेम रसनां विलसि नेम धरि
डारि अपकर्म भव भर्म छोई ।।टेक।।
राम रमि तू राम रमि तहां विराजै रतन
जहां सु तहां जीव जंत्रादि सोई ।।
रह्यो सकल भरपूरि नहीं दूरि नीरौ वसै
वास चिद्रूप दुतिया न कोई ।।१।।
प्रगट निज रूप रवि निकट ज्यौं देखै
सुणै गाइ गावै तो सुहरि सति होई ।।
समझ गुर ग्यान विग्यान अंतरि करि
सुपति प्रीति परसा कीयां देत ठोई ।।२।।११।।

राग रामगरी—

मनां सुमरियें राम संसार तारण
हरि जांहि सुमर्यां कछु पार होई ।।

और आल जंजाल भ्रम काल भौ छाडि
दै द्रुमति संगति तिर्‌यो नांहि कोई ।।टेक।।
ब्रम्हादि सनकादि सुर सुमिरन करै
प्रकट विडद गति निगम गावै ।।
सिव सेस मुनि ध्यान उंमान अमृत
कथा सुरस पीवै न त्रिपति पावै ।।१।।
देखि पसु पंखि द्विज आदि अधम
उद्धरे जिनि भज्यो तास के सरे कांमां ।।
जाति छीपी जाकी अगम महिमा करी
सो मिलि भयो एकै हरि नांइ नामां ।।२।।
देखि कुल रीति प्रतीति कलमां पढै
करै गोत कबीर नहिं सूग काए ।।
कबीर कंवल प्रगट प्रभु तैं भयो
वास नव खंड बहू भंवर धाए ।।३।।
जाकी जाति मद्धिम अधम अरस
परस नहीं जाणि सत्य मंसार नीचा ।।
या साखि प्रसराम प्रभु भजन की
जो प्रगट रविदास सब लोकि ऊंचा ।।४।।१२।।

राग रामगरी-

ऐसो भजन भै हरन भै और व्यापै नहीं
कोई अभै हरि नांव जो हेति भासै ।।
त्रिविध तनु ताप संताप सोखण जो
प्रबल सुगत बल व्याल भै काल नासै ।।टेक।।
अघ तिमिर निसि घोर अंधार देखै
मिटै कब जब सत्य करि रवि प्रकासै ।।

दर्पन दिव्य जगत संगि विचरै पति स्वारथ मति छोट ॥
निरखत वदन नैन कर कीये उभै निरंध्रनि चोट ॥३॥
धर धुकित सीस तर हर करि ज्यौं चरण चलावै पोट ॥
परसराम जिम कोप प्रकट ही जात नरक लीयें जोट ॥४॥१६॥

राग रामगरी–

अपन मन तज तन मदन विकार ॥
मुगध बण्यौ भूल्यौ माया वसि जहा तहा भ्रमत असार ॥टेक॥
ज्यौ रुति सुवान असुद्ध अंध मति होई सहत सिरमार ॥
ऐसो विटल अटल आसावति तनहूं कि सुधि न संभार ॥१॥
घर घर फिरत हात नही आवत हेरत विष व्यौहार ॥
अति रस लंपट लालच लियौ लायें ढके उघारत द्वार ॥२॥
चचल चपल सकल संगि धावै निसि वासर इकतार ॥
रोक्यो धरत न धीर डरत अति काइर करत पुकार ॥३॥
करम असोच पोच नही सोचत लोचत लिहत हूंकार ॥
परसराम पति हीण निम्रादर कोइ न करै रखवार ॥४॥१७॥

राग रामगरी–

मु कैसे करि हरि पति कौ व्रत धारै ॥
जो साधै नही भगति परमारथ स्वारथि पच पसारै ॥टेक॥
रहै सदा मलीन मोह माया मिलि काम क्रोध तन जारै ॥
हरि दीपक गुरु ग्यान ध्यान विण भर्मै भुवनि अंधारै ॥१॥
दुख सुख सोच पोच आदाहन हरिख सोक न विसारै ॥
लाभ हाणि निज नेम प्रेम विण अध नही कछु विचारै ॥२॥
अहकार वल डिभभार सिरतै न कवहूं जो उतारै ॥
बूडै प्राण असमझि भगति विण भव समुद्र को तारै ॥३॥

यौं उपजै खपै तिहूं गुण संगति जो आसा कर्म न डारै ॥
प्रसराम प्रभु विण मन परवसि सदा काल कै सारै ॥४॥१८॥

राग रामगरी-

कठिन परी कैसे भज्यों हरि नांव तुम्हारा ॥
मैं परवति वांध्यो फिरूं छुटै न विकारा ॥टेक॥
दारुणि दह दिसि दौं वलै दौंवै घर छाया ॥
अग्नि झाल भीतरि जलै जल दिष्टि न आया ॥१॥
प्रेम बूंद मोपैं नहीं जिहिं तुम वसि आवौ ॥
माया विषय वसि भयो जन दुखि छुडायौ ॥२॥
होहूं कृपाल कृपा करौ जागत जनि सोवो ॥
भगत वछल विडद अपणूं जिनि खोवो ॥३॥
सेवक जीय रहसि ऐंचति तैं सोई पावै ॥
परसा ठाकुर सो सही जो या चित गंवावै ॥४॥१९॥

राग रामगरी-

तुम कहिये चिंताहरण मोहि चिंता भारीं ॥
राम विडद तौऊ जाणि हूं जो हरौ हमारी ॥टेक॥
जीवत जो परचौ नहीं को मूआ पति यावै ॥
पिंड पर्या जो सुख पाइयै सो मोहि न भावै ॥१॥
करौ कृपा माहि केसवे दुख मिटि उवारौ ॥
राखि सरण सुख पाये संग तैं जनि टारौ ॥२॥
प्रेम सुरस अंतर बसौ छिन छिन पीऊं ॥
परसा प्रभु हरि सदा दरसन द्यौ जीऊं ॥३॥२०॥

राग रामगरी-

ऐसी राम हित विण कहूं काहि ॥
तन छीजै दुख सह्यो न जाहि ॥टेक॥

प्यासो क्यों करि जीवै विण पाणी प्राण परस प्रीतम चलि जाइ ।।
औसर मिट्यौ वहुरि कव मिलि है पाणी वहि मुल्ताणि समाइ ।।१।।
पाणी विनां मीन तन त्यागै तलफि तलफि तूटै यों तन पौंन ।।
पाछैं कहा मिलै जो दरिया वहि जावै काहि जिवावै जीवै कौन ।।२।।
दावानल प्रकटि सव जारै उवरण अंतर रहै न कोई ।।
तव घण वरपि कै कहा सीचै जव वीज जड़ डाल न होई ।।३।।
दीन दयाल भगत हितकारी तुम विण पल रह्यो न जाइ ।।
विलपै दास दुखी विण दरसन परसा प्रभु करौ सहाइ ।।४।।२१

राग रामगरी–

जाकौं हरि निजरूप दिखावै ।।
ताकौं सदा चित सुमिरन की जाकौ हरि विण औंर न भावै ।।टेक।।
हिरदै वसियो रहै हरि अस्थिर हरि विण औंर न आवै ।।
हरि जहां तहां सुख सिंधु सु मंगल हरि ही हरि दरसावै ।।१।।
श्रवन निहारि नैन निहारि अंतर हरि चित तैं न भुलावै ।।
हरि हरि हरि वोलै मुख वांणी रसना हरि हरि हरि हरिगावै ।।२।।
हरि गुर ग्यान ध्यान पूजा हरि हरि हरि ही सौं प्रीति लगावैं ।।
तन मन सौंज सौंपि हरि आगैं जो हरि हरि ही कौं सिर नावै ।।३।।
सोवत हरि जागत हरि जीवनि हरि हरि ही सौ ल्यौ लावै ।।
वैठत हरि उठत हरि चितवत धावत हरि संगि धावै ।।४।।
हरि हरि उचरत निसि वासर हरि अचवत न अघावै ।।
हरि हरि हरि सुमिरत जन परसा हरि ही मद्धि समावै ।।५।।२२।।

राग रामगरी–

जिन कै प्रेम भजन सुख आइक ।।
तिन कैं वस त्रिभुवण के नाइक ।।टेक।।
हरि सनेह करि सुक मुनि गायो ।।
निर्भै भयो अरु परम पद पायो ।।१।।

श्री हरि सकल सवारण काजा ॥
सुणि भौ तिरियौ परीछित राजा ॥२॥
हरि सुमिरण प्रहलाद उवार्‌यो ॥
भगत सहाइ जो सिंघ वपु धार्‌यो ॥३॥
हरि पद सुमरि सुमरि उर धारै ॥
चरण कंवल कमला न विसारै ॥४॥
प्रिथु उर धरि हरि पल न विसार्‌यो ॥
घर चित नित सु नेम व्रत धार्‌यो ॥५॥
हरि प्रतिपाल भगति प्रण पार्‌यौ ॥
वंदन करत अक्रूर निस्तार्‌यौ ॥६॥
करि दास भाव हरि कौ मन दीयो ॥
हरि हनवंत नाम सम कीयो ॥७॥
हरि निज रूप सकल सुखकारी ॥
जो सखा भाई पंडव हित कारी ॥८॥
हरि बांवन राज प्रिथि को लीनौं ॥
वलि सर्वंस दै अपणै वसि कीनौ ॥९॥
प्रेम नेम कै वसि अपरं पर ॥
व्रज बालक हो रमै सकलवर ॥१०॥
भगत वछल हरि भगत वसि ॥
परसराम प्रभु सदा एक रसि ॥११॥२३॥

राग रामगरी–

संतौ राम भजन भै भागा ॥
परम निवास नांव निधि कैसो ता चरणनि चित लागा ॥टेक॥
आवण जाण वरण विधि छूटी अवरण मैं निधि पाई ॥
चिंता मिटि सकल पतिं परस्यो सो सुख कह्यो न जाई ॥१॥

राति धौस मिलि सहज समाणी धरणी अधरैं पाई ॥
सूरज भागि दुर्‌यो उत्तर मैं चंदा दछिन मैं जाई ॥२॥
जहां मूनि सहर मुर लोक देवता अवसापुरी वसाई ॥
परसराम अविनासी राजा ता प्रभु सौं वनि आई ॥३॥२४॥

राग रामगरी—

जो हम करैं सु कछु न होई ॥
कछु करि हैं राम सु व्है हैं सोई ॥टेक॥
हमरा किया जो अकिया होई ॥
हरि करि है सुन मेटै कोई ॥१॥
जो हम करैं सु करणी झूठी ॥
राम करैं मु होइ न अपूठी ॥२॥
आप करै सोई अप मारग ॥
हरि को लार रहै निर्भारक ॥३॥
निज निरभार सोई सोई छूटै ॥
परसा राम विमुख जम लूटै ॥४॥२५॥

राग रामगरी—

अवधू ग्यान अगोचरी दिप्टक मैं नाहीं ॥
दिप्टि आदिप्टि न देखिए व्यापक सव माहीं ॥टेज॥
मद्धि वसै तौ देखिए देखै नहीं कोई ॥
वाकौ सोई देखि है जु वाही सो होई ॥१॥
रहति कहति मैं हो नहीं सो सव तैं न्यारा ॥
दिप्टि मुप्टि आवै नहीं निरमल निरधारा ॥२॥
रहत सुमिलित निरंतरा नखसिख न अधूरा ॥
ज्यौं नभ सोभित नीर मैं यौं वाही रह्यो भरिपूरा ॥३॥

गारण अजारण न जारणई जारणौ सभी गारणां ।।
परसराम प्रभु सिंधु मैं जो रहै समारणां ।।४।।२६।।

राग रामगरी–

मन रे धीरज धरौ विसारौ ।।
मेर तेर अपवल को तजि करि अंतरि राम संभारौ ।।टेक।।
नाई नाज दहूं दिस खोवै करण को स्वाद न पावै ।।
स्वाद कुस्वाद लहै रस धरणी जामैं वींज समावै ।।१।।
पाव न पाक कडाही पडदै कर गहि कली हिलावै ।।
भौजन संगि जलन कौ स्वारथ स्वाद कुस्वाद न पावै ।।२।।
जब लगि जीव बसै घट भीतरि जीवत जीव कहावै ।।
निकस्यो जीव भई जब माटी सब प्रेतक नांव वुलावै ।।३।।
साखि साखि कहत जग खीरणा कही सुरिण भरम पाया ।।
परसा राम जो वस्यो नहि अंतरि तौ आसा मूल गंवाया ।।४।।२७।।

राग रामगरी–

राम विरण सरणि कवरण की रहिए ।।टेक।।
कर्म कठिन माया वड बंधन जनमि जनमि दुख सहिए ।।
प्रलै काल संसार सु पावक तामैं परत परत न दहिए ।।१।।
नाहिं न हितू अवर कोई हरि विरण जहा कहूं सुख लहिए ।।
विथा रोग वियोग सोच दुख अपरणूं और कवरण सूं कहिए ।।२।।
तुम दया सिधु दुख हररण कृपा निधि दिढ सु पात जो गहिए ।।
परसराम जन तिरत विरंव नहि गुर प्रसादि निर्वहिए ।।३।।२८।।

राग रामगरी–

मन खोजि नर हरि गाऊंगा ।।
हरि हरि तजि अनत न जाऊंगा ।।टेक।।

अक्रूर घटि विश्रांत न परसौं जलि जमुना न वहाऊंगा ॥
मथुरा वसि मन मोहन मिलि हूं ता सरणैं सुख पाऊंगा ॥१॥
केसी कंसनादि कै भै नहीं डरपूं कालि दहै मैं न्हाऊंगा ॥
धू अस्थां न रहूं धीरज धरि न चरि घाट चित लाऊंगा ॥२॥
दस औतर कर्म नहीं भरमूं जनम अस्थान रहाऊंगा ॥
सुनंद गांव निज नांव महापति ताहि देव सिर नाऊंगा ॥३॥
जप तप तीरथ व्रत भ्रमि पतिव्रत नाही लजाऊंगा ॥
परसा दास रच्यौ वंसी पुर ता सूरति मांहि समाऊंगा ॥४॥२६॥

राग रामगरी–

उधौ हरि हम सौं जो करी तैसी को जानैं ॥
हम जानैं कै करि हितू तुम तैं सव छानैं ॥टेक॥
कहा कहैं अव कोण सौं जो हूवो अणहूवो ॥
यहै सोचि संसौं सदा जु कागणि संगि सूवो ॥१॥
वूहां सर्वस सवको हर्यौ फिरि भये अवोलै ॥
इहां हित करि आपण हरी उनसौं मुख वोलै ॥२॥
अति हिताय अपणो जताय भये अण वोलै ॥
परसराम प्रभु व्रज तज्यौ मथुरा में डोलै ॥३॥३०॥

राग रामगरी–

सुहरि सौं झगरौ किस्यौ पति देऊ हमारा ॥
तेरी संगति वूडि है नहीं होइ निसतारा ॥टेक॥
हे सुंदरि यौं जनि कहै प्रीसम दुख पै है ॥
अव तौं मेरै वसि परचो जैहै तव जै है ॥१॥
रीझै कत विवचारणि निम्रलि मल लावै ॥
आवण दे किन मो लगैं मत ही सुख पावै ॥२॥

सो सुंदरि क्यौ आई है मैं कामण करि जीता ॥
मेरै ही रंगि रातौ जु रहै तेरौ नही प्रीता ॥३॥
तुहुं कुवुद्धि संसै भरी तेरै क्यों वणि आवै ॥
हेत सुमति संगति रहै तो तै सुख पावै ॥४॥
मैं नखसिख लू सौप्यों सबै जो हुतौ हमारौ ॥
जिनि बातनि सूं भौ वूडि है सोई दीनो चारौ ॥५॥
कत मूरिख गर्वै गई दिन दस बोरावै ॥
भौ संकट दुख सिधु मैं जो तो कौ छिटकावै ॥६॥
मोहि याहि नीकैं वणी हम दोउ मिलि जागै ॥
हूं या कीयो मोह रहै निरभै मन तै भागै ॥७॥
सुण तेरो प्रीता यौ नही न तू याकी प्यारी ॥
यो दूजौ जाइ वसाई है तोहि छाडि गंवारी ॥८॥
सौकि सालि सुख को नही मुख सुंदरि पायें ॥
परसा सुख दुख मिटै दरिया दिठि आयें ॥९॥३१॥

राग रामगरी–

प्रीतम पर्म दयाल सौ मिलि मै सुख पायो ॥
पोपि सुधारस सौ हरि दुख दूरि गंवायो ॥टेक॥
विरह असुर की त्रास तै जुतन मन मुरझायो ॥
जिनि मृतक जिवांवण कारणै सु अमृत वरसायो ॥२॥
जिनि विरह जरत पीय प्रेम सौं उर सीचि सिरायो ॥
पीव परसि पर्म मंगल भयो मेरे मन कौ भायो ॥२॥
अति आरति विलसत सदा पीय सरस सुनायो ॥
परसराम मन प्यासो खरो पिवत नाही अघायो ॥३॥३२॥

राग रामगरी–

अपणां नांव चलाइये मुसिए मेरा तेरा ॥
राम न रीझै साच विण वकीए बहुतेरा ॥टेक॥

सुख तरंग गंगा वहै निर्मल जाहि नीरा ।।
ताकी ढिग छीलर खणै चाहै जो जल सीरा ।।१।।
अमृत कुंड नहाइये ढिग कूप खणी जै ।।
सेझै सीर न आवइ जो चौढै सौंई रीझै ।।२।।
चित चोरी साधन हुतै तो क्यौं साह कहावै ।।
याजो कवहुं दूरि होई तौ साहिव जन भावै ।।३।।
जाकि पूंजि वणिजिए ताहि पूठि नाहीं दीजै ।।
तासौ रहिए दीन होइ साईं द्रोह न कीजैं ।।४।।
साई द्रोह दुख आपकौं पीव मानैं नाहीं ।।
परसा कहिए कूण सौ सोचो जिय माही ।।५।।३३।।

राग रामगरी—

नरहरि यह संसौ मोहि आवै ।।
साहिव जो अंतर को नाहीं तौ हरि नर कहा कहावै ।।टेक।।
आदि रु अंत जोई एक ही दीसै सोई है मद्धि समाया ।।
करणी कथणी दोय करी राखी तैं यों का भर्म लगाया ।।१।।
दरिया अगम गम नाहीं तामैं काया कलस कहाई ।।
फूटो कलस भरचो जल कौ जल टरै न टारचो जाई ।।२।।
तू निह कर्म किन करिया किन धरसा घट माटी ।।
तू पड़दै राखि भूलाये कौ किन वांधि भरमि की टाटी ।।३।।
जो गुण धरचा तैं ही धरिया गुण मिटि नृगुण समावै ।।
एकमेक कछु समझि न परइ परसा रामहि गावै ।।४।।३४।।

राग रामगरी—

पलटि सि नां हो नाथ पलटिसि नां ।।
तुम करुणा सिंधु कृपाल कैसो ।।टेक।।
तुम हो दीना नाथ दयाल ।।
मोहि राखि राखि रछिपाल ।।

मेरी तौ तुम ही लगि दोर ॥
तुम विण कोई नाही और ॥१॥
मेरी सुणिये विषम पुकार ॥
हौं आतुर आवण की या वार ॥
प्रकट होवहू इहां आइ ॥
जोहू जीऊ दरस हूं पाइ ॥२॥
तू असरण सरण मुरारि ॥
मैं सरण गह्यो सुविचारि ॥
मैं अनाथ अरु वल हीण ॥
तुम समरथ सव लीण ॥३॥
तुम ही अंतर जामी जान ॥
तुम ने कछु नाहि न छान ॥
कहिये जुजिनि जावें नाही ॥
प्रभु तू तौ सव जाणें याहि ॥४॥
मैं जड़ जीव सदा अग्यान ॥
तुम्हारे वल कछु न जान ॥
यौं मैं कीयो अधिक अकाज ॥
तुम विन रहै न मोरी लाज ॥५॥
हूं भव संगि भ्रम्यौं मति हीण ॥
प्रभू तजि निर्मल निकुलीण ॥
परसराम कहै पाइ लागि ॥
भयो विमुख सु मोर अभागि ॥६॥३५॥

राग रामगरी—

श्री राम राम राम श्री राम लीजै ॥
रसुनां प्रेम पर्म रस पीजै ॥टेक॥

हरि सुमिरण सुमिरै सो निर्मल ।।
सास विमल जो पीवै पर्म जल ।।१।।
हरि कीरति जहां जात वखाणी ।।
परम पवित्र सुद्ध सोई वांणीं ।।२।।
हरि गरण सुनै श्रवणि सुख पावै ।।
जीव सदा सोई पवित्र कहावै ।।३।।
लोचन पवित्र जो रुप निहारै ।।
कर पवित्र हरि कै हित वारै ।।४।।
हृदय पवित्र होत हरि गाये ।।
सीस सुद्ध जौ हरि द्वार नवाये ।।५।।
तन मन प्राण पर्म पद पांए ।।
मनसा मति अवगति ल्यौं लांए ।।६।।
चरण पवित्र चलत हरि सनमुख ।।
करि हरि निमत नेम निरमल रुख ।।७।।
सकल सौंज हरि हित अर्पित जोई ।।
परसराम नखसिख पवित्र सोई ।।८।।३६।।

राग रामगरी—

कैसे हरि भजन ऐसे आणि वांणी ।।
कठिन ता जीव कौ पारु पैलौ भयौ
बीचहि वार महि और ठांणी ।।टेक।।
फंद माता पिता वंध कुल भाकसी
जगत पसु पौरि पट कारिण मांणी ।।
पगै लिया वेडी गलैं पुज वासी
जडयौ स्वाद संकलि पडयौ मोह खांणी ।।१।।

काम छल क्रोध बल लोभ घरण लौह
ज्यौं छीजयो ताइ तन जात हांणी ॥
कर्म जंजीर भर्म जाल परसा पर्‌यो
भगति ता विमुख छूटै न प्राणी ॥२॥३७॥

राग रामगरी—

को जाणैं इच्छा कला कौनं विस्तारा ॥
भेद न कंहू कूं कदे देत न हरि प्यारा ॥टेक॥
अपणी लीला सब करै अरु सवहि नितैं न्यारा ॥
करि कराइ करुणा मई आपण निरभारा ॥१॥
अपणी रुचि आनंद मैं विहरत वनंवारी ॥
जो संक न काहू की करै समरथ सुखकारी ॥२॥
नखसिख व्यापक सकल महि सवही की जानै ॥
प्रकट सकति देखै सुणै अरु सवहि तैं छानैं ॥३॥
आगम निगम अगोचरि हरि गति मति छानी ॥
पढि गुणि सुणि जु थकी रहै पंडित मुनि ग्यानी ॥४॥
रहै समीपं न पाइये यह अचिरज मोहि आवै ॥
परसराम प्रभू अंतरि वसै आपौ न दिखावै ॥५॥३८॥

राग रामगरी—

प्रीतम श्री गोपाल सौं मेरौं मंन मानैं ॥
चिंताहर सुखतर सदा अंतर की जानै ॥टेक॥
अंतर जामी अगम की सुगमी करि वूझै ॥
भूत भविष्यत वर्तमान जाकौ सब सूझै ॥१॥
देखि अणदेखि सुणि सव जातें नहीं छानैं ॥
गुण औगुण जाकैं जहां हरि सवै पिंछानै ॥२॥

सुमिरण सेवा वंदगी मानै जो करिये ॥
मनसा वाचा कर्मणा सुमर्यो भव तिरिये ॥३॥
निर्वाहै समरथ हरि जिनकौ गहि वांही ॥
दूरि करै दुख दोप कौं राखै सुख माहीं ॥४॥
हम सर्वस लै आपणं कीनू हरि सारै ॥
सु हरि थिर प्रसराम मनि वस्यो हमारै ॥५॥३६॥

राग गूजरी–

वैद न जाणैं मन की सूल ॥
दोषौ कछू कछू दै वौखद उठै सवाइ रूल ॥टेक॥
वहा सलिल सिल मैं वहि निकस्यो जो न भिदै अस्थूल ॥
विण भेधां न मिलै जल सौं जल अंतरि वज्र विफूल ॥१॥
ज्यौं चंदन अहि रहै एक संगि विष न तजै समतूल ॥
परसराम का कहै सुणैं सुख जो न गहै मनमूल ॥२॥१॥

राग गूजरी–

लोचन लोचत है ल्यौ लांएं ॥
हरि दरसन कारणि अति आतुर उतरि न फिरत फिरांएं ॥टेक॥
पूलभरि पलक न पलटत चितवन समझत नहीं समझाएं ॥
उझि उझि चलत जुगल जग परहरि हरि सनमुख सुख पाएं ॥१॥
उमगि उमगि मिलन कारण निस वासुर रहत सजल जलछाएं ॥
परसराम निर्भै रुचि मानत अपणैं पीव कै प्रेम समाएं ॥२॥२॥

राग गूजरी–

रसना राम नाम निज गाय ॥
आल जंजाल विषै रस तजि करि भजि भगवंत सहाय ॥टेक॥
धीरज वांधि परम गति चित दै घर तजि वन जिन जाय ।
अविगत नाथ जो देखि तन मन मैं तू ताहि देव सिर नाय ॥१॥

मन हरि सुख सेइ सरण जिन छीझै पीव सौं प्रीति लगाय ॥
परसराम प्रभु प्रेम पुंज रस सो प्रसाद नित पाय ॥२॥३॥

राग गूजरी–

भजन सूं कारे व्है हौ काटि ॥
कहा जनम पायो जो हार्‌यो ज्यौं सकली गर माटि ॥टेक॥
ज्यौं समसेर विनां सकलीगर मल सौं जोडै साटि ॥
ऐसें यो मन रहै कपट रत राम कहण की नाटि ॥१॥
भव बूझत मति हीण खसम विण ज्यौं गनिका तन हाटि ॥
अंत विमूचणि परसा प्रभु विण भागि न लिरको ललाटि ॥२॥४॥

राग सांरग–

हो मन मोहन होरी खेल ही, लिये संगि सखा वहू वृंद री ॥
वै प्रेम सरस विलसहीं गति मिलि सलिता सुख सिंधु री ॥टेक॥
जुवति जूथ चलि आवही पुर पुर तें खेलन फागु री ॥
सव हरि सन्मुख वृज सुंदरी मिलि गावै सारंग राग री ॥१॥
कनक कलस केसरि भरें लियें सौंज सकल भरि आर री ॥
आई हरि चरचन कारणें करि करि वहु विविधि सिंगार री ॥२॥
एक नैन निरखि सुख पावही मुख बोलत मीठे वोल री ॥
तन मन धन हरि कै वसि कर्‌यो चेरी हम हैं विन मोल री ॥३॥
एक पांय परै सिर नांव ही कर जोरि रहि हरि घेरि री ॥
पावै कव वहुर्‌यौं वावरी यो औसर ऐसी कहूं फेरि री ॥४॥
सव भरण भई हरि कारणैं लज्या वल बंधन तोरि री ॥
पीव कौं परमल पहिरावहि हरखि मन सौं मन जोरि री ॥५॥
कस्तूरी चौवा अगरजा सुमिल धसि अग्र कपूर सुवास री ॥
श्री खंड सुचदंन चरच ही पुरवत अपमन की आस री ॥६॥

ल्यावै वहु भरन न विरंब ही अति आतुर धरत न धीर री ॥
धावत अप वपु न संभार ही उतरत उर सिर तैं चीर री ॥७॥
चरचै निरसंक न संक ही ताकि डारत भरि भरि झाल री ॥
वरि खैं वहू कूं कूं कुम कुमा अति उड़त अवीर गुलाल री ॥८॥
रुति वरिखत भरण सघण भयो अंवर धर अरुण सुरंग री ॥
चरचे बहु भांति विराज हीं सव सोभित सुंदर अंग री ॥६॥
मिलि अरस परस चरच ही उमगें हरि आनंद रूप री ॥
ब्रम्ह सिव कौतिग देख हीं सव सुर पुर के भूप री ॥१०॥
मन सौं मन लाय विचार हीं जैसो सुख वरिखत हेरि री ॥
वाजैं मृदंग दुंदुभि वांसुरि सरमंडल महू वर भेरि री ॥११॥
सुणि सुणि धुनि जहां तहां नाचहीं नाना गति तानत रंग री ॥
वहु रुंझ झींझ डफ झालरी मिलि ताल तंति राग वहु रंग री ॥१२॥
हसि गावै गारी सुहावनी अति सुंदर सवद रसाल री ॥
सुनि श्रुति मंडल सुख पावही हरि मंगल दीनदयाल री ॥१३॥
अपणां अवरणां सुख पेरव ही प्रीतम हरि कै संग लागि री ॥
जे गावैं सुणैं दरसन पावैं तिन तिन कौ है वड भाग री ॥१४॥
हरि सुख सिंधु ओतिर भयो सव भूलत मिलि निरसंस री ॥
परसराम प्रभू संगि रंगे निति केल करत निज हंस री ॥१५॥१॥

राग सारंग-

मन मोहन मन मेरो भूमि कैं लागैं सुन्दर सेव लाल हो ॥
पार ब्रम्ह प्रीतम भयो अविगत अलख अभंव लाल हो ॥टेक॥
अकल सकल पति कैसवे जीव की जीवनि प्राण लाल हो ॥
हरि हरि हरि अंतरि गह्यो परम सनेही जाणि लाल हो ॥१॥
हरि राग रहित चित वस्यो हृदैं सुथिर करि ग्रेह लाल हो ॥
अव न चलैं निहचल भयो उपज्यो अधिक सनेह लाल हो ॥२॥

ग्रौर कहूं विरवै नहीं मन तुम विन रह्यो न जाय लाल हो ।।
ग्रव न तजौं भजि संगि रहौं चरण सरण ल्यौ लाय लाल हो।।३।।
जोइ सुख सरणै पाइयें सो सुख ग्रनतै नाहीं लाल हो ।।
निमख न न्यारो सहि सकौं राखि रहूं मिलि मांहि लाल हो ।।४।।
मन मंदिर मैं लै धर्‌यो वांधि वांधि प्रेम की डोरी लाल हो ।।
जाइ कहां जो ग्रव वसि कर्‌यो लोक वेद भ्रम तोरि लाल हो ।।५।।
महा सरस सुग्रमृत झरै प्रेम पुंज की धार लाल हो ।।
परसा रस विलसै सखी पति संगति कौ हार लाल हो ।।६।।२।।

राग सारंग–

मन मोहन मन हर लीयो घर वन कछु न सुहाय हो ।।
देखि चरित चित थकि रह्यो हरि तजि ग्रनत न जाय हो ।।टेक।।
लोक वेद विधि वीसरि करम भर्म व्यौहारो हो ।।
सो चितवनि चित ही रहै देर को दिष्टि ग्रापरो हो ।।१।।
चरण कवल भजि भै मिटचो पायो निर्भै साथ हो ।।
जीवन जनम सफल भयो ग्रवगति नाथ हो ।।२।।
ग्रादि ग्रंति परिमिति नहीं पूरो पर्म दयाल हो ।।
तासंगति मैली भयो ग्रव भागे ग्रंतरि साल हो ।।३।।
इतवत तैं न्यारो रहै सहज सुन्नि मैं वास हो ।।
परसा तन मन भेंट दै तहां विलंवै दास हो ।।४।।३।।

राग सारंग

रहि न सकौं पीय तो विनां मेरे प्रीतम हो प्राणन के नाथ ।।
स्याम सनेही सुनि सांच कहूं भावत है मोहि तेरो साथ ।।टेक।।
तन मन तेरे वसि भयो निमख न होई चरणन तैं दूरि ।।
ता विछुर्‌यां क्यौं जीयवौ जै विन देख्यां दुख मरै विसूरि ।।१।।

संग विछुर्यौ पीव वौं कव मिलै ता दुख तें हम खरै उदास ॥
मेरो प्रीतम प्रीति न बूझई जीवै क्यौं विरहनि विन श्रास ॥२॥
सुनि साच कहूं मन मोहना मोहन हो तें मोहै सब साथ ॥
सिव विरंचि सुर मुनिजना गण गंधर्व मोहै नव नाथ ॥३॥
राखि सरणि सुमिरण करौं हौं प्रेम सरस पीऊं ल्यौ लाय ॥
मेरी या प्रीति पीव विचारिये प्रसराम प्रभु करो सहाय ॥४॥४॥

राग सारंग—

सुणि प्रीतम तुमसौं कहौं तें मोह्यो मन मेरौ हो मोहन ॥टेक॥
ज्यौं चात्रग चिति रुति वसै यौं उरि धरि सुमिरैं हो मोहन ॥
लग्यौ सनेह सदा रहै सो नाहिंन विसरत हो मोहन ॥१॥
नाद लीन मृग ज्यौं आपरणपौं सूंपि दयौ सवहि हो मोहन ॥
यौ हमरौ मन ता तन कौं लिये मोह्यो जात जहीं हो मोहन ॥२॥
ज्यौं मधुरिख मधु कारणै सर्वस सौपि दियो हो मोहन ॥
यौं रसिया रस सौं रस्यौ मन दै मोलि लयो हो मोहन ॥३॥
ज्यौं अलि कुसुम सुवास सौ वेध्यो लागि भजत हो मोहन ॥
यौं मन लोभी रस लेन कूं चर्ण कमल न तजै हो मोहन ॥४॥
मोह तुमारो लागनूं जिनि मोह्यौं मोह हमारो हो मोहन ॥
जो जाय मिल्यौ सुतहीं रह्यो सो न रह्यो न्यारो हो मोहन ॥५॥
ज्यौं नैन नंद अभै भयो मिलि निधि नहीं रह्यो हो मोहन ॥
उलटि अपूठौ सिंधु तें सौं सलिता न वह्यो हो मोहन ॥६॥
ज्यौं जलहि जीवनि मीन कैं उपज्यै वसै नहीं हो मोहन ॥
यौं हमारे हरि जल विनां जीवनि और नहीं हो मोहन ॥७॥
ज्यौं तरंग जलधि कौं जल यौं हम तुम सूं मिलै हो मोहन ॥
दो सरीर मन एकै अव और न कहीं मिलत हो मोहन ॥८॥

मन सुख सिंधु सुमिलि रहै रस अमृत पीवै हो मोहन ॥
जहां प्रेम पलटि ना जाणै तहां परसा जन जीवै हो मोहन ॥६॥५॥

राग सारंग-

हरि भजिये मन हेत सों हरि भजि तजिये और रे ॥
सब तजि हरि भजिबो भलो हरि हरण सकल दुख रौर रे ॥टेक॥
हरि सुख बिन सुख और जो कहिए मन ऊपर की दौर रे ॥
और कही कछू वै करि कामना यह सकल काल कौ कौर रे ॥१॥
हरि पावक बिन को दहै सब कलि जुग के कर्म कठोर रे ॥
भव तारण चिंता हरण इहां हरि बिन कोई नाहिंन और रे ॥२॥
कछु हरि सुमिरण विण जो कर्यो सोई मिथ्या जग भौर रे ॥
हरि बडो धर्म मन जो वरै व्रत स्याम सकल सिरमौर रे ॥३॥
हरि सौं दृढ़ करि लीजै प्रीति ज्यौं चंदा सों करत चकोर रे ॥
सोई करुणा सिंधु संभारिये नर हरि कैसो कृष्ण किसोर रे ॥४॥
अति सुंदर स्याम रूप अनुपम पद सेवग संगि गौर रे ॥
प्रीति कीयां सौं हरि प्रीतमा उर तैं नहीं टरत चितचोर रे ॥५॥
हरी दीपग जहि हिरदै वस्यो दुरिगयो तिमिर भयो भोर रे ॥
सोई परसा प्रभु न विसारिये हरि पर्म संजीवनि ठौर रे ॥६॥६॥

राग सारंग-

वन फूले अति सोभ हीं आयो री सखि मास वसंत ॥
नाना रंग वास नवी नवी नव नव तर नव पल्लव विगसंत ॥टेक॥
नव नव सुर कोकिल बोलही गुंजित अति मधुकर मैमंत ॥
पंखि बहु वाणी चवैं गुणगण नव नव गावत सुर संत ॥१॥
नव नव किसलै दल बीनहीं नव नागरिकर भरि बरिखंत ॥
नव नव संगति नव नेह सौं नव नागर नवरस विलसंत ॥२॥

रति नाइक सति विहरहीं राजित अति तामैं हरि कंत ।।
परसराम प्रभु भजि लीजै हरि सुख सब सोभा को अंत ।।३।।७।।

राग सारंग–

मन मोहन सौं मिलि रह्यो सखि सो तो न्यारो न रहाय री ।।
हरि रति सोहि मानैं नहीं तू तौ रही मनाय मनाय री ।।टेक।।
हरि मिलि पलटि गयो मन मोतैं कछू तासौं न वसाय री ।।
मनि हरि मिलि गयो तो सार्‍यो नहीं मोही कौं लेत बुलाय री ।।१।।
वहु उपाय करि थकि अवल मैं रही वहुत समझाय री ।।
हरि प्रीतम पायो जिन सजनि सो मन मोही न पत्याय री ।।२।।
जवहि नैंक पलक मिलि ऊंघरी मोहि मिलत हरि आय री ।।
विलस्यो प्रगट पर्म रस वसि करि सो सुख कह्यो न जाय री ।।३।।
कहा कहूं कछु कहत न आवै सागति वहुत वनाय री ।।
पिय मिलवै की रीति प्रीति करि अव कासौं कहूं सुनाय री ।।४।।
हूं सोवत जागि उठि सपनौं लै अति आतुर अकुलाय री ।।
रही न सकौं इतउत व्याकुल तन मन गयो सिराय री ।।५।।
हरि सौं भुज भरी मिलि निरंतरि सानिधि उरि न समाय री ।।
प्रगट अधर उर छाप सुकर की सौं तन तैं न दुराय री ।।६।।
मिलणि वसी उरि मिलि जु करि हरि मन सौं मन लाय री ।।
तनु तापति की प्रीति रही भरि परतन वीचि विराय री ।।७।।
जाकौं प्रान वसैं जामांहि सो ताहि न कवहूं विसराय री ।।
हरि जीवनि जल हीन होय सो क्यौ न मेरे पछिताय री ।।८।।
प्रेम सिंधु सुख मूल समंगल सो कवहूं न भुलाय री ।।
हूं कहा कंसैं कैसे रहू मोहि ता विन रह्यो न जाय री ।।९।।
पीव सौं प्रगट मिलन आरति करि लीनि रुचि उपजाय री ।।
ठाडी निंकसि भुवन वाहरि नवसत सिगार वनाय री ।।१०।।

वोलि लई सव सखी सूं मिलि गुण गावत न लजाय री ॥
निकसि चली वृखभान पुरै तैं नद गांव दिसि जाय री ॥११॥
चाहती पथ तरल तर तैं तर चढ़ि आपन हरि राय री ॥
पठ्यो देखि सखा सनमुख॰ पति ताडत पत्र लिखाय री ॥१२॥
उमगि अति आनंद कंद जब सुनि पाये स्याम सहाय री ॥
हरि गावत बैन बजावत मिलै जहां चरावत गाय री ॥१३॥
वूझि लई निकैं करि कैं तब हरि ब्यौरे सौ बिगताय री ॥
अति सुगौर सुन्दर सखियन मैं राधा नाम कहाय री ॥१४॥
कृष्ण दरस परसत मनि मंगल पाय परत सिरि नाय री ॥
हरि अंतर तजि मिलत अंक भरि लीनि उरि लपटाय री ॥१५॥
भयो सखि सुख सिंधु समागम प्रगट प्रेम कै भाय री ॥
जुगल हंस निजराज जोड़ि परि परसा जन बलि जाय री ॥१६॥८॥

राग सारंग–

मन मान्यौ री मोहन लाल सौ मोहि विसरि गई गति और री ॥
कमल नैननि वस्यो हरि नागर हृदै नवल किसोर री ॥टेक॥
नैन मिलत मन मिल्यो सुमन सो पायो प्रेम निवास री ॥
सो रंगि रंग्यो सुरंग स्याम सौ लग्यो प्रीति को पास री ॥१॥
अलप जीव कै ज्यौं जल जीवनि रहत सदा ल्यौ लीन री ॥
यौ जीवत सुख सिंधु सुमिलि हम मरत हरि जलहीन री ॥२॥
हूं तौ तोसूं साच कहत हूं तुहू कित चलि उठि रिसाय री ॥
हरि प्रीतम चित्तचौरि सबनिकौ सौ तै लियो अपनाय री ॥३॥
तेरो कह्यो रह्यो तौहि पै मोहि कहा कहि विगारै वोलि री ॥
धरि राखो जहां हु तौ तहां ही कहावै जौ फिरि डोलि री ॥४॥

मैं कीयो जाकैं वसि तन ताहि सखि मन दै लीयो मोलि री ॥
वांध्यो गांठि खरौ करि सजनि सौं क्यौ डारि तिहूं खोलि री ॥५॥
हूं भजि हूं री हरि तजि हूं नहिं हरि सुंदर दीन दयाल री ॥
हूं दरसी परसी जा वसि भई मन मोहन मदन गोपाल री ॥६॥
हूं निमख न न्यारो सह सकूं तन मन मैं रह्यो समाय री ॥
अब कोई कैसेहि कहो मोहि तो ता विन रह्यो न जाय री ॥७॥
अंतर तजि आरति करि हरि सौं जिनि वांध्यौ निति नेम री ॥
परसा पर्म हितू प्रभु सब कौं पैं वसि ताकै जाकै प्रेम री ॥८॥६॥

राग सारंग–

कोई न रहै थिर हरि बिना धर्‍यो सकल मिटि जाय हो ॥
तातैं नर कछू निह कर्म होई भजिये राम सहाय हो ॥टेक॥
ब्रम्हा बहु तन गिणि सकौं संकर अधिक अपारौ रे ॥
इन्द्रादिक सुर नर हूंते तेंऊ गये आस असारौ रे ॥१॥
सेस गणेसन को गिणैं सके पवन आदि बड देवौ रे ॥
को जाणैं केते गये अविचल अलख अभैं अषा वोरे रे ॥२॥
जलसर मेघ असंखि घण वरखिये कै जामांहे रे ॥
हरि दरिया सुभर भर्‍यो अकल सुकल्यौ न जाय रे ॥३॥
रवि तारा ससि तेज मैं धर अमर फल फूलो रे ॥
जग पल्लव अगिणत गहे रह्यो सुराधो मूलो रे ॥४॥
गिगनि भुवन भ्रमि ठहि परे कोई न लहै उनमानो रे ॥
सकल विस्व अलटै पलटै मिटै अजु सु जोगि ध्यानो रे ॥५॥
अगम निगम सुगण सबै विणसै घट विश्रामो रे ॥
अविनासी थिर केसवा परसराम प्रभु रामो

राग सारंग-

मनुवा मन मोहन गाय रे ।।
अति आतुरत होइ कै हरि हरि सुमरि सुमरि सुख पाइ रे ।।टेक।।
हरि सुख सिंधु भजन भँजतां सुणि सब दुख दोस दुराय रे ।।
यौं औसर फिरि मिलै न मिलिहै अब तो भजि लीजै हरिराय रे ।।१।।
हरि पतित पतित पावन करि कै जमपुर तें लेत बुलाय रे ।।
यह साखि समझ सुणि चित करि भजि मन विरमन लाय रे ।।२।।
करि आरति हित सौं हरि सनमुख जो सक्यो न सीस नवाय रे ।।
तो जनमि जनमि जम द्वारि निआदर वारौं बार निकाय रे ।।३।।
अति सकट बूडत भौ जल मैं अति न और सहाय रे ।।
तिहि औसरि हरि पर्म हितू विन को राखै अपनाय रे ।।४।।
जग पंडित भुवपाल छत्रपति हरि विन गये खिसाय रे ।।
अति बलवंत न बदत और कौं काल सबन कौं खाय रे ।।५।।
पायो नर औतार विगार्यो मुगध कहा कीयो यहां आय रे ।।
करि न सक्यो हरि विणज अचेतनि चाल्यो जनम ठगाय रे ।।६।।
हरि सेवा सुमिरण विन जाकौं तन मन बादि विलाय रै ।।
परसराम प्रभु विन नर निरफल वहि गयो वस्त गंवाय रे ।।७।।११।।

राग सारंग-

तु हू मन गोविंद गुण गाय रे ।।
गोविंद गुण गायां विण प्राणी जनम अकारथ जाय रे ।।टेक।।
गोविंद ग्यान ध्यान करि अंतर व्रत धरि सुमरि सुनाय रे ।।
हरि सुमरन वैंकुठ प्रगट सुख तजि जमपुर को जाय रे ।।१।।
जग मगल पद हरि जीवन जस भजि अघ तिमिर विलाय रे ।।
प्रगट प्रकास करण करुणा मय सोई उरि आनि वसाय रे ।।२।।

देखि प्रगट संसार स्वाद सुख मन तन उनतैं न डुलाय रे ।।
पर हरि और भर्म निरफल चित चरन कमल सौं लाय रे ।।३।।
सुणि गुर सवद सदा सुकृत फल तोहि कहूं समझाय रे ।।
हरि दुखहरण सकल सुखदायक तुहू ताकूं न भुलाय रे ।।४।।
हरि मारग चालत सव काहू की हारि न कहनी जाय रे ।।
मन मद अंध भरै मैं रीतौ जिनि जाहि जगत हसाय रे ।।५।।
कहिये कहा वहुत करि मन हठ जो नखसिख वात वनाय रे ।।
रुचि विण हरि सु अमृत फीकों परसा जोई पीजै सुभाय रे ।।६।।१२।।

राग सारंग—

तुहू मन हरि नांव संभारि रे ।।
निस वासुर एक तार अविसर उरिधरि पल न विसारि रे ।।टेक।।
मन मेटहि जिन कह्यो हमारौ मानि करुं मनहारि रे ।।
हरि सुमिरण बिन वादि जहां तहां पायो जन मन हारि रे ।।१।।
कहत कहतहि अंध आप वलि जिनि जाहि वात विगारि रे ।।
पायो नर औतार सुफल करि हरि भजि लेहु सुधारि रे ।।२।।
सोइ करि आरंभ सुकर तें पासा ज्यौं जाणौं त्यौं डारि रे ।।
यौं तजि भवसिंधु विचारि खेलि हारै जिनि जिति सारि रे ।।३।।
और विडाणि बात दूरि करि तुहू आपणी आप विचारि रे ।।
अंतहि जहां कहूं होय वसेरो तुहू सोई ठौर संवारि रे ।।४।।
अव सीखि सुणि कहि इत उत की वात बहुत विस्तारि रे ।।
परसराम प्रभु बिन सव निर्फल तजि हरि व्रत धारि रे ।।५।।१३।।

राग सारंग—

तुहू हरि प्रीतम करि मानि रे ।।
जिनि दीनो तन मन प्राण दान तोही सुहरि सति करि जानि रे ।।टेक।।

जिनि हरि रचि तोहि बनायो तूहू अब तासौं वाणिक वाणि रे ।।
हरि तोहि न विसारत तूहू विसरत तजि कठिन कुवांणी रे ।।१।।
चरण चिहुर कर नासि नैन मुख श्रवण सास सिर ठाणी रे ।।
सब नखसिख साँज संवारि साजि करि तोहि दई हरि दानि रे ।।२।।
जिनि जल देवल सौं धर्यो विधाता तुहु मानि तही सह नाणि रे ।।
परम उपगारी आतम गुणदाता तासौं तोडि न अब ताणि रे ।।३।।
चिंता हरण सकल भै टारन बांधन सिंधु पखाणि रे ।।
रक्ष्या करण सदा हरि सम्रथ जन हित सारंग पाणि रे ।।४।।
कर्म भर्म जग आसा पास परहरि हरि धर्म पिछांणि रे ।।
हरि सुमरण विनि जो कछु करिये है सोई वड़ हाणि रे ।।५।।
हरि सेवा सुमरण करि व्रत धरि हंसि हरि नाम वखाणि रे ।।
करि हरि प्रेम नेम नेहचौ धरि ज्यौं थिर नीर निवांणि रे ।।६।।
करि बंदगी सुमरि सनमुख रहि भगति भाव मैं आणि रे ।।
परसराम प्रभु कूं भजि मन दे तजि संसा कुल काणि रे ।।७।।१४।।

राग सारंग—

हो सुणि वृजराज राग सारंग सुरि गावत गुण व्रजनारी ।।
अति सनेह आरति हरि उरि धरि रहि न सकत पल न्यारी ।।टेक।।
श्याम समागम भयो जहां तहां सोई सोई लै उरधारी ।।
करत प्रीति की वात प्रगट सब सुणि लागत अति प्यारी ।।१।।
सब वोलि लई हरि निकटि आप दिसि मेटि मुरारी ।।
ग वत सरस सुकंठ सुमिल सुक रीझत वरु बनवारी ।।२।।
वणि विविध सोभा हू तें सोभा तरुण विरधवै वारी ।।
पावत प्रेम परम रस अमृत प्यास विरह की जारी ।।३।।

मगन भई नाचत चाचरि गति भ्रमि दै दै कर तारी ।।
हसि हसि आप हंसावति औरनि देत परसपर गारी ।।४।।
प्रभु भजि वधू विलास विवसि भयो मन हरि रत त्रिपुरारी ।।
हरि सुख सिधु भयो सुमंगल परसा सखी सलिता उन हारी ।।५।।१५।।

राग सारंग-

मन मोहन मन मैं वसि रह्यो सखि दिष्टि अचानक आयरी ।।
सोई हरि सुमन विवसि भयो भावत अब कैसैं करि जायरी ।।टेक।।
अब छूटत नही जनमि जो लागो पूरि करारो रग री ।।
पलु पलु प्रीति नई नागर सौं अब न होई रसभग री ।।१।।
सो कैसे विसरत है सजननि जापति सौं पणु प्रेम री ।।
अब न तजों भजि हों वरिव्रत धरि मैं वांध्यो नित नेम री ।।२।।
चितवत प्रगट भयो चित ही मैं चितामणि चितचोर री ।।
ताकौ रूप नाम गुण गावत कछु चीति न आवत और री ।।३।।
जीवनि जनम सफल सुख विलसत हम जीवत हरि लाग री ।।
परसराम प्रभु सौं सदा समागम रहै सोई है वड भाग री ।।४।।१६।।

राग सारंग-

कांन्हर फेरी कही जु कहि तव ती की मेरी संस रे ।।
सोवत जागि जसोदा उठि सुनि सुत सवद न ऊंस रे ।।टेक।।
लछिमन वाण धनुष दै मेरे मोहि जुद्ध की हूंस रे ।।
सिया साल कौ सहै सदा दुख करिहू असुर विधूस रे ।।१।।
प्रगटि आय जोद्ध विद्यावल सुमन सिधु सारौ सरे ।।
परसराम प्रभ उमगि उठै हरि लीने हाथि हथूस रे ।।२।।१७।।

राग सारंग-

राम न विसरौ मैं धन पायो ।।
जाकी साखी प्रगट धू दीसै वेद वदत गुर साच बतायो ।।टेक।।

सिव विरंचि सनकादि स्वाद रत सेस सहस सुमरित न अघायो ।।
सुर नर मुनि सक्रादि सु अमत नारदादि अचवत मन भायो ।।१।।
उधौ विद अक्रूर उग्रसेन जनभीरवमि भज्यो व्यास सुक गायो ।।
अवरीष प्रहलाद वभीषण पन्डु सुवन वसुदेव वसि आयो ।।२।।
नांऊ जाट चमार जुलाहो छीपें हूं निज निसांण, वजायो ।।
जै देव सूर परमानन्द पीपा उनहूं सुणि सीख्यो रु सिखायो ।।३।।
और भगत सवहि हरि सुमरिन कारणभूतादि आपैं यह जायो ।।
परसराम प्रभु साखि उजागर सुणत मुदित मेरो प्राण पत्यायो ।।४।।१८।।

राग सारंग–

मैं मन लै करि कै वसि कीनौ ।।
साध्यो जात न मोपें पल भरि पाय लागि ताहि कौ दीनौं ।।टेक।।
कहा करौ जो मेरे वसि नाहिं मिश्री हूं मैं जातन पीनों ।।
सौंपि दयो ताको ताहि कूं आलि भालि अपणौं हरि लीनों ।।१।।
वहुत जतन करि करि मैं देख्यो निकसि जात आतुर अति भानों ।।
जिन हरि मोहि दयो ऐसो करि रहत सदा ताहि सूं ल्यौ लीनों ।।२।।
हूं अव न तजत अस्थिर घर पायो छाडि वस्यो पूरैं पंखि हीनौं ।।
परसराम प्रभु सौ मिलि सजनि मोहि न मिलत हरि कै रंगि भीनौं ।।३।।१९।।

राग सारंग–

(सखी) हरि प्रीतम अपणौ करि लीजै ।।
सखी सर्वस हरि कौं लै दीजै ।।टेक।।
साच सनेह कीयां हरि धीजै ।।
कपट कीयां कवहु न पतीजै ।।१।।
तन मन धन हरि वसि कीजै ।।
परसा हरि अमृत रस पीजै ।।२।।२०।।

राग सारंग-

हरि हरि भजिए कोई सफल घरी ॥
निरफल और सकल दिन देही जु विषै विकारी भरी ॥टेक॥
निरफल नर औतार निर्बीज जिन हरि टेक टरी ॥
जीवन जनम अकारथ हरि बिनि वादहि देह धरी ॥१॥
भूलि परै हरि पुर मारग तै जमपुर जात वरी ॥
भजि न सक्यो त्रिभुवन व्रत धारी गरज न कछु सरी ॥२॥
सखी निगम गावत गज गनिका जु भव तिरि पार परी ॥
परसा पति पतितन कौं तारक पावन नांव हरी ॥३॥२१॥

राग सारंग-

यह हरि हम सौ किन कही खरी ॥
तैं कीनौं तिसकार हमारो सुकहा हम तैं बिगरी ॥टेक॥
क्यौं भोजन मिष्ठान अभाये अणरुचि आणि अरी ॥
खायो जाय आद कैसैं गुसो कारणि कौन हरी ॥१॥
भोजन भलो भाय क्यौं करी लागै जाकैं आपदा परी ॥
तेरै प्रीति न विपति हमारै यौं रहि रसोई धरी ॥२॥
हम राज भूपाल छत्रपति तुम गोपाल घरी ॥
हम तुम साख न कछू सगाई मींठ न सींव सरी ॥३॥
मोहि तैं उपजै सब मेरी वै हरि कछू वै न करी ॥
अंत असमझि कहत कित ऐसी अति अभिमान भरी ॥४॥
तेरो कहा विभो सब मेरो मोहि लेत न लगत घरी ॥
अरु देत न कछु विरंब सकल कौं होत न पलक भरी ॥५॥
श्री मुख वचन सुनत अरि ऐसे नखसिख अगनि जरी ॥
परसराम प्रभु कौं दरसि दुष्ट की दिष्टि न कदे ठरी ॥६॥२२॥

राग सारंग–

गोरधन गोपाल ही प्यारो ॥
जामैं गोधन चरत सुरवारो ॥टेक॥
बाल केलि लीला मन भावै ॥
गिरमंडल गोधन बगरावै ॥१॥
घोख सैल नंद पैं जु पूजावै ॥
इंद्र विदोसी पाक हरि पावै ॥२॥
नाना फल पकवान अलेखैं ॥
अनत पाणी जीमैं सब देखै ॥३॥
इंद्र कोपी बरस्यो जल धारा ॥
सो अचवन कीनों नन्द कुमारा ॥४॥
गिरवर धर हरि मुरली सुरि धार्‌यो ॥
व्रजनाइक बल व्रजहिं दिखार्‌यो ॥५॥
अमर नाथ हार्‌यो अविचारि ॥
जीते हरि गोवरधन धारि ॥६॥
सुरपति लै सुरभि व्रज आयो ॥
दीन भयो चरणन लपटायो ॥७॥
व्रजवासी हरखैं सुख पावैं ॥
पाई परैं हरि कौ सिर नावैं ॥८॥
व्रजमंगल सब कौ सुख दाता ॥
परसा प्रभु धाता कौ विधाता ॥९॥२३॥

राग सारंग–

उदित भये रघुकुल वैं राम ॥
जाणि सही सविता निसि कारणि व्रम्ह अगम सारण सुर काम ॥टेक॥

सिव सेवा कीयां को जो फल सो फल तुम कौं हूं अबहि दिखाऊं ।।
मारि असुर सघरि पलक मैं सिव कारणि सिर भेट पठाऊं ।।२।।
ये दस सीस वीस भुज अबहिं हौं खड खंड करि प्रेत पकाऊ ।।
रावण असुर समस्त आदि दै भोजन अलप त्रिपति नहीं पाऊ ।।३।।
यौं दरिया करि मंजन करि हूं अचवन कौं जल और मगाऊं ।।
तौं त्रिखान जाय पर्म जीवनि विनि सिंधु अगिणयक सास सुकाऊ ।।४।।
राखति हूं रघुपति कें कारणि वातैं हूं असुरण न तोहि सताऊं ।।
यौं जु कह्यो हति हूं कर अपणैं सो तागति की हूं पैंज निभाऊं ।।५।।
वीरा रिण संग्राम करण रुचि मोहि कह्यो चलि हूं यह आऊं ।।
परसराम प्रभु राम सुमंगल देखि प्रकट पौरिष जब गाऊं ।।६।।२९।।

राग सारंग–

देखि यह मोहि अचिरज आवै ।।
जाकौं नाम अतिरगिण तारण सु महासिंधु करि सिंधु बन्धावै ।।टेक।।
जाकि सकति जगपति जग जीतै जगत जीव बलि सो न बन्धावै ।।
जाकै काजि आजि ब्रम्हकपि दल बल बीरा रिण मांझ सूर कहावै ।।१।।
प्रलै कालि निजरूप परमापति महावीर बीरा रस भावै ।।
रामचन्द्र रिण रमित विराजित कर गहि बाण दसौं दिस धावै ।।२।।
सवै सुभट्ट भै कम्पनि पौरिष महाकाल की झाल दिखावै ।।
झपटत लपट असुर वन दाझत सुर्ग समान पतंग गिरावै ।।३।।
महा मृगराज नमैं दूरि चित दैनि जग जरा जन चींटि चावै ।।
जो पर्म हंस विलसत मुगताफल ताकौं भोजन कीट न भावै ।।४।।
जाकै अर्थ पलक ब्रम्ह बहु बीते ताकौं क्रोध नृपति कहा पावै ।।
परसराम रघुनाथ हित सौं सति सुदरद निसास सुणावै ।।५।।३०।।

राग सारंग–

हो कपि आयो तो मोहि भायो ।।
जो प्राणनि कै प्राण सनेही वै जो कह्यो वतावो ।।टेक।।

प्रथम समादि कहो तापति की आन निसास दुरावो ॥
है आरोग अखिल के नायक सो सुख श्रवनि सुनावो ॥१॥
सिंधु विछुरि सलिता सुख नाहीं रवि मारथ कौ मावो ॥
देखत जाय विलाय वादि ही वहुरि न होत मिलावो ॥२॥
सुख न कहूं विरण सररिण सदा निसि देखि न तुम सुख पावौ ॥
सुनि वनचर वर विपति कंत विनि मरत सुरति समझावो ॥३॥
जात घट्यो न प्राण दरस विनि यहै वहुत पछितावो ॥
परसराम रघुपति विन जीवनि धृग सोई जनम कहावो ॥४॥३१॥

राग सारंग—

हो कपि रघुपति मोहि मिलावो ॥
प्रगट सरूप संजीवनि मेरी संगि करि कै लै आवो ॥टेक॥
लोचन है संग्राम दरस कौ अव जनि विरंव लगावो ॥
आसुर पति अगरण समारि सोहि तो वीरा रसहि जिमावो ॥१॥
अमर अधीर असुर संकट तैं आतुर आय छुडावो ॥
यौ दुख दरद संदेसो परसा पति कौ जाय सुनावो ॥२॥३२॥

राग सारंग—

अव जननि जग जीवन ल्याऊं ॥
विलम न करौ निमस मोहि आरति सो आग्या जो पाऊं ॥टेक॥
हूं सही न सकूं दुख दरद तुम्हारो सव संघारि दुराऊं ॥
असुर अपुर रघुनाथ कृपा तैं लै जम लोक पठाऊं ॥१॥
ईस जगईस सुरेसुर कै पुर करि सोई कथा सुणाऊं ॥
डरपति हूं अपजस सिर पर धरि कालै वदन दिखाऊं ॥२॥
कितयक संक निसाचर निसि की अव रवि राम बुलाऊं ॥
वाण किरणि की अगनि प्रगट करि असुर पतंग जराऊं ॥३॥

तुम देखत रघुपति कै कर सों बंदै सीस गिराऊं ।।
भुजा उपारि पछारि धरणी परि कपि चौगान खिलाऊं ।।४।।
प्रगट करुं निज रूप महाबल तौ आगै सिर नाऊं ।।
परसराम रघुपति रिण राजित देखि पर्म सुख पाऊं ।।५।।३३।।

राग सारंग–

अब माता मन जनिहि हुलावो ।।
धीरज धरौ भजो सोई सति करि पति चित्त तै न भुलावो ।।टेक।।
बिछुरण विरह वियोग सुरति धरि अब तन कौ न जरावो ।।
सोई दुख हरण करण कारण प्रभु सुमरि सुमरि सुख पावो ।।१।।
अब एक निसासे सहै को तेरो त्रिभुवन प्रलै पठावो ।।
कितियक सक असुर दस सिर की करि जो वरत लजावो ।।२।।
जाकै पति रघुनाथ महाबल ताहि कहा पछितावो ।।
परसराम प्रभु प्रगट करो अब मॉगौ आइ बधावौ ।।३।।३४।।

राग सारंग–

अजहूं न तजत असुर असुराई ।।
राम सधीर देखि रिण राजित अमर सुमंगल करत बधाई ।।टेक।।
महाकाल तरु वीरा रसफल दीसत ज्यौ दरपन मै झांईं ।।
देखि चरित भै कंप असुर पुर ज्यौ रवि किरण राहु की छांईं ।।१।।
प्रगट अगनि रघुनाथ उजागर जिनि पावक बहु लंक जराईं ।।
परत पतंग अगिण रावण उड़ि दाझत दुष्ट तूल की नाईं ।।२।।
महा मूढ अग्यान अंध पतित अनचेत्यो जोइ सिर खाई ।।
करि तातौ अति तेल सुरति छिन जाणि सुभुजंग हते समि वांई ।।३।।
सो न भजै निभै पद पहिलि जिनि सिव की सकति अगिण वौराई ।।
परसराम तासौं मन तेडौ जा प्रभु विन और नही ठौर कहांई ।।४।।३५।।

राग सारंग–

राजित राजिव लोचन राम ।।
लीये हर धनुष वाण टेरत हेरत समझि सकाम ।।टेक।।
ठाढ़े रिण रघुवीर धीर वर अति सोभित सब सुखधाम ।।
पावत दरस प्रगट असुरासुर हरि अचिरज अभिराम ।।१।।
जैसी जाकी मन आसा तैसो ताकी प्रभु अकाल सु मंगलनाम ।।
परसराम रघुपति चरित्र भव पारि करण गुन ग्राम ।।२।।३६।।

राग सारंग–

कंत कृपावल कहत न आवै ।।
प्रगट दरस रघुनाथ समागम हृदै उसास न उलटि समावै ।।टेक।।
धनि यह देस राज रावण धनि जा ऊपरि आपण चढ़ आवै ।।
धनि इह भौमि चरण धरै जांपरि ब्रम्ह अगम कपि सैन खिलावै ।।१।।
धनि यह सति अमर यहां आवै जाकैं हित रघुपति रिण धावै ।।
वीरा रिस रुचि खण वाण विधि पौरिष पोपि भुजा सचु पावै ।।२।।
धनि यह वपु धर्‌यो आजु मुकल भयो हरि देखै जाहि दरस दिखावै ।।
धनि यह ग्रह गढ़ गांव असुरपुर सकल जामैं राम दुहाइ धावै ।।३।।
सुनि वधू वचन मुदित भये रघुपति मांगि मांगि वर जो तोहि भावै ।।
कहत अमर करू योही रावण राज वहुरि अयोद्धा अटल वसावै ।।४।।
या गति सुगति यहै वर दीजै असुर न होय अरु सुरनि संतावै ।।
परसा राम प्रभु वीरा रस जस सोई पति जाय परम पुरि गावै ।।५।।३७।।

राग सारंग–

तवहि सब आनन्द हमारै ।।
जवहि रामचन्द्र चिंतामणी वन कौ तजि निज भुवनि पधारै ।।टेक।।

जाकी हम पाटि पावडी पूजें सोई पति जो निज वदन दिखारें ।।
छाडि गुमान प्राणधन अपणां लै रघुनाथ रुप परि वारें ।।१।।
लै सब राज पाट सिंघासन रघुपति बैठि छत्र सिरधारै ।।
आगें सुभट भूप वंदीजन ठाढे निकट चंवर कर ढारें ।।२।।
वंदहि ईस जगदीस सुरेसुर देव गण जु आरति उतारें ।।
घूरै सरस निसाणं सुमंगल जै जै धुनि सुनि निगम उचारै ।।३।।
उज्जल प्रेम पुर मंडल उमगि गान तन मन न संभारै ।।
मानों सिंधु सनमुख लै नीर भेंटें सिंधुनी सिधारै ।।४।।
सीस नाई अरु कर जोरइ कन्त परम परमपवित्र पांवरि भारै ।।
जब जब उठहि तबहि धरौं आगें कृपा सिंधु सुभ दिसि निहारें ।।५।।
आगम ध्यान करत औलम्बन हरि आरतति उर तैं न विसारै ।।
यह जिय सोच होय जो साची सुनि कपि ऐसी हम सदा विचारै ।।३।।
बूझै कुसल सकल सुख दाता सनमुख बोलि बोलि दुख टारै ।।
परसराम जन भागि प्रगट प्रभु दरस परस मुखराम संभारै ।।७।।३८।।

राग सारंग–

राखि सरणि रघुनाथ सहाइ ।।
अघ मोचन जाकौं बिरह कहिये अब तौ मिटयां लाजपति जाइ ।।टेक।।
सुत हिति नाम लीयां द्विज तार्‌यो कीर सिला संगति कै भाय ।।
आवा गवण मेटि भ्रम भौ दुख चरण कंमल राखै लपटाय ।।१।।
गज गनिका पसु पंखि पर्मगति व्याध वधिक तारै हित लाय ।।
सोई सरणि रही विण सुमिरै वकी कहा कीनूं अधिकाय ।।२।।
सबै पतित तारे पति राखि पतित न पति विसर्‌यो कलि मांहि ।।
जात बह्यो कहूं थाह न पावत परसराम तुम बिन हरि राइ ।।३।।३९।।

राग सारंग–

जब लग सरै न हमारो काज ॥
तब लग कौण तुम्हारो सेवग काकै तुम राम खसम सिरताज ॥टेक॥
हरि समथ गुरवेद बदत यौं तारण पतित रह्यो ब्रद बाज ॥
अब लग तिर्‌यो न तार्‌यो तैं कोई जो पैं हम न लहै सु जिहाज ॥१॥
हम विण प्रतीत कही को मानै जो मनकी संक न जाइ भाजि ॥
जो अपणें जन सौं न प्रसन प्रभु तौ क्यौं सेवइ साहिब सुख राजि ॥२॥
तुम राखै सरणि सबै सुख दाता आदि अनन्त अन्ति अरु आज ॥
परसा प्रभु सुनि साच कहत हूं क्यौं मोहि देखि आवै तोहि लाज ॥३॥४०॥

राग सारंग–

कैसो कहि तन मन छीजै ॥
तुम अंतर जामी जन परचै बिन कही क्यौं प्राण पतीजै ॥टेक॥
भौ मंडल दाझै संगि पावक विण विरखा क्यौं भीजै ॥
दीन दयाल सुणौ करुणामय कृपा सुकारण कीजै ॥१॥
होऊ कृपाल भगत हितकारी हित करि दरसन दीजै ॥
तुम बिन बिलपत परसराम जन सरणि आपणी लीजै ॥२॥४१॥

राग सारंग–

हो हरि नाम तुम्हारो सुणियत हरण विकार ॥
प्रगट प्रताप अकल अघमोचन गावत वेद ब्रम्ह ब्योहार ॥टेक॥
काम कठिन मन क्रोध महा छल ढिंभ कपट बल कौ संघार ॥
मोह विघन दुविध्या दुख हारन आसा पास हनन हरि सार ॥१॥
लालच लोभ विविधि माया मद वाद विवाद विषम विषधार ॥
पांच पिसन परबल भव जल तैं समथ राम उतारण पार ॥२॥

जिरिण सुमिर्‌यो सोई भल जाणै निर्‌मल होइ मिल्यौ तजि भार ॥
नाहिन अटक नीसांण बजावत पतित सरणि चलि जात अपार ॥३॥
इहि मारग मुगत भये सब जाणै सिव विरंचि सुक व्यास विचार ॥
परसराम प्रभु बिडद उजागर भगत बछल निवहण एक तार ॥४॥४२॥

राग सारंग—

मंगल गावत आवत गोपी ॥
नन्द बुवन आंगंन अति ओपी ॥टेक॥
जूथ जूथ जुवति जन आवै ॥
हरि मुख देखि देखि सुख पावै ॥१॥
धूप दीप कर कलस बंधावै ॥
चरण कंवल वंदे सिर नावै ॥२॥
परम मुदित सब अधिक विराजै ॥
करैं बधाई बाजा बाजै ॥३॥
उमगि उमगि आभूषण त्यागै ॥
मगन भईं नाचै हरि आगै ॥४॥
अति आनन्द प्रेम रस बरिसै ॥
पर्म विनोद देखि सब हरिषै ॥५॥
तन मन सुद्ध परम रस पीवै ॥
हरि औसर देखैं सब जीवैं ॥६॥
श्रवन सुजस विलसै सुख लोचन ॥
हरि कृपा सिंधु सबकै दुख मोचन ॥७॥
सबकी प्रान जीवन धन येही ॥
परसा पति गोपाल सनेही ॥८॥४३॥

राग सारंग–

वसुदेव देवकी कैं वसुदेवा ।।
प्रगट भये आप भुवन अभेवा ।।टेक।।
संख चक्र गदा पद्म विराजै ।।
चिह्न धरै चत्रभुज वपु भ्राजै ।।१।।
व्रज अवतरे व्रम्ह धरि देही ।।
रछ्या करण सकल के येही ।।२।।
भादूं रुति वरिसा जल वाजै ।।
निसि दामिनी चमकै घन गाजै ।।३।।
अति भयांण पंथा जमुना वाढे ।।
पोरी मुकत भई पाहरु पोढै ।।४।।
तिहि औसरि नन्द भुवनि पधारै ।।
मिटि गयो सोच कंस पचि हारै ।।५।।
इत उत मंगल सव सुख पावै ।।
परसा जन जीवै जस गावै ।।६।।४४।।

राग सारंग–

कमल नैन नैननि चिति चोर्‍यो ।।
मो देखत मेरो मन मोहन हरि लीयो हरि न बहोर्‍यो ।।टेक।।
मोहन मोहनि वसि करन वसि करि वलि छलि भुवनि ढंढोर्‍यो ।।
लैजु गये सरवसि वसि अंतरि नैक हंसि मुसकि मुख मोर्‍यो ।।१।।
निरखत वदन ठगोरी सी परगई रहि चित्र जैसो कोर्‍यो ।।
नैक वूंद जल पर्म सिंधु मिलि विछुरत नाहिंन विछोर्‍यो ।।२।।
अव कहा होय कहैं काहू कैं जाणि बूझि जासौं मन जोर्‍यो ।।
भयो विवसि परसा प्रभू सौं मन नेह न तूटत तोर्‍यो ।।३।।४५।।

राग सारंग-

हरि चितवनि चितवत चित चोर्‌यो ।।
मानों कर वाण धनुप तै अरि हित वल करि सुभट्ट विछोर्‌यो ।।टेक।।
हरि लीयो प्राण प्रानपति निरखत रही घरि सिखोर्‌यो ।।
मनु गयो वाज सिकारी कर तैं जाणि जंत्र कौ छोर्‌यो ।।१।।
परवसि परि पलटयो मन मोसौं आवत नाहीं निहोर्‌यो ।।
ज्यौ वनचर वाजीगर कै वसि डोलत मुरझि परि डोर्‌यो ।।२।।
कठिन प्रेम की हिलग लूवध मन जाइ मिलत त्रिणि जोर्‌यो ।।
ज्यौ दीपग दरसी पतंग प्रसन भयो जरत अगन हि मोर्‌यो ।।३।।
तलफत दुखित जीव ज्यौ जल विन मरत विरह को वोर्‌यो ।।
परसराम प्रभु कै वसि सर्वस अव जात सनेह न तोर्‌यो ।।४।।४६।।

राग सारंग-

खेलत रास रसिक राधावर मोहन मंगल कारी ।।
सोभित स्याम कमल दल लोचन संगि राधिका प्यारी ।।टेक।।
सिर सिखंड उरि विविधि माल मुरलि धुनि करण मुरारी ।।
कटि काछनी वन्यो उपरैनां पीताम्वर सोभित वनवारी ।।१।।
वन्यो अधिक गोपिनी कौ मंडल मधि गोवरधन धारी ।।
कर सौ कर जोरैं नटनागर नाचत केलि विहारी ।।२।।
राजित अति नाना गति निर्तत सुन्दर वर ब्रजनारी ।।
मोहे सिव ब्रम्हादि मनोज सुर हरि औसर सुखभारी ।।३।।
अविगत नाथ निर्गुण वपु धरि सगुण लीला विस्तारी ।।
भगति हेति आधीन अभै पद परसा जन वलिहारी ।।४।।४७।।

राग सारंग-

लै गये मोहन मन कौ चोरि ।।
अव रहत न प्राण निमस तापति विण भई विकल मति मोरि ।।टेक।।

करत विलास रास रूचि रचि हित कर सौं कर जोरि ।।
सुतजत न लगि विरंब छिनक मैं मोह तिणां ज्यौं तोरि ।।१।।
हूं मुरझि परि बेहाल लाल विण भई भर्म वसि खोरि ।।
मिट्यो न मन अभिमान मनावत सक्यो न स्याम बहोरि ।।२।।
अब इतवत ढूंढत फिरै वन वेलि द्रुम साखा फल फोरि ।।
सोई सुख सिंधु न पावत सलिता सूकत वीचि वल छोरि ।।३।।
धरि धरि ध्यान सम्भारत सोचत लोचत नैन निहोरि ।।
परसराम प्रभु पकरि न राखै वंधि सुप्रेम की डोरि ।।४।।४८।।

राग सारंग–

मोहन लाल हो मोहि चितवत दिन जाई ।।
कब देखिहूं हरि स्याम प्यारो ।।
जोई हूतो तन प्राण हमारो ।।
ता विना हम दुखित नछित्रगण तैं रैंनि विहाई ।।टेक।।
घण मेघ सबल उमगि आय ।।
वरिखै जल सकल छाये दामनि मुसकाय ।।
धीरे धीरे घर वन रहत न सुहाय ।।
मोहि स्याम संदेसन कहै कोय ।।
सलिता वहैं द्रुम मैं दूरि,
वोलत चात्रग सुनाय टेरि ।।१।।
बोलहि पिक मोर मधुर गावै ।।
ब्रजवासिनी सुर सो भाये न सुहावै ।।
होत है तन मन प्राण खीन ।।
तुम विन अब पिय जनम हीन ।।
परसराम इहि वार गाय ।।
प्रभु कबहूं मिलोगे आय ।।२।।४९।।

राग सारंग—

प्यारे लाल हो लालनी लै संगि आय ।।
निसदिन विलपत तुम्हारे दरस कौं पलभरि रह्यो न जाय ।।टेक।।
दारुण दुसह भुवंगनि डस्यो मन पलक पल निघट्यो जाय ।।
सोई विस मेटि सुवोखदि घसि दै हो मोहन मृतक जिवाय ।।१।।
पीर न मिटै विना पति पूरै अव तलफत प्राण विलाय ।।
दीन दयाल भगति हित कारी केसौ क्यों न करो सहाय ।।२।।
विरह विपम पावक होय प्रगट्यो व्याकुल तनु अकुलाय ।।
परसा जन याचत को तुम विन दुख साझल वरखि वुझाय ।।३।।५०।।

राग सारंग—

लागो रंग महारस नेह ।।
सो न तजौं भजि निमप न विसरौं उपज्यो अधिक सनेह ।।
विसर गई गति और ठौर की हरि चितवन कौ टेव ।।
सावसि रही सरस जिय मेरैं पीवत रस रही सेव ।।१।।
पायो मीत मनोहर प्यारो विसर्यो सव तन मन ग्रेह ।।
परसराम तासौं वणि आई अवगति अलख अभेव ।।२।।५१।।

राग सारंग—

सारंग राग सखि सुरि गावै ।।
तन मन मगन प्रेम रस माती मोहन लाल लडाय रिझावै ।।टेक।।
उरझि रही पीव कै रंगि पल भरि इतवुत चित न डुलावै ।।
निमष न तजै भजै ल्यौ लाये हरि बिण और कछू नहीं भावैं ।।१।।
अन्तरजामी अकल सकल पति वसि करि अपभुवनि वुलावै ।।
परसराम वड़भागि भामिनी अवगति नाथ जास ग्रह आवै ।।२।।५२।।

राग सारंग-

(हरि) पर्म सुमंगल तौ सुरि गावै ।।
प्रेम मगन तन मन अति आनन्द उमग्यो उरि न समावै ।।टेक।।
निरखि निरखि मुख सुख लोचत सोचत सोच न आवै ।।
उडि उडि मिलत मधुपद पंकज गति अति आरति रुति भावैं ।।१।।
देखि प्रगट सुख सिंधु समागम मिलि सलिता सुख पावै ।।
परसा पति दुखहरण करण सौं अपणौ सबै सुणावै ।।२।।५३।।

राग सारंग-

सखि हरि पर्म मंगल गाय ।।
आज तेरे भुवनि आये अकल अविगति राय ।।टेक।।
लोक वेद मरजाद कुल की काणि बाणि वहाय ।।
हरि पर्म पद नीसाण निर्भै प्रगट होय बजाय ।।१।।
उमगि सनमुख अंक भरि भरि भेटि कंठ लगाय ।।
विलसि सुख निधि नेम धरि सखि प्रेम सौं ल्यौ लाय ।।२।।
वारि तारि तन मन प्राण धन कछु रखिये न दुराय ।।
परसा प्रभु कौं सौंपि सर्वस सरणि रही सुख पाय ।।३।।५४।।

राग सारंग-

स्याम सनेही करिये सत्य करि ।।
मिलि रहिये मन दै आरति धरि ।।टेक।।
जैसे मीन जल कौं मन दीनों ।।
मन दै मीन मित्र जल कीनों ।।१।।
जल तजि मीन अनत न जाई ।।
मिल्यो रहै निज करि मित्राई ।।२।।

ऐसे सखि स्याम संगि कीजैं ।।
तन मन धन जाकौ ताहि दीजै ।।३।।
परसा प्रभु तजि अनत न वहीए ।।
स्याम सिंधु तासौ मिलि रहिए ।।४।।५५।।

राग सारंग-

सुणि सखि स्याम अधिक मोहि प्यारो ।।
जाणौ जो तन तैं होत न न्यारो ।।टेक।।
तन मन सौपि दियो सुख पोषे ।।
उनि पिय प्राण सकल दुख सोखे ।।१।।
राखि समीप सुधारस पीवो ।।
परसराम प्रभु देख्या जीवो ।।२।।५६।।

राग सारंग-

मंगल नाम हरि जो गावै ।।
सोई मंगल जु मंगल पद गावैं ।।टेक।।
मंगल हरि कीरति फल मंगल ।।
मंगल प्रेम पीवत रस मंगल ।।१।।
मगल कमल नैन सुख मंगल ।।
मंगल अवलोकति सुख मंगल ।।२।।
मगल वपु लीला धर्‌यो मंगल ।।
मंगल ध्यान करत निज मंगल ।।३।।
मंगल कृष्ण प्रणाम सुमंगल ।।
परसा प्रभु सेवत वड़ मंगल ।।४।।५७।।

राग सारंग-

काहे कौं रचे सिंगार कंवारी ।।
झूठ सबै नही साच सखी सुणि जब लगहिं न वरै मुरारी ।।टेक।।

न्यौंति कुटुंव न पोष्यो री नीकैं पांच पचीस वरात निहारी ॥
दुलह देखि न वांधो तोरण व्याह न भयो न लाज उतारी ॥१॥
करम भरम कुल कारिण न मानैं निर्भें होय मिटै ससारी ॥
व्याह पछैं सकल आभूषण पहरि निसंक भई पीय प्यारी ॥२॥
जव तैं प्यारो प्रीतम पायो अंतरि हित तैं भावैं रही न न्यारी ॥
परसराम प्रभु कै मन माति तौ खेलि निसंक दिये करतारी ॥३॥५८॥

राग सारंग–

उधौ जाहू किन व्रज तैं आजू ॥
सुनहूं संत संदेस यतनौ करौं सुफल सुकाजू ॥टेक॥
गुण हेत प्रीति समाधि इत की उतैं कुसल सुनाइ ॥
काम रिपु भै निसि विलासनि मरत धीर वंधाइ ॥१॥
कौणं मति गति चलत है क्यौं रहत कहां मन लाय ॥
कौण धौं पति वरत अंतरि वजत है किहिं भाय ॥२॥
फलहीण पहुप अनेक सूकत कौं संभारैं ताहि ॥
सुजन सुमन सनेह सींचै सुहेत अतर काहि ॥३॥
प्रेम सरि क्यौं विरह प्रगटचो अभै भाव दुराय ॥
निरखि पति निजरुप उर तैं दियो क्यौं छिटकाय ॥४॥
यहै वहुत विचारि चलि अलि अव न विरंव लगाय ॥
सुनि समझ बल विश्राम परसा प्रकट करि यहां आप ॥५॥५९॥

राग सारंग–

मधुप माधौं मन चोरि लीनों मेरो वल वोरि ॥
कैसे सुख होय मोहि जो दीनों न वहोरि ॥टेक॥
वरिषा जल पूरि जैसे दीनों पुल फोरि ॥
सलिता कै सोत सायक लीनों सुनि चोरि ॥१॥

करि करि वहु जतन संचि राख्यो हो जोरि ॥
छिन मैं धन रंक राजि लीनं सब टोरि ॥२॥
विगरी सब बात जात निघटि निज खोरि ॥
परसा प्रभु प्राण घात की नीति न सोरि ॥३॥६०॥

राग सारंग—

मधुप सालै उर साल मेरैं हरि की वै बात ॥
विलपत चित आनि आनि सुनतैं न सुहात ॥टेक॥
विछुरत पाय लागि वोलि भेट तन भरि वाथ ॥
चलति वेर नेक ताकौ मैं पकर्यो नहिं हाथ ॥१॥
सवन कीं सुख देत नागर अनाथनि के नाथ ॥
सोई विसरत नहीं पलक प्रेम प्रीतम को साथ ॥२॥
पारस को परस पावत पलटि कुल जाति ॥
ताकौ सुख तब न जान्यो अब न रह्यो जाति ॥३॥
लोचन हरि दरस कारणि लोचत दिन राति ॥
परसा प्रभु मिलन की कब आय है वा घाति ॥४॥६१॥

राग सारंग—

मोहि हरि सोचतहि दिन जात ॥
दीन दयाल दरस बिन विरहनि विलपत विरह जरात ॥टेक॥
चितवत पंथ विचारि विसुरत मरत करत अपघात ॥
यह औसर जो गयो महा प्रभू तौ मिटि हैं मिलन की वात ॥१॥
यह बड़ विथा हमारी हम कौं तुम विण डसि करि खात ॥
सोई हम सहि कहो परसा प्रभु तुम्हारो ही विड़द लजात ॥२॥६२॥

राग सारंग—

हो ऊधो ऐसी हम न सुहाय ॥टेक॥

जदपि मन मैं हूंती तुम्हारे तऊं अंतरि राखि दुराय ।।
जो तुम कह्यो सुभावत नाहीं न वादि वकत इहां आय ।।१।।
जाकौ हम तन मन धन अरप्यो पहली प्रीति लगाय ।।
सोइ सुख सिंधु सुमंगल परहरि को दुख मैं वहि जाय ।।२।।
जो हरि हम लोचन भरि देख्यो मन ताकौं पति याय ।।
भई अब ज्यौं तजै दूध की दाधी पीवत दही सिराय ।।३।।
रह्यो प्रेम नेम नीति तासौं जो उरि रह्यो समाय ।।
जग्य जोग तप तीरथ व्रत जीवनि जादूंराय ।।४।।
अब और न गति सत्य असत्य सोई तन विरह जराय ।।
यौं पतिवरत हमारे रह्यो जु परसापति न भुलाय ।।५।।६३।।

राग सारंग–

ऐसी असह सहै धौ कोय ।।
जो तुम हम सौं करी कृपा करी सुलगत अगनि सम होय ।।टेक।।
तुम सौं कहा कहै हम अवला साहस कछू न बसाय ।।
कहि है सकल आपदा तव जब मिलि हैं स्याम सहाय ।।१।।
हम तुम एक येक पति सिरपरि पठिये कौन सिखाय ।।
अब डरत न प्राणघात करिये तैं मारत अजर जिवाय ।।२।।
व्है पुन्य हमारो तुम कौं हम हति करि जाऊं जराय ।।
परसा प्रभु सौं कहो वुद्धि बल सुजस तिलक लेऊ जाय ।।३।।६४।।

राग सारंग–

मधुकर प्रीति तुमारी जाणी ।।
जो कछु अंतर हुंती तुम्हारे प्रगट भई मुख बाणी ।।टेक।।
धाय मिलि आतुर बूझत कारण लागत अति प्यारे ।।
मानूं षुध्यांरथ कै धूं फल पाये खाये जात न खारे ।।१।।

जनमत ही जो लग्यो गूढ़ रंग स्याम हांत नहीं पियरो ॥
ससि और सूर गमि वहि कहि गयौं वो ताती वो नियरो ॥२॥
कहा भयो विधु अमृत स्रवे मृगि मीठो उरि कारो ॥
येक मास में दोग वपु धारै परि बूडो परिवारो ॥३॥
कहा भयो जो दोउ मिलै जमायो अनि अमिल पै पाणी ॥
रह गई तक्र नीर तै न्यारी जब धरणी चीर धरी छाणी ॥४॥
ज्यों सलिता नीर निवांण विणा वही जहां तहां गयो बिलाय ॥
अब पलटयो प्रेम सिंधु जन परसा मिन्नै कूंण मे जाय ॥५॥६५॥

राग सारंग–

हम तौ विरहणि विरह निवोरी ॥
कीणी वसि अपणै लै वनि मानो मृगि सिघनी घेरी ॥टेक॥
तापरी तुम पावक होई प्रगटै जरी जरावत जेरी ॥
विगसत वपु जहां जहां ताहू मैं खारी बांटि वटोरी ॥१॥
तनहूं तै मनि स्याम सांवरे मधुप महामति तेरी ॥
मानौ निर्मल मैलो करिवे कौं आणि करि मसि ढेरि ॥२॥
अब यह नेह विरह जरी रहि हैं पर्म प्रेम की पेरी ॥
कमल नैन करुणामय परहरि कौ ताकै पट सेरी ॥३॥
तुमारो कह्यो सुणौ फिरि तुमहि हम न फिरत अब फेरी ॥
परसा प्रभू सुन्दर वर सिर परि हम ताही की चेरी ॥४॥६६॥

राग सारंग–

हो ऊधो तू मेरौ तन मन प्राण ॥
या हित कथा अवर की नाहिं सुणि हो सन्त सुजाण ॥टेक॥
मेरो मन तेरे मन भीतर कहूं कहौ वहु आन ॥
मोहि तोहि एक सरीर एक मन दुख सुख सोक समान ॥१॥

तौ विण सकल सिरोमनिं ऐसे मानो गिरपापाण ।।
तुम सब जाहू सिर मौर सनेही निसि नायक पति भाण ।।२।।
तू मेरी अति हितू पर्म गति मति पूरण विज्ञान ।।
कहि न सकौं महिमा सुख सुमिरण अगिण सुजस बखान ।।३।।
तातें तुमहि पठावत पहली हेरत मिलि न ठाण ।।
विरंव न लाय कह्यो सुणि सत्य करि चलि आगें अगिवाण ।।४।।
अति आतुर हित कथा सुणावें छाडें मन कौ मान ।।
इतनौ कह्यो समझि सुणि परसा अपरस पर्म विवान ।।५।।६७।।

राग सारंग-

माधौ जी मोहि भरोसो तेरो ।।
तुम जु पठावत आन खंड कौं कौण अहि न आयो नेरो ।।टेक।।
कौंण अधर्म उदै भयो कैसो कौंण विजोग निवेरो ।।
ज्यौं जल मीन वसत ही ग्रास्यो आय काल कीयौ हेरो ।।१।।
चरण सरण छाड्यो नहीं भावत फीको लागत फेरो ।।
(परसा प्रीतम अंब विरम्ब न लावौ बेगि बात निवेरो) ।।२।। (अपूर्ण)

राग सारंग-

चलूं क्यौं हरि मिटत न मन को मोह ।।
लगी जु रह्यो पति प्रेम हेम होइ विण रवि रुति न बिछोह ।।टेक।।
निज जीवनि तजि गवण करण रुचि धृग मति जनम सयान ।।
परम परमारथ परहरि सुवारथ सुख न लहैं सोई प्रान ।।१।।
जाकौं मन प्राण वसै जामाहीं सोई फिरि ताहीं समाय ।।
यौ महासिंधु कौ जीव महाप्रभु निकसि न क्यौं पछिताय ।।२।।
क्यौं तुमही न व्यापै पर्म कृपा निधि दीन दुखित कौ दोष ।।
जो पै मीन तलफि तन त्यागै तौ क्यों नीर न सालै सोक ।।३।।

मोहि तोहि विथा न येक अगह आरति विण चल्यो न जाय ।।
यौ सहि न सकौं दुख दुसह चरण तजि परसा पति न पठाय ।।४।।६८।।

राग सारंग-

दीन होय करत मनुहारि ।।
सुणि सुख सिंधु सुवचन सत्यकरि विछुरन मिलन निवारि ।।टेक।।
चलत न चरण पंथ दिसि निसि विन पलटत प्रथम विचारि ।।
मन न तजत निज ठौर महाप्रभु अव लग्यो सनेह जु न टारि ।।१।।
नैन झुरत जल झरण सरस गिर पावस रुति उन हारि ।।
अव सास समात नहीं उर उलटचो दीन दयाल न मारि ।।२।।
मैं अग्यानि न जाणियौ महिमा तू अपणो विरद सम्भारी ।।
परसराम प्रभू विघन हमारो होत गवण सु व्यौहारी ।।३।।६६।।

राग सारंग-

नीर सौं क्यौं मिटत मीन कौ नेह ।।
निकसि न जाइ सहत दुख हित नहीं तजत प्राण निज ग्रेह ।।टेक।।
एक भाव दिसि और न कोइ प्रेम वरत वदि एह ।।
जाहि दुखित जीव पीर न व्यापै सौई सिंधु न सनेह ।।१।।
निर्गुण मित्र करि अगुण सनेही सुख न लहै धरी देह ।।
मीन मरत नहीं डरत नीर पलु परसा यौ न कछु नेह ।।२।।७०।।

राग सारंग-

जो तुम अन्तर जामी जाण ।।
तो क्यौं न विचारहू करुणासागर लागत सवद सुवाण ।।टेक।।
जल तजि मीन वसै क्यौ वाहरि मिटत विडद की आण ।।
जीवै नहीं नीर विनि पल भरि तलफि तजै तन प्राण ।।१।।

पतिवरता पति तजै न कबहूं ज्यौं गिरि नीर नीवाण ।।
परसराम प्रभू चरण सरण तजि भजै न सु पाषाण ।।२।।७१।।

राग सारंग–

तुम सूं कहा कहूं वहु ग्रान ।।
सुनो उधौ व्रज जन की जीवनि जाण्यो नहीं ग्रजाण ।।टेक।।
सोई पति रथि सारथि कहावै पूरण ब्रम्ह निधान ।।
सखा सुभाय समीप पर्म पद परसि न उपज्यो ग्यान ।।१।।
सोई त्रिभुवन पति ग्रन्तरजामी ग्रविनासी हरि जाण ।।
ग्राये द्विजसुत मृतक जिवावन सोई प्राणणि के प्राण ।।२।।
यह मिट्यो न कबहुं मेरे उर तैं ग्रति ग्रन्तर ग्रभिमान ।।
परसराम प्रभू प्रगट पर्म पुरि निसि न उदै निज भान ।।७२।।

राग सारंग–

तुम सो हितू कहूं क्यौं ऐसी ।।
जैसी किसी दिसि मैं देखि सोई उर भेद छेद करि पैसि ।।टेक।।
उनि वपु धर्‌यो वर्‌यो मैं सोई सुलप सुरति मति मंध ग्रनेसी ।।
कहा कहूं कछु कहत न ग्रावै विण पहिचाणि भई है जैसी ।।१।।
कमल नैन विन नैननि पौरिष पलटि प्रकास प्रगटी निसि वैसी ।।
भयो ग्रंधार सकल विन दिनकर समझि न परै सु कहूं कहि कैसी ।।२।।
ब्रम्ह चरित करि प्रगट दुराणों ग्रभै कहाइ करि विधि भैसी ।।
गयो समेटि सकल पति परसा बाजीगर बाजी करि तैसी ।।३।।७३।।

राग सारंग–

ऐसी कहत न ग्रावै मोहि ।।
यह ग्राग्या ताकौं निज सेवक कहि कहत हौं तोहि ।।टेक।।

जो निजरूप धर्‌यो देवै ग्रेह अंति भये प्रभु सोइ ॥
तजि कुलरूप पर्म पुरि पहुंचे कृष्ण चतुरभुज होइ ॥१॥
लै औतार निऊतर हूंए वै जगनाथ जु कोइ ॥
लै जक जूथ भार भुव टारण दीनै सिंधु समोय ॥२॥
दियो न अंत आपणो काहू को जाणै गति दोय ॥
वै वड ब्रम्ह जोग माया करि मिलै न अंतर खोय ॥३॥
प्रगट सनेह भयो सुपनो सो कहि क्यौ दरसन होय ॥
परसा प्रेम कंवल तैं विछुड्‌यो मधुप चढ्‌यो गिरि रोय ॥४॥७४॥

राग सारंग—

जब तैं जनम जुगति सौं पायो ॥
माला तिलक प्रतिष्ठा पाई जब गुर राम कहायो ॥टेक॥
हरि की सरणि अरु साध की संगति जो जब तैं नर आयो ॥
जीवन सोई सुक्यारथ गिणिये जब कह भगत बुलायो ॥१॥
पायो फल सेवा सुमिरन सुख मन हरि चरन कमल सों लायो ॥
अब ताहि न चिंत चाहि काहू की जिनि परसराम प्रभु गायो ॥२॥७५॥

राग सारंग—

जा जन कैं हिरदै हरि आवत ॥
ताकै पाप पुरातन पल मैं पावक नांव जरावत ॥टेक॥
निर्वैरी निर्दोष करत निर्भै हरि दोष न ताहि सतावत ॥
विघन हरण हरि नांव सुमंगल सुमिरत सोई सुख पावत ॥१॥
निर्मल करत सकल मल धोवत करि नितकर्म दिखावत ॥
पारि करत भवतारि ताहि हरि अपणै पुरि पहुचांवत ॥२॥
जनम मरण जम कागर गारत अपणै पटे लिखावत ॥
देत कृपा करि मन वांछित फल हरि जैसो जाको भावत ॥३॥

पावन नांव भजत सोइ पावन पावन सुणत सुनावत ।।
पावन सदा रहत सोई तन मन हरि जामाही समावत ।।४।।
हरि कौ भजत पतित पाप पसु अति पावन होइ आवत ।।
परसराम ऐसो प्रभु परहरि तोहि और भज्यो क्यौ भावत ।।५।।७६।।

राग सारंग–

सांचौ जन प्रहलाद कहायो ।।
वहु संकट वहु त्रास असुर की अति हठ सौ हरि गायो ।।टेक।।
अग्नि झाल जल वल वहु विधि करि गिर हूं तैं वांधि गिरायो ।।
तऊ न विसर्‌यो राम रसन तैं तऊ काढ़ि खडग डर पायो ।।१।।
मारि असुर उर फारि हंसे हरि अपणौं निकट वुलायो ।।
भगति हेत नरसिंघ रूप धरि धरि ही दरस दिखायो ।।२।।
तिणि प्रहलाद पिता कौ अपणौं अतैः गोविन्द नांव सुनायो ।।
परसराम प्रभु हेति भगत कै असुर सरणि पहुंचायो ।।३।।७७।।

राग सारंग–

मिल्यो हरि नांव देव कौं ग्रह आय ।।
पूरण ब्रम्ह भगत हित कारी अवगति नाथ कहाय ।।टेक।
पीयो दूध दास कै वसि होय मोहन प्रीति लगाइ ।।
प्रगट प्रताप छाप नहीं छानि मृतक जिवाइ गाय ।।१।।
छानि छवाइ प्रत्यंग्या पुरई दीनै चीर धुवाइ ।।
देवल फेरि दास दिसि कीनों करुणा सिंधु सहाय ।।२।।
स्वान रूप धरि भोजन लीनों प्रेम प्रीति हितलाइ ।।
परसराम नामा हरि एकै जन जीवै जस गाय ।।३।।७८।।

राग सारंग–

सैंन भक्त हरि कौं अति भावत ।।
जाकैं हेति अपना नृप कौं हरि आरसी दिखावत ।।टेक।।

लेत छिनाय सिला संपुट पटवर बाजौट जरावत ।।
मर्दन करत बैठि ता ऊपर यौ सतनि वचावत ।।१।।
तहां सालिगराम मुगत करिवे कौ नृप कौ भलो मनावत ।।
यौं पर उपगार निमति आपण पौं सौंपि दिये सुख पावत ।।२।।
परवसि पर्‍यो भजन तैं भूल्यो तव ताकौं दरसावत ।।
भगवत हेतु जन कौ वपु धारैं नृप कैं तेल लगावत ।।३।।
वासि वराट दुष्ट जन दोही हरि ताकै दोष दुरावत ।।
डरत न कछू पूस तैं पावक पल मंहि जागि जरावत ।।४।।
करुण सिंधु कर्म काटण गुण प्रगट भयो मन भावत ।।
पतित उद्धारण पाप हरण हरि क्यों हिरदै न समावत ।।५।।
अति आतुर गज ग्राह मुगति ता प्रभु कौं जम जन गावत ।।
पतित पावन परसा प्रभु कौ गाय गाय मन हरसावत ।।६।।७६।।

राग सारंग-

रिझायो कृष्ण कबीरैं गाय ।।
भगत कथा भगवंत सिरोमनि श्रवनि सुनि चित लाय ।।टेक।।
सब लोक वल बंध विसार्‍यो अतरि भई समाधि ।।
प्रगट प्रकास चहूं दिस देख्यो पूरण ब्रम्ह अगाधि ।।१।।
सिवादि सुकादि ब्रम्हादि विमोहित सोई रस लीनो चाखि ।।
त्रिपति न भई सुअमृत पिवत मन सों मिलि सति भाखि ।।२।।
असुर अवुध दीयो गज आगै जव गंगा हूं मैं डारि ।।
दीन दयाल जांणि अपणौं जन लीनू सरणि उवारि ।।३।।
जगत अचेत न जाणै या महिमा हरिजन कथा विचार ।।
अविगति नाथ मिल्यो सोई सेवग दियो अभै पद पार ।।४।।
हरि जनम सकल सति करि मानौं श्री मुख वचन सुवाच ।।
परसराम कृष्ण कबीरा एकै सब सुनो कहत हूं साच ।।५।।८०।।

राग सारंग–

हरि की जीवनि जन रैदास ।।
जाकैं हिरदै प्रगट प्रकास्यो आपण लियो निवास ।।टेक।।
बिसर्‌यो सब माया मोह पसारो जग आसा घर वास ।।
छूटि गयो कुल कुटुम्ब कुमारग कटे भर्म भव पास ।।१।।
मिट्यो विघन छल काल विषै बल भयो अविद्या नास ।।
पियो सरस सुअमृत सीतल जग तै भयो उदास ।।२।।
सुमिरन सार पि हरि सुख पायो गायो ब्रम्ह विलास ।।
प्रेम प्रीति हरि निमस न विसर्‌यो भाव भगति वेसास ।।३।।
निर्वैरी निर्दोष सुनिर्मल कंचन कंवल सुवास ।।
परसा सो संसारि सु मन्दिर दीपक सकल उजास ।।४।।८१।।

राग सारंग–

पिपो भयो भगति अंभर्मति धीर ।।
अडिग न डिग्यो चरण तजि कवहू महा सुभट वडवीर ।।टेक।।
उभै रूप वड भूप उजागर उदित उदधि की तीर ।।
नाच निर्ति करत हरि द्वारै जरत बुझायो चीर ।।१।।
देख्यो सुण्यो भज्यो जिन तिन की मिटि गइ मन तन की पीर ।।
मन क्रम वचन सिरोमनि सेवग सागर सुख कौ नीर ।।२।।
महा अंग निजसंग सनेही जो सु प्रेम सरस की सीर ।।
परसराम प्रगट नही छानी पिपो हरि एक सरीर ।।३।।८२।।

राग सारंग–

हम से जनम विगारन आये ।।
परम निवास नाम नाही जाण्यो माया हाथि बिकाये ।।टेक।।
सर्‌यो न काज एक आसा तै आदि अंति विष लाये ।।
अपणे पटे लिखै जम कायथ लै-जमि लोकि पठाये ।।१।।

हरि सुमिरन वेसास न उपज्यो अक्रम कर्म कमाये ।।
क्यो तिरिये भवसिंधु महादुख परसराम न गाये ।।२।।८३।।

राग सारंग-

कवहू मैं हरि प्रीतम न सम्हार्‌यो ।।
स्वामी पर्‌यो भरोसै तेरै जनम सुबाजी हार्‌यो ।।टेक।।
हित करि करी पराई निंदा डिंभ कपट उर धार्‌यो ।।
भेष पहरि आसा वसि भम्र्यौं हरि वेसास विसार्‌यो ।।१।।
दक्ष्या दई लई नहिं कवहूं हठि दण्डोत करायो ।।
मुयो बूडि मान सलिता मैं माया संगि वहायो ।।२।।
जग आधीन वस्यो विषयन मैं विषै विकार चढायो ।।
परसराम सतसंग सरण मुख नैक न हिरदै आयो ।।३।।८४।।

राग सारंग-

ऐसे क्यौं हरि भगत कहाय ।।
काम क्रोध तृष्णा चित्त लालच माया ही कै चाय ।। ।।टेक।।
जो कोई आवै दास दुरावै तौ पर घर देत बताय ।।
जो कोई देत तुलसी दल काहू तौ आपन लेत छिनाय ।।१।।
पर घर जाय फिरै तहां फूल्यौ और अंग न माइ ।।
ज्यौ तूल तिरण उडत वाय विन चचल चपल सुभाय ।।२।।
नाचत डिंभ काछि नटकै ज्यौं नाना स्वांग वनाय ।।
अति कठोर अन्तरि अभिमानी गर्व गुमान न जाय ।।३।।
लेत देत नाहिं कछु ता विन रोवत रैन बिहाय ।।
परसराम स्वारथ मन वांध्यो भज्यो न जादूराय ।।४।।८५।।

राग सारंग-

हरि जन विन हरि भगति न काय ।।
माया मोह विषै रचि करि मूये तृपति न पाय ।।टेक।।

कहा सर्‌यो जो नाच्यो गायो देखि अधिक दिखाय ।।
आसा पास परे जग जाच्यो तृष्णा तपति न जाय ।।१।।
कहा कथा कही सुणि सुख पायो जो मनसा मनि न समाय ।।
परवसि परे गये वहि भौ जलि करि कलपना सवाय ।।२।।
स्वारथि स्वांग पहरि सुख पायो कीनि पेट भराय ।।
भाव भगति वेसास न उपज्यो भ्रमि वड़ सौ जगवाय ।।३।।
कहत सुणत सुमिरत जमि लूटे सुण कहत हूं ठाई ।।
परसा स्वांग पहरि झक मार्‌यो जो दृढ भगति न आई ।।४।।८६।।

राग सारंग–

राम विमुख धृग धर्म विचारो ।।
तन मन धन मनसा वसि किये जो न भज्यो हित सौं करि प्यारो ।।टेक।।
धृग विद्या करणि कुल दीरघ अति अहंकार मिटयो नहीं गारो ।।
धृग सोई रूप अनूप भूप वल अमृत डारि पीवत जल खारो ।।१।।
धृग तप ग्यान ध्यान व्रत संजम जु भगति हीन चाहत निस्तारो ।।
जहां न प्रेम प्रतीति न परचौ भाव विना निरधन निज न्यारो ।।२।।
धृग कवि सूर परम गति परहरि सेवत जे रिधि सिद्धि कौ द्वारौ ।।
धृग सोई मतौ सयान जान धृग जव लग पति सूझत न उधारौ ।।३।।
धृग वपु धर्‌यो फिर्‌यो जो परवसि चिति नि कियो दुख मेटनहारों ।।
विण वेसास निवास आस वसि थिर न अरु न पावक ज्यौ प्यारो ।।४।।
जहां न प्रकट प्रकास न दीपक निसि मैं निति रहत अन्धारो ।।
प्रलै समाय सकल मिलि तासौ तहां न सुभ सन्तोष उजारो ।।५।।
धृग आरम्भ कर्म काची मति जा हित वाघ लियो भ्रम भारौ ।।
परसराम सत सग सरन विन सुख न कहूं देख्यो फिरि सारौ ।।६।।८७।।

राग सारंग–

मन तन धर्‌यो अकारथ थारौ ।।
परहरि पार व्रम्ह पति चित तै तै जु कह्यो सव ही मैं म्हारो ।।टेक।।

ज्यौ ग्रीष्म ऋतु मारुत सगि जुग जुग नीर विनां पावक की चारौ ।।
देखत गयो बिलाय वादहि जनम जनम भ्रम बूडन हारौ ।।१।।
ज्यौ जलग्रोलौ जसि गिरयो गगन तै मिलिगयो भोमि रह्यो नहिं सारौ।।
यौ उपज्यो खप्यो विना निज जीवनि पेतन मन पलटि भयो नहिथारौ।।२।।
मुवा व्यौहार विकार भार तजि भजियो न पर्म हितू हरि प्यारौ ।।
भगति हीरण जीवन जग झूठो परसा या हि वड हारणि विचारौ ।।३।।८८।।

राग सारंग-

कहत विषै सुख हरि सुख नांजी ।।
तासौ कहा वसाय दास कौ ग्राणि भ्रगति मैं डारत भांजी ।।टेक।।
मानत नही कह्यो सतनि कौ सत्य सत्य हरि कहत न हांजी ।।
परहरि परम अमी रस रोगी पिवत मागी प्रीति सौ काजी ।।१।।
सूझत नही निपटहि कछू वेचार्यो जो आखि ना कदे ग्राजी ।।
परसराम गुरु सरनि दीन होय भूलि न कदे ग्यान सौ मांजी ।।२।।८६।।

राग सारंग-

गयो मन जित तित विषै विलाय ।।टेक।।
जाणि धसि सुरसरी सिखर ते सिंधु समानी जाय ।।
स्वारथ स्वादि पर्यो पसु पासि परवसि मन उरझाय ।।
वहु दुख सहत वादि वन चर ज्यौ घरि घरि द्वार विकाय ।।१।।
थिर न रह्यो कवहू चित पति सो पलभरि प्रीति लगाय ।।
बिन वेसास निवास नाव तजि कीनै वहुत उपाय ।।२।।
कलपत मूवो कृपण भ्रमि भौजलि अक्रम कर्म कमाय ।।
गयो असार विकार धार वहि विनि रघुनाथ सहाय ।।३।।
जमपुरि पथ फिरत नित निसि मै निर्फल फलहि गवाय ।।
परसराम आधीन कर्म वसि मुगध परत कूप मै धाय ।।४।।६०।।

राग सारंग–

मन परवसि वंध्यो सु विगोवत ।।
हरि तजि भ्रमत निसार स्वान ज्यौ पायो जनम सु खोवत ।।टेक।।
माया मोह विषै जोवन मद मगन भयो भरि सोवत ।।
चेतत नहिं निरग्रंध निरंकुश अंकुस जागि न जोवत ।।१।।
प्रेम भजन सुख सिंधु हृदै धरि कायर कर्म धोवत ।।
और करत नित नेम गहै पै मनसा मन न समोवत ।।२।।
षृग जीवनि भगवंत भजन विनि कवहू विरहिन रोवत ।।
परसराम भरि भार भ्रम धार मै नांव सवरणी डुवोवत ।।३।।६१।।

राग सारंग–

जव लग तन मन मैं नही सोध्यो ।।
तव लग विध्या वादि पढ़ी जो जात न प्राण संमोध्यो ।।टेक।।
त्रिपति हीण सुख लहत न कवहूं फिरत सदा अति क्रोध्यो ।।
तजत न कुवाणि काणि कलजुग की आतम राम विरोध्यो ।।१।।
को मै को तैं अरु को पति प्रेरग मिलि जु आपौ नहिं षोध्यो ।।
कारज कछू न सर्‌यो जन परसा स्वारथि जगत प्रमोध्यो ।।२।।६२।।

राग सारंग–

जग लग मनि निहचौ न धरै ।।
तव लग हरिख सोक दुख सुख ते कारिज कछु न सरै ।।टेक।।
मिटै न त्रिपति ताप तन मन तें रू स्वारथि सदा जरैं ।।
भावहीन हरि भगति विमुख नर भ्रमि भव पासि परै ।।१।।
अति अग्यान आप वपु बेध्यो अंध न कह्यो करै ।।
विण बेसास भजन तन तासौ कौ बकवादि करै ।।२।।
त्रिपति हीण जल थल कुल कलपत मरि जम दंड भरै ।।
परसराम पतिव्रत प्रेम बिनि क्यौ करि प्राण कहां उवरै ।।३।।६३।।

राग सारंग-

भर्म्यों रे मन राम विसार्‌यो ॥
विन वेसास महानिधि हार्‌यो ॥टेक॥
विष स्वारथि वनिता सुख संगा ॥
ज्यौं पावक जरि मरत पतंगा ॥१॥
जिह्वा इन्द्री हाथि न आई ॥
घर घर फिर्‌यो स्वान की नाईं ॥२॥
जाच्यो जगत जगपति खोयो ॥
परवसि परि निरधन ह्वै रोयो ॥३॥
परसराम धृग धृग ऐसो जियो ॥
सव परहरि जोइ नाव न लियो ॥४॥९४॥

राग सारंग-

मन की समझि परै जो काहू ॥
ताकी टेक मिटै नहीं कवहूं हरि सुमिरै निरवाहू ॥टेक॥
वदै न लोक वेद की कछू वै हरि सुमरत मतै उधारै ॥
गरजत गगनि चढ़यो गुर सवदैं लगत न दिष्टि पसारै ॥१॥
चेतन सदा अचेतन न कवहूं मनसा मोह निवारै ।
ज्यौ दरपन साग्दिष्टि सु उर मैं निज प्रतिविंव निहारै ॥२॥
रहै सदा लीप लीण मगन भयो भ्रम अगनि तन जारै ॥
अचवै अजर अमी समी कर कै पलटि न पूठौ डारै ॥३॥
सोई महावीर अति सूर धरि ऋणि जु पायो डांव न हारै ॥
रहै सदा सुसौज मरण कौं सोच न पोच विचारै ॥४॥
वरै सुवर संग्राम संजीवनि हरि हथियार संभारै ॥
पहिरै प्रेम सनाह सुदिढ होय सार अणि अरि मारै ॥५॥
जु रहै अजीति जीति सव दोषी कवहू दोष न अंतरि धारै ॥
सोई जन अमल अलैप जगत मैं जु परसा पति न विसारै ॥६॥९५॥

राग सारंग-

सुनि मनु तोहि करौं मनुहारि ।।
इहै अचरज गोपाल भजन बिन पायो जनम न हारि ।।टेक।।
पर्म पदारथ प्रान सनेही हरि उर तैं न विसारि ।।
राम रसायन रसना रचि रचि वारौंवार सम्हारि ।।१।।
भ्रमत भ्रमत अबकैं बनि आई बात न वादि बिगारि ।।
नर औतार सिरोमनि सबतैं हरि भजि लेहु सुधारि ।।२।।
बार बार पाये नहीं याहि औसर ऐसो समझि बिचारि ।।
परसराम प्रभु सुमिर कृपानिधि श्री गुर कै उपगारि ।।३।।६६।।

राग सारंग-

मन हूं तोहि समझावत हार्‌यो ।।
मिटि न कठिन कुवाणि तुम्हारी अति अहंकार बिगार्‌यो ।।टेक।।
जो दशरथ सुत रतन राम सुख सो कबहू न संभार्‌यो ।।
पढयो अधिक जम रीति प्रीति करि करुणा सिधु विसार्‌यो ।।१।।
भज्यो न साच सुरस परमारथ मिलि स्वारथि सरिमार्‌यो ।।
परसराम हरि भगति हीण गुन जान वादि वपु धार्‌यो ।।२।।६७।।

राग सारंग-

मन पछिताहिगौ रे तू मनमोहन सौं ल्यौ लाय ।।
सोच विचारि संभारि विषै तजि हरि भजि-
हरि भजि हरि विण और न कोई सहाय ।।टेक।।
माया मोह करम कारण भ्रम धार कुभार
भरे रे ऐसो जिनि ताहि जनम ठगाय ।।
चेति मुगध मन वड सौंज सिरोमनि तोहि
दई नरदेह भजै किन अंतरि ताहि ।।१।।

यो संसार विकार महादुख सुख नाहिंन विन
राम भजन सुनि वादि ही वहि जाहि ॥
आरति आतुर चात्रग ज्यों प्रेम सरस
रसना हित सौं परसा प्रभु लेहू किन गाय ॥२॥६८॥

राग सारंग—

मन हरि गाय लैं हो हरि विनि पायो जन मन हारि ॥
कह्यो हमारो मानि समझि सिख तोहि कहूं
अपनाइ सो हित सौं करि करि मनुहारि ॥टेक॥
कित अंध भयो अभिमान अभागे रतन जनम
कौं पाय हरामि भ्रमि भव कूप न डारि ॥
हरामी ऐसौ औसर पायसि नाहिं बहुर्यो नर
औतार सिरोमनि तैं हरि भजि लेहु सुधारि ॥१॥
सुमिरि सुमिरि अपणौं मन वसि करि हरि
विसरै जनि कवहु बारौंवार संभारि ॥
परसा भजि प्रेम नेम धरि विरंब न करि
आतुर सति करि हरि पतिव्रत धारि ॥२॥६६॥

राग सारंग—

हरि न विसारिये हो अपणौं प्रीतम प्राण अधार ॥
भजि मन भजि मन राम रमापति रघुपति राजिव
लोचन सतिकरि हरि सुख मंगल चारि ॥टेक॥
सुमरि सुमरि सुख मूल कलपतरु कृष्ण कमल
दल लोचन सब करहि लीला नित विहार ॥
नाहिंन कहा समझ जल थल नभ कुल भेष
अनेक धरै धीरज फल हरि अगिणत औतार ॥१॥

लख चौरासी प्रतिपालन करन परि सकल
भरण पोषण कारन हरि दाता परम उदार ।।
धरणि वियोम जलधि सुमिल सुखरासी भेद
रहत भवभूत निवासी व्यापक ब्रम्ह अपार ।।२।।
जनम रहित अजपाजप आलंब आनंद पद
गुन नांव निरालंब रहत सदा निरभार ।।
परसराम प्रभू निर्मल निजवर अवगति अकल
अनंत अभै कर हरि हरण विकार ।।३।।१००।।

राग सारंग—

चरण कंवल सौ जो मन लागै ।।
जीवन जनम सुफल सुख सोई
प्रेम भजन भजिये अनुरागै ।।टेक।।
धनि सोई मतौ महातम महिमा
हरि सुमरण संगति मति जागै ।।
धनि सोई समझि सुरति संसौ हति
सेवत अभै सरनि वड भागै ।।१।।
पावन नांव पतित कौ तारण मन
क्रम वचन सुनत भ्रम भागै ।।
सोई पति सति जाणि सो सुमिरै
तन धरि मरि नाहि न दुख भागै ।।२।।
निस दिन राम रतन जो रटिये
प्रीति पोय रसनां के तागै ।।
परसराम जन प्रगट पर्म गति
होय यही कौ जाणै आगै ।।३।।१०१।।

राग सारंग-

रहिये मन हरि की सरणाई ।।
हरि सुख तरु सबको सुखदाई ।।टेक।।
ग्रानन्द मूल निगम निति गाया ।।
प्रेम अमी फल सीतल छाया ।।१।।
हरि अंतरगति की सब सिधि जाने ।।
ता हरि तें कछु दुरै न छाने ।।२।।
परसा श्री गुरु यहै बताया ।।
निज विश्राम अखिल को राया ।।३।।१०२।।

राग सारंग-

सुजस मन काहे न गावै ।।
असरण सरण अनाथ जाणि कै कृपा हेति सदगति पहुंचावै ।।टेक।।
जो गति दई भभीषण रावण सोई गति बकी जसोदा पावै ।।
हिरणाकुस प्रहलाद येक गति देत निसक न पल पछतावै ।।१।।
दुरजोधन सिसुपाल कंस थिर जरासंध फिर गर्भि न आवै ।।
जेई जेई असुर हतै कर अपणे ताहि कौ निज ठौर बतावै ।।२।।
जाको नाव प्रहार पाप कौ पतित सहाय न बिडद लजावै ।।
गनिका बकी व्याध बधिकन को तारक नांव भजियो किन भावै ।।३।।
तजि भामा वैकुंठ सुख गजपति मन पहली मोहन उठि धावै ।।
देखि दुखित गज ग्राह महापति दोऊ एक संगि सुगति पठावै ।।४।।
जाणि अजाणि हरि भजै जो कोई ताहि कू हरि सरणि बुलावै ।।
परसराम या साखि जाणि जिय हरि भजै सो भगत कहावै ।।५।।१०३।।

राग सारंग-

भजि मन राम बिसंभर राया ।।
जाकी सौज सिरोमनि सब तै नर देही ले आया ।।टेक।।

मैं मेरि कैं फंद पर्‌यो पसु मूरखि भरम न पाया ॥
पति जियत विवचार करत कित करता आप कहाया ॥१॥
कनक भुवन सुंदरी सुत बंधव यह परपंच पराया ॥
ताकौं देखि फिरत कित फूल्यो अति गारै गरवाया ॥२॥
मेरी तेरी तेरी मेरी कहि कहि जनम गंवाया ॥
यह जाकी है ताही पैं जैहैं तू को देखि भुलाया ॥३॥
चेति मुगध हरि भजि मन मूरिख को करता काकी या माया ॥
परसराम भगवंत भजन बिन कह कौंणौं सचु पाया ॥४॥१०४॥

राग सारंग–

राम न विसारौं मैं धन पायो ॥
जाकी साखि प्रगट धू दीसै वेद विदित गुर सांच बतायो ॥टेक॥
जन प्रहलाद अक्रूर अरु ऊधौ सुक मुनि जन नारद जस गायो ॥
सिव विरंचि सुर नर सब सेवग सेस महेस सुमिरत न अघायो ॥१॥
नाऊ जाट चमार जुलाहो छींपै हू निज नीसांण बजायो ॥
परसराम प्रभु साखि तुम्हारी सुणत मुदित मेरो प्राण पत्यायो ॥२॥१०५॥

राग सारंग–

राम रमत कित करिये लाज ॥
जिनि सब सौंज दई मनवंछित नखसिख मुख सुंदर सिरताज ॥टेक॥
अति बल काल फिरत तर दीयें ज्यौं व जिनावर ऊपर बाज ॥
लैहैं उभकि नरक मैं दैहैं घात वर्षा न मिटै जमराज टेक॥
छाड़ि बिकार भर्म जिनि भूले जैहैं मूल बिसाहत ब्याज ही ॥
परसराम प्रभुराम महानिधि ताकौं सुमरि सरैं सब काज्ही ॥१॥

राग सारंग–

जाकै तन मन जीवनि राम ॥
सोई सेवग संसार सिरोमनि निरवैरी निहकाम ॥टेक॥
त्रिपति भई सब ही बिनि सार्यो सुमरि सुकाम ॥१॥
सो न गहै दूजो दिस हरि बिन आसा पास हराम ॥
परसराम बेसास परम पद पायो बड़ विश्राम ॥२॥१०७॥

राग सारंग–

राम अगम गम आवत नाही ॥
निगम रटत नित नेत नेत कहि महांसिधु भजि सेस भुलाहीं ॥टेक॥
वरुण कुवेर इद्र अवतारी देव असुर सुर केलि कराहीं ॥
सप्त दीप नव खंड मंड सुरचि चवदह लोक पलक की छांही ॥१॥
संकर ध्यान धरै जाहि खोजन मन मनसा होऊ औगाहीं ॥
आदि अन्त अनंत नाथ गति मुरझो सिभु विचारत माहीं ॥२॥
ब्रम्हाहूं ब्रम्ह सम्हारत भूले हम आये कहां तैं कवण दिस जाहीं ॥
कंवल कली खोजत कल वीते यह अचिरज देख्यो न कहांहीं ॥३॥
वो अंकार सबद सुणि सकुचे सोचत सुनत अहं तजि काहीं ॥
परसराम ता प्रभु की ताकौ समझि न परी सु अजहूं पछिताहीं ॥४॥१०८॥

राग सारंग–

श्री गोपाल तिलक त्रिभुवन तन धरि हित करि जो गावै ॥
जाणि ाज पद प्रेम भजन सुख मन वंछित फल पावै ॥टेक॥
परसराम अरथ मुकति पदारथ जैसों जाकौ भावै ॥
राग सार ा कृपाल कृपा करि जो सनमुखि सिर नावै ॥१॥
भजि मन रानम पर्म वडभागी नरहरि भक्त कहावै ॥
जाकी सोज सि सूर न त्यागी पंडित गुणी न आवै ॥२॥

सोही उत्तम औतार सिरोमनि चरण कमल चित लावै ।।
हरि कलपवृछ सेवत जन परसा सो न वहुरि पछितावै ।।३।।१०६।।

राग सारंग–

जो कोई गोपालहिं गावै ।।
सोई सूर पंडित मुनि त्यागी नर उतिम औतार कहावै ।।टेक।।
सोई कवि गुनी जान सुचि सवतै भयो पवित्र न पतित कहावै ।।
सदगति सदा रहे सतसंगति पीवै प्रेम परम गति पावै ।।१।।
परम पुनीत नाव सुमिरण मुखि आप सुमरि औरनि सुमरावै ।।
परसराम ता जनकी महिमा सेस कहै तऊ कहत न आवै ।।२।।११०।।

राग सारंग–

भावै मोहि नांव गोपाल लाल जीको ।।
जदपि कछु कहौ कोई क्यौंही सोई मोहि अति लागत है फीको ।।टेक।।
हरि सुन्दर सुख रूप सुमगल पद गावत सुमिरत अति नीकौ ।।
जै दरसत परसत पति ऐसो भूरि भाग कहियत तिनही कौ ।।१।।
पीवत प्रेम नेम धरि सेवत संत सदा हरि सिन्धु अमी कौ ।।
निर्मल अकल सकल निसतारण साखी सव कोई ताही को ।।२।।
औरन कछु सुहाई सुरस तजि ग्यान विचार न लगत सही को ।।
परसराम प्रभु परम सनेही हरि प्रीतम सवही को टीकौ ।।३।।१११।।

राग सारंग–

करियै मन गोपाल सनेही ।।
सरनाई सम्रथ सुख दाता निगम साखि सवको फल येही ।।टेक।।
कह्यौ मानि कछु समझि सुरत करि करूणा सिन्धु सुमरि किन लेही ।।
असरन सरन अनाथ बन्धु बिन सर्वस जिन खोवे करि खेही ।।१।।

जाकै प्राण नाथसौ प्रीतम ताहि विपति व्यापत वौ केही ॥
जानत सकल सूल अंतर की दुख सुख सोच पोच मन रेही ॥२॥
दीन दयाल भगत वछल भजि पुनरपि जनम धरिये देही ॥
परसराम प्रभु अंतर जामी जैसे कही इत हरि हैं तैसे ही ॥३॥१२०॥

राग सांरग-

गोपाल भजन किन करिये हो ॥
करूणा सिंधु सहाई सकल पति तजि भ्रमि कूप न परिये हो ॥टेक॥
गर्भ वास में वास सदा फिरि फिरि जमदण्ड न भरिये हो ॥
विनि भगवत भजन भैं जुगि जुगि जनमि वह मरिये हो ॥१॥
परहरि और उपाय सकल सुख हरि मारगि अनुसरिये हो ॥
जन जीवनि दुख हरण कृपा निधि निज नायक वर वरिये हो ॥२॥
निर्भै पद निर्वानि महावल प्रकट सुजस उर धरिये हो ॥
परसा प्रेम सरस रसनां अचवत तृपति न करियैं हो ॥३॥११३॥

राग सारंग-

हूं गोपाल भजन को पाऊं ॥
त्रिपति न करौं पर्मरस अचवत या रसनां रचि कै जसु गाऊं ॥टेक।
तिरि भव सिंधु सरणि सतन की निर्भै निज नीसांण वजाऊं ॥
छांडि सवै तन मन मेरे की सनमुख होय चरननि कौं धाऊं ॥१॥
यौं ससार कठिन करूणा मैं ता दुख मैं फिरि काहे कौ आऊं ॥
परसराम जल बून्द होय कै प्रभु हरि दरिया मद्धि समाऊं ॥२॥११४॥

राग सारंग-

कृष्ण कृपाल कंवलदल लोचन सब कारन करन येही ॥
कृपासिधु कल्याण करन पदसेय सुमरि किन लेही ॥टेक॥

कृपानाथ कलि मूल कलपतर कलीकाल सरनाई ।।
कीरति रूप करण किरतारथ कलिमल हरण वडाई ।।१।।
कुसमनाभ कवलापति केवल कंवलाकंत कन्हाई ।।
कामरूप कामेस कामकुल कामहरण हरिराई ।।२।।
केसीदवरण कालछल कँसोकाल राजगति साई ।।
महाकाल कालेसुर करता कायाकाल न खाई ।।३।।
कृपन पार कर पार कमठवर करूणामैं सुख दाई ।।
करूणासिन्धु परम मंगल भजि परसा अनत न जाई ।।४।।११५।।

राग सारंग—

भावत है मन मोहन गायो ।।
जनमि जनमि जो प्राणसनेही सोई प्रीतम क्यों त्रिसरत विसरायो ।।टेक।।
भगत वछल भैहरण कृपानिधि
करूणासिधु संगि मैं पायो ।।
अब न तजूं तन मन दे भजिहूं
मन क्रम वचन सत्य उरि आयो ।।१।।
उदित भयो निज भान सुमंगल मिटि
गई निसि निज वर दरसायो ।।
प्रेम सिन्धु सुखरूप सुमंगल
आपण अजैं जगत जिन जायो ।।२।।
जिनि जिनि भज्यो प्रगट तिन तिन कौं
सकल विस्व मुख मद्धि दिखायो ।।
परसराम प्रतिपाल करण प्रभु
ब्रम्ह जीव संगि रहत समायो ।।३।।११६।।

राग सारंग-

भजिवे कौ तरसत जिय मेरो ॥
अंतरि ध्यान रहौ हरि तेरौ ॥टेक॥
अंतरि वसौ ब्रम्ह वनवारी ॥
राखौ सरणि करो रखवारी ॥१॥
तुम गोपाल अधिक मोहि प्यारे ॥
नैननितैं जिनि होउ नियारे ॥२॥
यो रस रसिक मनोहर पाऊं ॥
परसा प्रेम सरस जस गाऊं ॥३॥११७॥

राग सारंग-

तरसत मन मोहन कै ताईं ॥
देखि सघरा चात्रिग की नाईं ॥टेक॥
विरह अगनि तन मनहि जरावै ॥
सहिन सकौ दुख कोई न वुझावै ॥१॥
नैन सुरति पतिपल न विसारूं ॥
हरि मारग चितवत तन हारूं ॥२॥
अति आतुर पल रह्यो न जाई ॥
हरि विन विरह भुवगम खाई ॥३॥
कव देखौं जीवनघन प्यारो ॥
परसा जावसि प्राण हमारो ॥४॥११८॥

राग सारंग-

हरिजन हिति निज निर्वाण कह्यो ॥
अभै अगाहि सुन्यौं श्रीमुख तें विधि निधि जानि गह्यौ ॥टेक॥

मन मैं कसि मनसा मन वसि करि रचि रचि प्रेम मढ्यो ।।
वड नीसांन उजागर सुनियत गरजत गगनि चढ्यो ।।१।।
नारद व्यास निगम रस विलसत रसुनां सव निरढ्यो ।।
गावत सेस सिभु सनकादिक पद सुख सिंधु बढ्यो ।।२।।
श्री गुरू समझि सुअखिर वांच्यो हित सुक सुभटि पढ्यो ।।
निर्मल नांव प्रगटि उरि राख्यो भैं भ्रम सूंड सढ्यो ।।३।।
वांध्यो गांठि खरौ निर्मोलिक तन मन प्राण चिढ्यो ।।
हरि जीवनि हरि व्यास कृपा तें परसा हृदै दिढ्यो ।।४।।११९।।

राग सारंग-

भगत सुपति मेरी निज आस ।।
यह सुमरन नित नेम हमारै अविनासी वल और विनास ।।टेक।।
हरि मंदिर हरि दास हमारै तामैं वसूं कियै रिधि वास ।।
जद्यपि रहूं सकल मैं व्यापक जन मैं मेरौ पर्म निवास ।।१।।
भगत मूल साखा भई वांणी फल मैं अजरसु अकल उदास ।।
धनिवै जन मन सौं मिलि विलसत सोई फल अंतरि धरि वेसास ।।२।।
भाव भगति परतीति पर्म गति गावत सुमिरत सरस विलास ।।
वै जाणत मेरी गति सति करि प्रेम भजत तजि आसा पास ।।३।।
भगत विडद विसरू नही कवहूं सुमरन करूं धरें मनि व्यास ।।
परम पुनित अधिक हितकारी भगत कर्म काटण भौ पास ।।४।।
तप तीरथ व्रत सव सुख सेवग दरसनि परसि मिटैं सव त्रास ।।
भुगति मुकति वैकुंठ आदि दै टीकै भगत दुती कौ नास ।।५।।
मैं जगतपिता जगदीश जगतगुर भगत सुगुर मेरे मैं दास ।।
परसराम प्रभु आप कहत यौ साखि सुनन नारद मुनि व्यास ।।६।।१२०।।

राग सारंग—

प्रभु जीसो प्रभुही सुखदायो ।।
याहि श्रंमरि यह विपति हमारी और हरन हरि कौन कहायौ ।।टेक।।
निवही आदि अंति आतुरता प्रथम साखि त्यौं गज मुकतायो ।।
अति श्रमवंत दूर पंथी ज्यौं वदन देखियत रज लपटायौ ।।१।।
सुरति सुवसि सायक सारंग ज्यौं हुतो निकट पैं दूरि वतायो ।।
नाच्यौ हूं वसि पर्यो तुम्हारे ज्यौं जाण्यौं त्यौं तुम ही नचायौ ।।२।।
राजा कह्यो सुण्यों मैं सोई गयो तहीं चलि जहां पठायौ ।।
तैं द्रोपती बहुरि हूं सुमर्यो उलटि वहां तैंईहां वुलायौ ।।३।।
भगत हेति आधीन धेन ज्यौं वंध्यो प्रेम जन हाथि विकायौ ।।
सहि न सकी सोई विरंव सुनत ही अति आतुर तातैं हूं आयौ ।।४।।
पूंछति रजपट सौं पाय लागति भयो हमारे मन को भायौ ।।
वड वाहरू प्रगट भयो परसा दरसि परसि दुख दूरि गवांयौ ।।५।।१२१।।

राग सारंग—

हरि हित करि जाकैं वसि आयो ।।
ताकौ कारिज सुफल सत्य करि हरि कियो काहूं पैं न करायो ।।टेक।।
अवगति अविनासी अजनमा फल सोई वसुदेव देवकी पायो ।।
चिंता हर वालक वपु धरि हरि भुज भीतरि उरसौं लपटायौ ।।१।।
त्रिभुवन वर व्यापक सचराचर माखरण साटैं महरि नचायो ।।
नाच्यो घर बाहिर व्रजवन मैं गोद लीये नर नंद खिलायो ।।२।।
ज्यौं काम दुग्धा लंधुवछ वाणिजितही तितचलिदुखदोष दुरायो ।।
गोपी गायग्वाल लीलासुखविलस्यो मिलिहरि कौं अति भायौं ।।३।।
ज्यौं वालक वसि मातपिता सवसूंपि दियो कछु वैन दुरायो ।।
यौं अपणें जनकौं आपणपौं परसा प्रभु दे भलौ मनायो ।४।।१२२।।

राग सारंग–

जो वृत धरि  हरि  हाथ  विकायो ।।
ताही कै वसि भगत वछल भयौ सुमर्यौ जहीं तहीं आयो ।।टेक।।
प्रथम साखी प्रहलाद प्रगटही जाकौं हरि जहां तहां दरसायो ।।
जलथल गिरज्वाला खड़ग खंभ मैं बोलि उठ्यो जन जहीं बुलायो ।।१।।
श्री नरसिंघ देव सोवसि करि असुर भुवन भीतरि पधरायो ।।
जन लीयो उछंगि तात माता ज्यौ चाटत हरि चूंबत उरि लायो ।।२।।
सज्यासन वैकुंठ श्रिया सुख गरूडासन आवत छिटकायो ।।
अति आतुर करि धरै सुदरसन ग्राह ग्रह्या तैं गज मुकतायो ।।३।।
राखि लियो पंडव कुल कलतैं लाखाग्रह जरतैं न जरायो ।।
सोई प्रगट्यो पूरन द्रोपती कौ चीर चिता तैं राट उठायो ।।४।।
गर्भ कष्ट भैभीत परीछत ब्रम्हशस्त्र तैं जरत बचायो ।।
सोई पति प्रगट महाभारत मैं चक्र लिये भीषम दिसि धायो ।।५।।
तरू तारण कारण करुणा मै आप अलूखल बैठि बधायो ।।
परसराम प्रभु सौ प्रभु कोई जन कौ जन हरि सौ न कहायो ।।६।।१२३।।

राग सारंग–

जिन हित करि कौ जस गायौ ।।
ताहीं कौ सर्वस हित करिकैं हरि दीयो कछु वैन दुरायो ।।टेक।।
पायो सुख संतोष त्रिपति घर हरि जल सौ उर जरत बुझायो ।।
सोई सोई परम पवित्र भयो जनग्र भ संकट फिरि वहुरि न आयो ।।१।।
जाकौ प्रेम नेम लै निबह्यो हरि पतिव्रत उर तै न डिगायो ।।
ताकी समतिहूं लोक उजागर सुन्यो न कोई काहू न वतायो ।।२।।
जिनि जिनि हरि अमृत रस पीयो तिन तिनकौ रस और नभायौ ।।
परसराम हरि सुख सु मिलत जो ताही अवरसुखलगत अभायो ।।३।।१२४।।

राग सारंग–

भगतअछल मोहि गायो ही भावे ।।
मन क्रम वचन सत्य सुमिरन कौ हरि विन हृदै और नहीं आवै ।।टेक।।
हरि उग्रसेन कौ छत्र सिघासन दे आपण आगै सिरनावै ।।
व्है सेवग सुकुंवार सकल पति चरण जुगल करसौ सहिरावै ।।१।।
करि सेवा सब टहल जिग्य की चरन धोय नृप बोली जिमावै ।।
दीन दयाल भगत हितकारी पार ब्रम्ह कर झूंठि उठावै ।।२।।
जग्य पुरुष पाछै चिति आयौ सुधिन भई ऋतु लागि बधावै ।।
कीट पतंग सकल विस्वपूरण मांगि प्रसाद दास पैं पावै ।।३।।
जिन लिनों चक्र महाभारत मै देखत सुभट प्रगट जो धावै ।।
राखत पैज भगत भीषम की अपनी निज परतीति दुरावै ।।४।।
सुरग सधीर कूप की सेवा गज चींटी कै नेत्र समावै ।।
परसराम भगवंत भगत वसि महासिंधु कौ बूंद न चावै ।।५।।१२५।।

राग सारंग–

सोई भगवंत भज्यौ मोहि भावै ।।
जाको नांव अगम अपजारण सुणावत सुनत परम सुख आवै ।।टेक।।
ज्यौं अंध भुवन निज दीप प्रकासे तव सब सूझै भ्रम तिमिर बिलावै ।।
सूका तिन तूल अनेक मेरे सम छिन यक पावक प्रगटि जरावै ।।१।।
ज्यौ दिनकर उदै मिटै निसि देखत सुधिन परै कहूं जाहि समावै ।।
ऐसो अकल सकल दुख टारन जो सुमरै सोई सुख पावै ।।२।।
सिव विरंचि सनकादि सेस सुक नारद व्यास निगम निति गावै ।।
परसा तारण राम प्रगट जस पतित पतित सब सरनि बुलावै ।।३।।१२६

राग सारंग–

भजिवै कौ हरिसम कोई नाही ।।
महाकलपतरु प्रेम सरस फल पर्मनाम निर्मल थिर छांहीं ।।टेक।।

श्रोतिरै भव सिंधु नांव वलि निकसि निसंक परमपुर जाहीं ॥
महा पतित लै संगि सत्य करि निर्वहै आपण दै वाहीं ॥१॥
भाव भगति वेसास भज्यो जिन वैन कदे जन फिरि पछिताहीं ॥
हरि सुमिरत तन ताप न व्यापै अभै सरणी छली काल न खाहीं ॥२॥
परम रूप मिलि रूप न धरि हैं नानां रूति अवतार विलाहीं ॥
परसा पूरन ब्रम्ह प्रगट योही घट धरि अघट विराजत माही ॥३॥१२७॥

राग सारंग-

हरि विन और कहूं सुख नाही ॥
मैं देखी सब ठौर अवर फिरि जनम करम भर्म्यो परि माहीं ॥टेक॥
सुर्ग मिर्ति पाताल आदि जौनि अनेक सुगिणी नहि जाहीं ॥
लघु दीरघ जलथल कुलकाया हूं कितीयेकुकछू जुअगिण औगाहीं ॥१॥
आवत जात खिर्यो वहु वरीयां मन मनसा सुन पल पछिताही ॥
महा मोह अग्यान अंधमति उरझि पुरझि वझीविपै समाहीं ॥२॥
अहंकार की झाल जलत जग सुधि न सभाल सुवादि विलाही ॥
ता महा प्रलै वूडत जिनि राख्यो परसा वे पति अब न भुलाहीं ॥३॥१२८॥

राग सारंग-

सव सुख तजि भगवंतहि भजिये ॥
अष्ट सिद्धि नव निद्धि आदि दै इन्द्रविभौ वदिये वेकजिये ॥टेक॥
भोग विलास स्वारथ मिलि धन जोवन अपनाय न सजियें ॥
सव वैकाम राम सुमिरन विन अमृत डारि अखाज न खजिये ॥१॥
सुक चींटी माखी कपि कैं ज्यौं परवसि तन मन वेचि न वाझीये ॥
महा मोह भव सिंधु जगतपुर प्रगट अग्नि परिमांहि न दाझीये ॥२॥
धृग जीवनि अपणों पति परहरि देखि अनूप आन मन रजीये ॥
सोई विवचार कीयां फल ऐसो परसराम सति करि पति लजीये ॥३॥१२९॥

राग सारंग-

करिये हरि सुमिरण सौं पिछाणी ।।
पायी भेद भर्म कित वहीये पकरि जीवकी वांणी ।।टेक।।
आन धर्म अपमारग परहरि निर्भै निज उर आणि ।।
अन्तरजामी अकल सकल पति भजिये सारंगपाणि ।।१।।
प्रेम सरस रसनां रटिये मेटि कर्म की कांणि ।।
दिढ वेसास परम पद परसा पर्म सनेही जाणी ।।२।।१३०।।

राग सारंग-

हरि भजि तजिये भ्रम आसा पास ।।
मन क्रम वचन सत्य करि करिये अवर सकल को नास ।।टेक।।
जव लगि मन विश्राम न पावै तव लग वहुत विनास ।।
त्रिपति हीन कलपत कलिजुग मिलि पडत काल की पास ।।१।।
महा मोह भव सिंधु सु पावक विष भोजन घर वास ।।
संसौ सदा रहै सुख नाहीं तौका सेयैं वनवास ।।२।।
कहि सुणि करि जो रहै निऊतर पसु होय चरै न घास ।।
तौ घर मैं वसि भावै वसि वन मैं जो उपजै वेसास ।।३।।
प्रेम भगति सदगति रस विलसै हरि सुख सिंधु निवास ।।
परसराम तन धर्‌यो सुफल सोई सकल अरत निजदास ।।४।।१३१।।

राग सारंग-

भौ तारण हरि नांव प्रगट जस जाकाहूं कौं भावै ।।
सोई कविसूर पर्म तत्ववेता पंडित गुणी कहावै ।।टेक।।
वईसी सूद्र खत्री द्विज अंतिज जो हरि कों सिरनावै ।।
सोई सोई पर्म पवित्र पर्म गति हरिपुर मैं घर छावै ।।१।।

सकल धर्म व्रत जग्य जोग तप तीरथ जो मन न्हावै ।।
तऊ हरि सुमिरण विन सुद्ध न होई गर्भवासि फिरि ग्रावै ।।२।।
ग्रति ग्रम्रत निधि प्रेम परम रस पीवै सोई सुख पावै ।।
तन मन पलटि कीट भृंगी ज्यौं जीव ब्रम्ह होई जावै ।।३।।
सिल सिलतर गनिका गज वनचर व्याध वकी द्विज गावै ।।
परसराम साखि पतित पावन की श्री गुरू संत वतावै ।।४।।१३२।।

राग सारंग–

जापर कृपा कृपाल करै ।
ताकौ श्रीपति सकल संपदा दै दुख दोष हरै ।।टेक।।
महा इन्द्र प्रहलाद थप्यौ थिर ध्रूपुर पुरनि परै ।।
वभीषण लंकेसराम वलि काहूं तै न डरै ।।१।।
सिघासनि वैठाय तिलक दै ग्रापण पाय परै ।।
भगत राज पदई कौ ग्रपणै जन सिरि छत्र धरै ।।२।।
करुणासिधु सकल सुखदायक दीन सुभाव वरै ।।
निति नेम गहै नृप हेति सुमंगल पंडू सग विहरै ।।३।।
जग तारण द्रोवै पटपूरण वाचा तै न टरै ।।
भगत वछल भीषम पति राखण भारथ जाय लरै ।।४।।
हरि पर्म जिहाज सुजस पावै सोई भव तिरि पार परै ।।
रहै ग्रमिल जन प्रभु मिलि परसा जनमैं सो न मरै ।।५।।१३३।।

राग सारंग–

तुम हरि ग्रसरण सरण सवै ग्रौ गाहै ।।
हम ग्रसरण सरनाई चाहै ।।टेक।।
तुम दीनवन्धु हरि दीनदयाला ।।
हम है दीन ग्राधीन दुखाला ।।१।।

तुम अनाथ के नाथ कहावत ।।
हम अनाथ क्यों तुमहि न भावत ।।२।।
तुम अपन पाल कृपासिंधु कहावो ।।
हम हैं अपन तुम कृपा न दुरावो ।।३।।
पतित पवित्र करन तुम कहिये ।।
मोसौ पतित अवर कोई लहिये ।।४।।
तुम दया सिंधु दातार गुसांई ।।
हम तुम विन निजल मीन की नाई ।।५।।
सुणि सुणि साखी सरन हू आयो ।।
सरणि गयो सु न कोई पछितायो ।।६।।
परसा जीव सरणि कहा आवै ।।
सकति सरणि तेरो विरद बुलावै ।।७।।१३४।।

राग सारंग–

वरत उधारण कौ हरि साह्यो ।।
सरणी गयो सोई निर वाह्यो ।।टेक।।
भव बूडत गज पारि पठायो ।।
गज सगति हरि ग्राह बुलायो ।।१।।
गनिका हरि पुर मैं घर छायो ।।
विप्रन फिरि ग्रभ संकटि आयो ।।२।।
गीध समाहि न भौ भरमामो ।।
व्याधि न खिजिजम लोकि वसायो ।।३।।
वकी जसोदा कौ फल पायो ।।
कर सौं गहि उरसौ हरि लायो ।।४।।
सोई हरि अंतरि रहत समायो ।।
परसा मन दै जात न गायो ।।५।।१३५।।

राग सारंग-

हरि कौ महा प्रसाद जो पावै ।।
तन मन सुद्ध होय ताही को सोई फिरि कै ग्रभवासि न आवै ।।टेक।।
हरि नई वेद प्रेम नेम सौ मनसा वाचा करि जाहि भावै ।।
जानत सकल संतत सुख की महिमां वहू ब्रम्हा मुखि गावै ।।१।।
वर्त जग्य सदगलि सव कोई हरि भुगता तहां सव त्रिपति ता पावै ।।
साखा पत्र पहुप फल पोपे जु मूल समझि जड मैं जल नावै ।।२।।
मानै कोई साधु असाधु न मानें निगम सदा कहि कहि समझावै ।।
एक सीत हरि की जूठनि कौ सकल विस्व वैकुंठ पठावै ।।३।।
सैवे सदा सुब्रत धरि हरि कौ तन मन सौंपि सुभोग लगावै ।।
परसराम निर्मल जन पदई तामै और न कछू समावै ।।४।।१३६।।

राग सारंग-

जिनि हरि सुमिरन व्रत धर्‌यो ।।
आवागवण विसुद्ध नांव रतनन धरि सो न मर्‌यो ।।टेक।।
लोक वेद भ्रम आसपास दिस और सवै विसर्‌यो ।।
प्रीतम प्राणनाथ अधमोचन सोई वर जाणि वर्‌यो ।।१।।
सोई पंडित रिणि सूर महामुनी हित सौ हरि सुमर्‌यो ।।
नरक खरक दुख सुख तें न्यारो दहूं तें दुरि टर्‌यो ।।२।।
कहा भयो जो राम रूप धरि आपण दिष्टि पर्‌यो ।।
सो न धरै परतीत कर्म की जिनि निहक्रम अजर जर्‌यो ।।
नाहीं कछू दास कै भावे जुहरि भजि प्रेम भर्‌यो ।।३।।
और उपाय न ठौर सु निर्मल देख्यो सुण्यो कर्‌यो ।।
परसराम प्रभु नांव महानिधि हरि भजि सवै सर्‌यो ।।४।।१३७।।

राग सारंग-

हरि सुमरै सोई सति विचारो ।।
और जनम बेकाम राम बिन कोटि कलप जीवनि सोई डारो ।।टेक।।
ज्यौं बरषा रूति बूंद सिन्धु मैं आय मिलै सोई जल खारौ ।।
ता सायर संगि सीप स्वाति रत तासुत निपजि नीरहू तैं न्यारो ।।१।।
ज्यों थ्रिक चन्दन संगति अहि सीतल सरस सुगन्ध देव गति प्यारो ।।
और सकल पावक कै कारणि अगिणत काष्ठ अठारह भारो ।।२।।
ज्यों मधुरिष मधुकरत एक तरत व देखै सब प्रगट उघारौ ।।
नर बनचर पंखी पसु काहू यह न समझी खोजी खल सारौ ।।३।।
वहु खग बैखग सूर सुरग समि नहीं गमि नीर खीर निरवारौ ।।
हंसे यहै सुभाव सहज ही सूखिम समझी सुरती व्यौहारौ ।।४।।
ना कछु मेर सुमेर महागिर अतिर अभखि अरू बूडन हारो ।।
ताकी गति प्रापति काकी मति जु पारस परसि मिटै कुल कारौ ।।५।।
मन क्रम वचन अवीसर पति कौं हेति भजै तजि आस पसारौ ।।
परसराम तासम कोई नाहीं जाकै निस दिन अगम उजारो ।।६।।१३८।।

राग सारंग-

प्रभुजी सौं प्रीति परम सुख सोई ।।
प्रीति कीयां प्रीतम वसि होई ।।टेक।।
तन मन धन हरि कै वसि कीजै ।।
ताहि हरि कौ नाम नेम धरि लीजै ।।१।।
हरि सेवत सुमिरत मन धीजै ।।
सोई हरि रूप नैंन भरि पीजै ।।२।।
जीवन जनम सुफल फल येही ।।
जो हरि सौ करियै परम सनेही ।।३।।

भाव भगति हित कीयो जानैं ।।
सर्वस ताहि देत न मानैं ।।४।।
परसराम जन विरंब न कीजै ।।
हरि प्रीतम प्रान नाथ करि लीजै ।।५।।१३९।।

राग सारंग—

याही कृपा दीन परि कीजै ।।
मन क्रम वचन तुम्हारो सुमिरन सेवा मोकौ दीजै ।।टेक।।
दिढ वेसास उपासन हरि हरि उपजै प्रेम भगति मन धीजै ।।
पर्म रसाल रसायण रसुनां गाइ गाइ श्रवननि सुणि लीजै ।।१।।
अभै करण निज रूप तुम्हारों प्रगट देखि मेरो प्राण पतीजै ।।
सीस नाय कर जोरि सुमन दै जनम सुफल अपणौं करि लीजै ।।२।।
परम उदार दरस नखसिख लौं निरखि निरखि लोचन भरि पीजै ।।
परसा परम सुमंगल परसत वारि वारि तन मन डारीजै ।।३।।१४०।।

राग सारंग—

तुम विन कौन गरीव निवाजै ।।
दीन दयाल भगत वछल प्रभु कृपन पाल वृद तुमहि विराजै ।।टेक।।
जापरि कृपा कटाछि तुम्हारी सोई नीसाण मढयो सुरि वाजै ।।
अभै प्रताप दियो सो दुरै क्यौ तीन लोक उपरि चढि गाजै ।।१।।
रहत निसंक मगन लयो लाये नैक न मनहूं जगत तै लाजै ।।
परसराम प्रभु तुम्हारै नाव वलि जावत और सकल वेकाजै ।।२।।१४१।।

राग सारंग—

तुम विन को पतितन को तारै ।।
बूडत मिलि भव दोष सिंधु मैं दया सिधु दे बांह उबारै ।।टेक।।

अपणें निकटि राखी सुख पोषै अभैदान दे कैं भै टारै ।।
जु राम रमण जम ताहि न ग्रासै जो कोऊ हरि की सरणि संभारै ।।१।।
वकी व्याध गनिका द्विज गज सिल सिंधु नांव की पैज पुकारै ।।
आदि अंति निरवाह् विडद को परसा प्रभु विन को प्रति पारै ।।२।।१४२।।

राग सारंग–

जा प्रभु कौं सकल लोक की लाजा ।।
सोई मेरैं वडराज विराजत महाराज राजनि के राजा ।।टेक।।
जल थल सकल जीव जुग जामें ताही मैं आपण जयो आजा ।।
सुर्ग निरति पाताल आदि कै हरण करण सारण सव काजा ।।१।।
हरि सम्रथ भव रूप सिन्धु मैं पर्म नाम की वांधी पाजा ।।
तिरत अनेक निसंक सक तजि वरजि सकै को है अन्दाजा ।।२।।
अभै राज अस्थिर घर निज वर पलटि न कवहूं होत दूराजा ।।
आदि अंति इकतार एक रस रहत सदा हरि पुर हरि आजा ।।३।।
अष्ठ सिद्धि नव निद्धि नियादर भूली फिरत मुकति वेकाजा ।।
सिव विरंचि श्रुति सेस सुनत धूंनि सवद अनाहद वाजै वाजा ।।४।।
हरि सुख सिंधु पर्म सोभा सम दीजै को नाहिं न उपराजा ।।
परसराम प्रभु अखिल भुवन पति पार अम्ह सवके सिरताजा ।।५।।१४३।।

राग सारंग–

वैसी प्रीत प्रगट जो होई ।।
जैसी मन मोहन उर उपजी तन मन अंतर खोई ।।टेक।।
बस नहीं न तन खीन दीन द्विज आवत वखिल गोई ।।
ता सनमुख धावत उठि श्रीपति अति आतुर रूति जोई ।।१।।
मिलत निसंक अंक भरि भरि हरि हृदै लगावत रोई ।।
सोई धरत न धीर निमष निज निर्भै भै टारण प्रभु सोई ।।२।।

ले आये भुज भीरि भुवन मैं अति हित सौं उर ढोय ।।
दे आदर आसन सिंघासन लेत चरण रज धोई ।।३।।
बूझत कुसल सकल पति सति करि कही कृपा करि मोही ।।
गुर हित निसि वनि वसे सुदामा सुधि आवत है तोहि ।।४।।
जो कछु हमहि ले आये हित करि राखत कहा लकोय ।।
देत दया करि सकल संपदा मांगत तदुल दोय ।।५।।
करूणा सिंधु पर्म सुखदायक सम सेवग नहीं कोय ।।
परसराम प्रभु हरि जन कौ जस गावत प्रेम समोय ।।६।।१४४।।

राग सारंग–

जब लग प्रेम भगति नहीं लहिये
धृग सोई जन मन जीवन कहिये ।।टेक।।
जव लग दास भाव नहीं आयौ ।।
तौ रतन जनम भ्रमि वादि गमायो ।।१।।
जब लग ब्रम्ह सुदीपक नाहीं ।।
तो चार्‌यों सूनि सदा निसि मांही ।।२।।
जब लग फल वेसास विसार्‌यो ।।
तब लग राम महानिधि हार्‌यो ।।३।।
सतगुरू सबद स्वाद नहिं आयो ।।
परसा सो प्रान कलि लै खायो ।।४।।१४५।।

राग सारंग–

तुम हौ उत्तम जात के जिनि कहौ हमारी ।।
मैं महापतित कुल जाति हीणं दहूं नष्ट भिखारी ।।टेक।।
सुचि संजम आचार विधि करणी तुम जानी ।।
मैं राम कहयां तें सुख लहूं मति मूढ अज्ञानि ।।१।।

तुम सुरता वकता बडे हमहीं कछु नाहीं ।।
परसराम व्यापक ब्रम्ह देखौं सब माहीं ।।२।।१४६।।

राग सारंग–

जो जन सांचै ही गोविंद गावै ।।
अष्ट सिद्धि नव निद्धि सकल सुख घर ही बैठो पावै ।।टेक।।
काम क्रोध अभिमान चातुरी त्रिष्णा चित न डुलावै ।।
संसौ कहा पर्म पदई कौ उधरत वार न लावै ।।१।।
माया मोह लोभ दुख पूरण कलियुग घोर कहावै ।।
परसुराम प्रभु सौं मन मानें तौ दुख मैं काहै कौ आवै ।।२।।१४७।।

राग सारग–

हरिजन जीवै हरि गुन गाय ।।
हरि प्रीतम भजि और ठौर कूं सो न मरै पछिताय ।।टेक।।
हरि तैं विमुख जीव आसा वसि भ्रमैं जहां तहां जाय ।।
दीन मलीन लोभ कौ घाल्यो घरि घरि द्वार बिकाय ।।१।।
हरि वेसास त्रिपति सुख ताकै जाकै स्याम सहाय ।।
सदा अकल्प अभैवल परसा कारण केसौराय ।।२।।१४८।।

राग सारंग–

हरि गुन गावत मन पतियाइ ।।
हरि सेवा सुमिरन विन करिये सुआन धर्म न सुहाई ।।टेक।।
पावन नांव पतित कौं तारण सुमिरै सु न पछिताय ।।
जिनि जिनि भज्यो भजै जै अवतें सु वसै परम पद जाय ।।१।।
जावैं सवै बहि और अविद्या रहौ भजन वलि भाय ।।
परसराम जस नेम हमारै जीवनि जादूंराय ।।२।।१४९।।

राग सारंग-

हरि की भगति सत्य फल सोई ॥
और कर्म भर्मादि बादि रस हीरण सु पोरिस छोई ॥टेक॥
आसरण पवन उड़त मौंनि मन हठि मन सुद्ध न होई ॥
हरि सेवा सुमिरन बिन साधन साधि पर्म सिधि खोई ॥१॥
तप तीरथ व्रत जग्य जोग करि कारिज सर्‌यो न कोई ॥
हरि करण बिन सब धर्म निबीरज द्वारैं लहत न ठोई ॥२॥
सुचि संजम न वेद विद्यावल विधि निषेध करि जोई ॥
पाप जीव के प्रभुबिन परसा को डारत है धोई ॥३॥१५०॥

राग सारंग-

विद्र वस्यां हथनापुर गांव ॥
और सबै बड़ाई बादि भगति बिन का दुरजोधन नांव ॥टेक॥
करि न सक्यौ सनमान स्याम कौ भाय भुवनि पधराय ॥
कीये उचिष्ट कनक मैं मंदिर मूरिख ममित लगाय ॥१॥
सर्वस सौंपि दीन दासी सुत हरि वसि रह्यो बिकाय ॥
श्री पति तहां स्वाद करि सगुसा पावत प्रीति लगाय ॥२॥
यहै साखि साची सुणी भजिये असरण सहाय ॥
परसराम प्रभु गर्व प्रहारी दीन दयाल कहाय ॥३॥१५१॥

राग सारंग—

जन कौ मोंहन अग्याकारी ॥
भगत बछलता टरत न टारो ॥टेक॥
जाकी साखि निगम निति बोलै ॥
जन कै संगि लागै हरि डोलै ॥१॥

लीला कौ प्रभु सेवग सारैं ॥
परसा जो सुमरैं ताहि पारि उतारैं ॥२॥१५२॥

राग सारंग-

हम तो हरि तुम बिन बेकाज ॥
हरि सेवा सुमिरन कौ जो सुख तन धरि कैं न सर्‌यो सोई काज ॥टेक॥
निर्फल गयो सकल सुख दुख मैं का लघु जनम कछु सिर ताज ॥
ले न सक्यो रसनां रस मन दैं भवतारण हरि नाम जिहाज ॥१॥
तिनकी कहा कहूं करुणामैं जीव तजे हरि विमुख निलाज ॥
तन मन धन दातार कलपतर सो भूलैं जो वर वडराज ॥२॥
काहू कै काहू की आसा अरु काहू कैं काहू कौ बल आज ॥
परसराम जन कहत सुनौ प्रभु मेरी तौ तुमहीं कौं लाज ॥३॥१५३॥

राग सारंग-

वदन हरि कौ हेरत नैंन ॥
सोभित मधुर मधुर गावत भावत मुख कैं बैन ॥टेक॥
अति ही उदार सुकुमार रूप देखि भयो चैन ॥
मनु मधुपनि पायो मन वंछित कुसमनि कौ ऐंन ॥१॥
कमल लोचन की चितवनी मेरे लोचननि कौं सैन ॥
मन अपणैं वसि करन कौ हरि सर्वसु भये लैन ॥२॥
गोरोचन को तिलक भाल झलकत मवि सुनैन ॥
परसराम प्रभु विराजत सुंदर वर सुख दैन ॥३॥१५४॥

राग सारंग-

जाकै उरि हरि नांव समायो ॥
ताकै हृदय सत्य करि हरि बिन कर्म न कोई आयो ॥टेक॥

परवसि परि स्वारथि की सेरी भर्मि न भेष लजायो ।।
रह्यो अकलप कलपतर कौं भजि मन अनतें न डुलायो ।।१।।
जग सनबंध मोह माया कौ देह न दाग लगायो ।।
रह्यो अलिप्त पदम पाणी ज्यौं निज मंगल पद गायो ।।२।।
चरण कमल विश्राम सदा थिर परम प्रेम घर पायो ।।
हरि सुमरन सेवा सुख परसा मानि लीयो मनि भायो ।।३।।१५५।।

राग सारंग

उबर्‌यो अभै सरणि जो आयो ।।
और असरण जीव सोधि सर्पिणी ज्यौ डाकिणी चुणि चुणि खायो ।।टेक।।
मार्‌यो मरत मोह माया कौ हरि बोलत न बुलायो ।।
अपणै वसि करि कैं नटनी नाना गति जगत नचायो ।।१।।
गटक्यौ सब संसार सभागनि रुचि सौ लगत सभायो ।।
ताहि सदा संतोष न उपज्यो मन कबहूं न अघायो ।।२।।
पसरी अगनि झाल होय आसा तिनको कौन जरायो ।।
लियो लपेट दास त्रिनि दिष्टिक जिनि देख्यो तिनि गायो ।।३।।
हरि मारग चालत भव वन मै बाघनि बीच न पायो ।।
बीच गयो काल दिष्टि तै देषत बहुरि न जननी जायो ।।४।।
अति आतुर आधीन अकेलो अबल जीव लै धायो ।।
निवह गयो सत संग सरण मिलि हरि भव पारि पठायो ।।५।।
फिरि चितयो हरि पौरि पैसतां अति भै डरत डरायो ।।
अन कहिये कहा बहोत करि परसा न कही नांव भुलायो ।।६।।१५६।।

राग सारंग-

या तौ जैहै रे रहि है नहीं देही ।।
लीजै करि गोपाल सनेही ।।टेक।।

हरि सनेह तें सुख में रहियें ।।
हरि सुख विनां सदा दुख सहियें ।।१।।
विनस जाय कछु विरम न लागै ।।
ऐसी सौज फेरि न पईयत आगै ।।२।।
जो दिन रहै सु लाहो लीजै ।।
परसा हरि निर्मल जल पीजै ।।३।।१५७।।

राग सारंग

चलिवौ तौ करिवौ न पसारो ।।
तजिता कौं भजिवो हरि प्यारो ।।टेक।।
हरि फल विन निर्फल जो करीये ।।
तन धरि-धरि मरि-मरि औतरीये ।।१।।
माया मोह प्रगट जग वेड़ी ।।
सुख मैं सोई निवहै जिन रेड़ी ।।२।।
चलिवौ अंति न उवरन कोई ।।
परसा हरि भजिये सुख सोई ।।३।।१५८।।

राग सारंग

हरि भजिये अमि कर्म न करिए ।।
कर्म करत मरि मरि औतरिए ।।टेक।।
सव परहरि हरि व्रत धरिए ।।
हरि हरि सुमरि सुमरि निस्तरिए ।।१।।
हरि विरण जो करिये सो काची ।।
परसा प्रभु भजिये सोई सांची ।।२।।१५९।।

राग सारंग

जाहि रुप नारायण परसैं भावैं ।।
सो न वहरि कवहं पछितावै ।।टेक।।

जे रुपनारायण को जस गावै ।।
सोई नर मन वंछित फल पावै ।।१।।
सदा सुखी रहै जू चलि दरसन आवै ।।
परसराम प्रभु कौं सिर नावै ।।२।।१६०।।

राग सारंग–

ऊधो भली भई तुम आये ।।
हरि प्रीतम की कथा अनूपम हम चाहति तुम ल्याये ।।टेक।।
आरति अधिक हुति सुवदन देखत ही नैन सिराये ।।
मानूं ऋति ग्रीषम के अंत कि मै दादुर मरत जिवाये ।।१।।
निसि वासुर हेरत ही तुम कौं अति आतुर हम पाये ।।
अब कहि नीकैं परसा प्रभु के गुण भुखि मीठे मन भाये ।।२।।१६१।।

राग सारंग–

सुंदर वदन रुप राजा ।।
अति उदार सारन सब काजा ।।टेक।।
जे दरसे परसे पद सेवै ।।
तन मन परम प्रेम रस भेवै ।।१।।
परसराम प्रभु कौ जे गावै ।।
मन वंछित इछया फल पावै ।।२।।१६२।।

राग सारंग

मंगल देखिये हो जहां हरि आनंद सरुप ।।
निरखि निरखि नख सिख सुख उपजत वन राजत ब्रज भूप ।।टेक।।
जहां त्रिविधि समीर चलत निज निर्मल मन वंछित सुखकारी ।।
तहां प्रभु गहिर सघन वन छाया बिहरत वधु विहारी ।।
तहां अधिक सुवास रह सितर फूले मधुकर सुर घन घोर ।।
तहां गावत गुण नाना विधि पंखी चर चात्रिग पिक मोर ।।१।।

जहां जल पूर वहत जम भगनी व्रजपति कौं अति भाई ।।
तहां जल केल करत करणा मैं सखिनि सहिति सुखदाई ।।
उमगि उमगि उरि अंक भरत हरि सोभित अधिक अपार ।।
अति औसर सुरपति सुर देखत उचरत जैं जैं कार ।।२।।
मोहे सव पसु पंखी थिर चर हरि मुरली टेर सुनाइ ।।
निर्मल सरद सरदपति निर्मल निहचल देत दिखाइ ।।
थकित भयो विधु चलत सुरग मैं देखत परम विलास ।।
प्रगट करी बृज वनिता मांड्यो जमुन तट मंडल रास ।।३।।
बाजैं वहु वाजिंद्र मधुर धुनि लागत अधिक सुहाइ ।।
तहां निर्ति करत नागरि नटवर गति उर पति सु लिपटाइ ।।
कर परि कर धारै भुज परि भुज मन हरि मनहिं मिलाइ ।।
मनूं सिखर तैं निकसि दामनी फिरी ताही सिखर दुराइ ।।४।।
ब्रम्हा वरुण कुवेर सेस सिव वैठि विमाननि आए ।।
भादूं रिति मनु सिखर सुरग के भुव वरिखण कौं छाये ।।
वरिखत प्रेम प्रवाह सु अमृत लीला आनंद कंद ।।
नारदादि सनकादि स्वाद रत पीवत मिलीं मकरंद ।।५।।
मोर मुकट सिर वन माला उर कटि काछनी वनाई ।।
श्री खंड खौरि सव गात धात दीये नाचत कुंवर कन्हाई ।।
सव सोभा की सोभ स्याम घन सुन्दर नैंन सरोज ।।
विलसत राज केलि रस दरस्यो सुगयो खिसाय मनोज ।।६।।
परम विनोद रस्यो त्रिभुवन पति देखि सकल सुख पावै ।।
देखैं सुणै सोई सोई पावन परम पवित्र कहावै ।।
सोई निहकर्म कुलीन जान घण हरि गुण गावण जोगि ।।
सदगति हरि संगति जन परसा रहै सदा आरोगि ।।७।।१६३।।

राग सोरंग—

प्राण सनेही याहो पीय दरस देऊ किन मोहि ।।
प्रीतम परम हित मिलिवै की क्यौं उपजत नहिं तोही ।।टेक।।

ज्यौं चात्रिग स्वाति प्यास नीर की पिय पिय टेर सुनाई ॥
सोइ साइक होइ लागी सरीरहि मोपै सही न जाई ॥
लीनी जीति विरह वसि अपणैं बिलपति हैं दिन राति ॥
(अब) यौं जीवन क्यौं होत हमारो प्रेम तुमारै साथि ॥१॥

ज्यौं जल हीन मीन गति यों हम तुम विन अधिक उदासी ॥
नीर घट्यां घट जात सौंज सब वढ्यां बढ़त सुखरासी ॥
यह विचारि गुन धारि धारि उर अवल विसूरत चैन ॥
हरि सुंदर वर सर्णं संग विर्णं वन से लागत ऐंन ॥२॥

ज्यों जल हीन मलीन कमलनी ससि की पोष न मानैं ॥
हरि जल रसित वोध वरषा गुण हम उरि और न आनैं ॥
जिहि करि हरि दिखावत ही सो गयो वरिषि ज्यौं मेह ॥
सोइ सुख उरतैं टरत न परसा प्रभु सौं पर्म सनेह ॥३॥१६४॥

राग सारंग–

मंगल पद गावत जन आवत ॥
नेम धरें उरि प्रेम सहित सब उमगि उमगि आनन्द वढावत ॥टेक॥
ज्यौं विद्यु प्रगट सुधा अमृत रस आपण पीवत और नि पावत ॥
सो न वदत वलि कहूँ काल कौं पूनिम पूरो सोम दिखावत ॥१॥
भूतल सकल सफल रुति रन वन भाण किरनि करि जल वरिषावत ॥
यौं हरिजन हरि अमृत वरिषत जहां तहां जस जगहिं जिवावत ॥२॥
ज्यौं सलिता जल सिंधु समागंम येक भयो दुतिया न दिखावत ॥
यौं पति संगति मुख विलसत दरस परसि मन मनहिं मिलावत ॥३॥
जै जै कार करत पुरि पैसत नर नारी कर कलस वंदावत ॥
करि सनमान सआदर सूं मिलि हरि जन हरि मंदिर पधरावत ॥४॥

पोषत सोधि परम पतितन कौं पावन करि हरि पुरि पहु चावत ।।
असरन सरन भगत भजि परसा हरिजन हरि को रुप कहावत ।।५।।१६५।।

राग सारंग-

हरि वनतैं खेलत घरि आवत ।।
सोभित अति सबकै मन भावत ।।टेक।।
नांना धुनि वंसिका बजावत ।।
निर्तत अति मन मोद बढावत ।।१।।
सब औसर देखत सुख पावत ।।
जै जै कार करत सिर नावत ।।२।।
संगि सखा बहु वृंद सुहावत ।।
उमगि उमगि गोपालहि गावत ।।३।।
पुरजन आरति कलस वंदावत ।।
सुखर पहुप पुंज बरषावत ।।४।।
जा हरि कौ मुनि महल न पावत ।।
सोई परसा प्रभु व्रजराज कहावत ।।५।।१६६।।

राग सारंग-

कालिंद्री क्रीड़त जलधारा मन मोहन सुखकारी ।।
निरखि तरंग तरल मन उमगत अति सोभा सुखभारी ।।टेक।।
संगी सखा बहु वृंद विराजत व्रज नायक अधिकारी ।।
झूलत, अतिराजत हरि औसर सुर देखत बलिहारी ।।१।।
करत सकल जल केलि कुलाहल अरस परस नरनारी ।।
गावत सारंग राग सकल मिलि सुंदर वर बनवारी ।।२।।

त्रिभुवन वर पायो वसि आयो सोई व्यापक ब्रम्ह बिहारी ॥
ब्रज नारी गोपाल ग्वाल सरस बिलसत सुमिल मुरारी ॥३॥
ब्रम्हादिक वंदन पद पावन सोई ब्रज लीला धारी ॥
देखत हरि मंगल जन परसा मुनि विसरत मन तारी ॥४॥१६७॥

राग सारंग-

को जाणें मानें हरि कैसी ॥
जो पहली कहूं आप सलझियें तौ औरनि सूं कहिये तैसी ॥टेक॥
कब पहरी गल मैं गज माला छापा तिलक दिये कब आहि ॥
कब गनिका कीनें तप वसि हरि वकी भज्यो कब मूंड मुंडाइ ॥१॥
कबहिं व्याध व्यापक हरि जानें विप्र पढै कब वेद बनाय ॥
कब पंखी मृग व्रत कीये कबहिं तिरे तरु तीरथ न्हाय ॥२॥
का सिसुपाल रिझाये कथणी जोति आप मैं लई समाय ॥
का करणी हिरणाकुस रावण दुरजोधन वैकुंठहि जाय ॥३॥
नांव रूप समृथ सम सुकृत ज्यौ हरितैं हरि कैसोराय ॥
परसराम प्रभु अकल सकल कै सदगति करण सदा सुखदाय ॥४॥१६८॥

राग सारंग-

हरिजन सब परिवार हमारौ ॥
जहां कहूं सुमिरै जो हरि कौ सोई हमकौ लागत अति प्यारो ॥टेक॥
नामदेव जैदेव तिलोचन जन कबीर सधना रैदासा ॥
पीपा पदम सूर परमानन्द सेन धनां सोझा कुल खासा ॥१॥
भीम भुवन हरिदास चत्रभुज कृष्णा कृष्ण दास आधारा ॥
व्यास तिलोक दिवाकर द्यो गूना मान्योहूं जिन हरि प्यारा ॥२॥
सोभूराम जसौधर धोमी सुमान दास कटहरियो ॥
श्री भट श्री व्यास देव परि चेरौ परसराम हरि करियो ॥३॥१६९॥

राग सारंग–

मन दै गाइये गोपाल ॥
गोपालैं गावत सुख उपजत मिटत सकल दुख साल ॥टेक॥
सरनाई सम्रथ सुखदाता कारण कलपत वाल ॥
जहां कहूं सुमर्‍यो जिन किनहू तही भये रछि पाल ॥१॥
जाकौ सुजस सकल को सोभा सुणि संकित जम काल ॥
पार करण ससार धार तैं जग जिहाज प्रतिपाल ॥२॥
विघन विकार भार भैं टारन हरि जारन अघ जाल ॥
ता प्रभु कौं सेवन सुमिरत जन जल तन जग की झाल ॥३॥
नख सिख पूरि रह्यो सचराचर सब की करत संभाल ॥
मन क्रम वचन सत्य सोई करिये प्रीतम दीन दयाल ॥४॥
सोई हरि जन सिंधु नाम जल तहां सनकादि मराल ॥
पावन परम पवित्र पर्म पद परसा परम रसाल ॥५॥१७०॥

राग सारंग–

हरि निर्मल सुख हमारौ सु अब कहा हमतैं बिगरी ॥टेक॥
क्यौं भोजन मिष्टान न भाये अणरुचि आणि अरी ॥
खायो जाय विद्र कै सगुसा सो कारण कौण हरी ॥१॥
भोजन भलो भाय करि लागै कै आपदा परी ॥
तेरै प्रीति न विपति हमारैं यौ रही रसोई धरी ॥२॥
हम राजा भूपाल छत्रपति तुम गोपाल हरी ॥
हम तुम साख न कछू सगाई मिटै न जो बिगरी ॥३॥
तुम ही से नर नृपति कहावत नरनि परि अनरी ॥
कछू कहि न सकत बलिराम काणि तैं आई आव टरी ॥४॥

वनचर ज्यौं विचरत हो व्रज मैं हरि संगति सगरी ॥
खोसत खात छाछि घर घर की साखि सबै सखिरी ॥५॥
तेरो कहा विभौ सब मेरो जांहि लेत न लगत घरी ॥
अरु देत न कछू विरंव सकल कौ होत न पलक भरी ॥६॥
काहै कौं वहु वकत वादि ही वाणी अति अजरी ॥
गाय चरावत वनहि बिरानी मति लज्जा न मरी ॥७॥
मोहि तै उपजै सव मेरी तैं कछु वैन करी ॥
अंध असमझि कहत कित ऐसी अति अभिमान भरी ॥८॥
श्री मुख वचन सुनत अरि ऐसे नख सिख अग निजरी ॥
परसा प्रभु कौं दरसि दुष्ट की दिष्टि न कदै ठरी ॥९॥१७१॥

राग सारंग–

गोविन्द गाइये मन लाय ॥
गोविन्द बिन गायां सुनि प्राणी जनम अकारथ जाय ॥टेक॥
सौंपि देह आपण पौं हरि कौं हिरदै आणि वसाय ॥
तन मन धन दे राखिये ज्यौं कवहूं छांडि न जाय ॥१॥
मनसावाचा कर्मनां जो सखस दीन्हो जाय ॥
सर्वस दीनां का घटै जो हरि लीजै अपणाय ॥२॥
हरि सनमुख रहिये सदा ही हाथ जोरि सिरनाय ॥
जग लज्या आयो अन्तर तजि लागिये हरि पाय ॥३॥
गोविन्द ग्यान ध्यान रत जो मत ताकौं काल न खाय ॥
परसराम गोविन्दहि गावत जन गोविन्द मिलाय ॥४॥१७२॥

राग सारंग–

प्रीतम करि लीजै गोपाल ॥
मानैं बहुत प्रीति को नातौ प्रीतम दीन दयाल ॥टेक॥

रहै न ऊंची ठौर विन जल ताकैं पाताल ॥
प्रीति कीयां प्रीतम पाणी ज्यौ ढुलि आवै जहिं ढाल ॥१॥
भगति हेत आधीन कृपा निधि भयो नंद घरि ग्वाल ॥
गोपी गोप लोक बृजपुर के कहत नांव नंदलाल ॥२॥
घरि बाहरि विहरत वनवारी संग लीयैं बृजवाल ॥
ज्यौ वै चलत त्यौ ही हरि चालन पसु पाल पालनि की चाल ॥३॥
अति विचित्रता धाय दीये तन उर राजत वन माल ॥
कर मुरली सिर मुकट मोर कौ आड़ तिलक दियैं भाल ॥४॥
हरि सोभित सव अंग स्याम घन लोचन वहुत विसाल ॥
पीताम्बर बांवे कटि काछैं नाचत रसिक रसाल ॥५॥
मोहे पसु पंखी थिर चर सुर भव विरंचि भू पाल ॥
परसराम प्रभु सब सुख दाता हरि मनोज कौ साल ॥६॥१७३॥

राग सारंग—

सुनियत हरिजन के रछिपाल ॥
असरण सरण अनाथ वन्धु प्रभु भगत वछल प्रतिपाल ॥टेक॥
भगति हेत औतार धरि हरिजन की करन संभाल ॥
मुकत करन वसुदेव देवकी भयो कंस कुल काल ॥१॥
जहां कहूं सुमरे तही आये आतुर दीन दयाल ॥
पंडव पण राखण द्रौवे पति हरि साखी सूं डाल ॥२॥
दोष सहै सो समझि आपकैं राखे हृदै सम्हालि ॥
निंदा करी असुर अर्जुन की सही न श्री गोपाल ॥३॥
विरम न करी भये आतुर प्रभु सिर काढ्यो लै थाल ॥
जग्य सभा माही नृप देखत हरि मार्‌यो सिसुपाल ॥४॥

राखी वहुत भगत भीषम की लज्या कृष्ण कृपाल ॥
करि लीनौं भारथ माहैं हरि अर्थ चरण चक्राल ॥५॥
निराकार आकार धारि भयो भूपनि महिं भूपाल ॥
परसराम प्रभु हरि अविनासी व्यापक जनम निराल ॥६॥१७४॥

राग सारंग–

हरि मंगल पायो सोई गाऊं ॥
अति अमृत रसनां रूचि करिहूं पीऊ पीवे ताहि प्याऊं ॥टेक॥
हरि गुन ग्यान ध्यान हरि सेवा करिकै हूं हरि कौ सिर नाऊं ॥
हरि सौं प्रभु तजि और कौ भजन भजिहूं अपनी जननी न लजाऊं ॥१॥
चरन चारु दल कमल को सरस मनु मधुकर तामद्धि वसाऊं ॥
ता रस सौ लिवलीन दीन मन मगन भयो सोई हूं न डुलाऊं ॥२॥
अब सहि न सकौं अन्तर जो उलटौ तन मन धन दै भलौ मनाऊं ॥
सौंपि दयो सर्वस रस लीयो सोई पीऊं प्यास सदा सुख पाऊं ॥३॥
निहचल निधि पाई मन वंछित हरि पुर बीचि वसौं घर छाऊं ॥
हरि सुख सिंधु समागम परसा सो परहरि भौ माहिं न आऊं ॥१॥१७५॥

राग सारंग–

मथुरा पुरि पैसंत सोभित हरि ॥
मानौं मराल के वृंद मानसरि ॥टेक॥
सखा सुमिल वहु भीर भई भरि ॥
मानौं भूपरि आयो घन घर हरि ॥१॥
जै जै कार सुनत सुरझै अरि ॥
असुर असह अघ भागि दुरे डारि ॥२॥
वाजे वहु वाजिंद्र मधुर सुरि ॥
नट नागर नाचत नीकी परि ॥३॥

हरि कौं सब परसत पाय न परि ॥
धूप दीप मंगल बहु विधि करि ॥४॥
नर नारि गावें गुन घर घरि ॥
सोभित नगर धुजा रही फरहरि ॥५॥
परसा प्रभु राजित हरि मंदिरि ॥
पावत दरस सकल लोचन भरि ॥६॥१७६॥

राग सारंग–

राजित रंगभूमि तें आवत हरि जीतें रिण खेत ॥
बर्णं अधिक संग्राम सोभ मनु चरचित अंबर सेत ॥टेक॥
हरि आये वसुदेव घरि भेटन सखा सहेत ॥
प्रेम मगन लोचन जल पूरित मिलत स्याम करि हेत ॥१॥
हरि दरसन कौं दरसि देवकी मात बलीयां लैंत ॥
ल्याई कनक थार भर मुतियन वारि वारि कें दैत ॥२॥
हरि अपार उर वारपार विण निगम कहत निति नेत ॥
सोई अपणें मुखि कहि कहि समझावत आप धर्म को भेत ॥३॥
बंधन मुकत करन हरि सम्रथ करत प्रसंसनि सेत ॥
पर उपगार निमति प्रभु परसा पावन परम सचेत ॥४॥१७७॥

राग सारंग–

चलि री सजनी हरि पैं जइये ॥
हरि सौं मिलि अपनी सब कहिये ॥टेक॥
यह जाणों कौन कहा तें आयो ॥
अलि न कहत मन की जो ल्यायो ॥१॥
सुनि संदेस मुख सो न कही सैं ॥
जब लग प्रीतम दिष्टि न दीसैं ॥२॥

न्यौतौ दीया अधरि न दीझै ।।
भूकौं भोजन पाय पतीजै ।।३।।
हरि सुख सौ सुख पाय न तजीयें ।।
करि सनेह परसा प्रभु भजिये ।।४।।१७८।।

राग मल्हार–

बोले चात्रग मोर सुनि सखी सावरण आइयो ।।
यह पछिताओ मोहि आलि हरि बिन जनम गवाइयो ।।
गवाइ जनम सुजान हरि बिन हीन बुद्धि अबला भई ।।
झुखंत निसि गोविंद कारण सूणि विण से जा रही ।।
मनि धणी चित अदेस हरि बिन नैन जल उल बल भरे ।।
चमकै सुदामनि मेघ बरिपै पावस रूति जल अति झूरे ।।
इकतार त्रिभवन मनहिं मैली कहौ सखीये किम करौ ।।
रस लूबध हरि कै रंग राति रूदन मन मांही झूरौ ।।
एक कृपन धन मन संचि राख्यो अहल जनम गवांइयो ।।
कोकिला चात्रग मोर बोले सखी सांवन आइयो ।।विश्राम।।१।।
अति घन बरिषै मेह गहर गंभीर आयो भादवो ।।
देखि नहीं जल पूरि मनि नैणों झड़ मांडियो ।।
माडियो झड़ मन माहि नैणों इन्द्र पावस ज्यौं झुरी ।।
नदीयांन नीर समाय नाहीं वहै भा दू जलभरी ।।
बोलै सुपिक बैण दादुर मोर चात्रिग केलि करें ।।
मैं मैंमंत विरह वियोग बांधी विथा दुःख विह्वल भरें ।।
देही तपति तन खीन होई नृगुण सरसूं कै सुआ ।।
मनहिं मारि विसारि मेली कहौ औगुण हम किआ ।।
बिलबिलूं ठाढ़ी झूरौ मनि नैण न देखौ माधवो ।।
जल पूरी नदीयां प्रीति पावस आयो कैसो भादवो ।।विश्राम।।२।।

आयो आसोज मास मन आसा पूरे वोरड़ी ।।
पूरन पर्म दयाल मारग देखौं हूं खड़ी ।।
मारग देखूं खडी गोविन्द पथ इणि आवे सही ।।
अवल गोपि मुरार कारणि अधर कर जोरे रही ।।
मन माहि मूग्ध सुजाण सोचै कोई कहै हरि आइया ।।
अनेक रतन अवलि मोति लाख द्यौं वधाइया ।।
पल भयो पलक न रहूं हरि विन विरह वलिसि नाइयें ।।
हियौ हिलूसैं मिल्यों चाहै मिलन माधो जाइये ।।
आसा लूविधी पथ देखौं सरस सीतल रूति वली ।।
हरि खोजता आसौज आयो आस मनि पुर वीरली ।। विश्राम।।३।।
भलै आयो कातिक मास जिन ऋति कृष्ण पधारिया ।।
गोप्या कीयो सिंगार वहु विधि वैं न विसारिया ।।
विसारी वैन अनेक वहु दुःख सकल कारिज सारिया ।।
जिनि मिल्यां तनि त्रास भागी भलै कृष्ण पधारिया ।।
पहरिया आभर्न चीर तनि सिगार सोभा वनि रह्यौ ।।
गावति मगल कलस आरति कंवल दल लोचन जयौ ।।
रलवली मै हृदै माधौ हरखि हरि आनन्द भयौ ।।
रस लुब्ध मोहन रमैं क्रीला उरि अधर राधा रह्यौ ।।
सेज्या सुरति रसवनि रतिरंग स्याम सौ व्रज नारिया ।। विश्राम।।४।।
अति वरिषा रुति राज सखी सावण सिखर निवर्न्यौ ।।
हरि आरति विण और मन न सहत देख्यो सुन्यौं ।।
देख्यौ न सुन्यौ सुहात हरि विनि सरस सावण वलि वहै ।।
स्याम पर्मदयाल विन जल वूंद पावक ज्यौं दहै ।।
व्रथा तन मन जनम हरि विनि अफल सब देख्यो सुण्यों ।।
परसा प्रभु सुख और सब दुख सखी सावन सिखरनि वण्यो ।। विश्राम।।५।।१।।

राग मल्हार—

सखी वरिषत भादूंरी मास सर सलिता जल पूरिया ।।
उर विहसत हरि चित नैंन चुवत चपलानि चूरिया ।।
चपला चहूं दिसि अधिक चमकति मधुर सुर घणहर करैं ।।
मोर कोकिल चवैं चात्रिग विरहनि को वल हरैं ।।
हरि न प्रीतम निकटि अति दुख दरद हरन सुदूरिया ।।
परसा प्रभु बिन सुख न सोभा भादूं रूति जल पूरिया ।।१।। ।।विश्राम।।
सखी प्रगट भयोरी आसोज हरि न अवधि आय भरि दई ।।
विलपत हम हरि होण भुव राजित गहवर भई ।।
भई मुदित जल मिलि सकल सोभित सुफल द्रुम वेली सुखी ।।
विथा अपनी कहैं कासूं अवल हम हरि विन दुखी ।।
पंथ देखत दिन वितीत अवधि वदि आसोज लूं ।।
करत प्रभु की आस परसा प्रान तन वासों जलूं ।।२।। ।।विश्राम।।
सखी कातिग करुणा री कंत मिलिहैं री मैं सुपनों लह्यो ।।
मैं पायो सुनि चैंन जवैं हरि आगम आवन कह्यो ।।
आवन कह्यो सखी सत्ति करि हरि विरह तन न जराइये ।।
हरि कथा गुण गण ग्यान मंगल सुमरि सुणि सुख पाइयें ।।
वन्थी नखसिख प्रेम वसि सोई गाई किन लीजै बुलाई ।।
परसराम प्रभु प्रगट कातिग कृपा करी मिली है सुआई ।।३।।विश्राम।।२।।

राग मल्हार—

धनि दिन धनी यह राति धनि जसोदा नंद सुख भरे ।।
धन्नि महर वडभाग कंवरि घरी औतरे ।।
औतरे स्याम सुजाण गोकुल उमगि व्रजवासी मिले ।।
सुरलोक सेस महेस ब्रह्मा वेदी धुनि गावत भले ।।

जस जग वोंग्रकांर जै जै स्याम जहां तहां गाइये ।।
परसराम अपार लीला देखि अति सचु पाइये ।।१।। ।।विश्राम।।
आनन्द नन्दजी कै द्वार ।।
व्रज सुंदरि गावत चली गावै मंगलाचार ।।
पुखत है मन की रली ।।
पुखै सुमन की रली सुंदरी नंद द्वारै गांवही ।।
स्याम पर्म दयाल दरसन कनक कलस बंदावही ।।
आरती कंचन थाल माला चौक चन्दन विधि भली ।।
परसराम नंद द्वार आनन्द उमगि व्रज सुंदरि मिलि ।।२।। ।।विश्राम।।
धनि धनि गोकुल गांव कान्हरि जहां लीला धरि ।।
देखि चरित व्रजनारी भुवन सुत पति वीसरी ।।
विसरी सुन्दरी भवन सुत पति स्याम छवि हिरदै रही ।।
देखि बाल विनोद लीला सुरस रस गावे सही ।।
दधि भरण हलद गुलाल केसरी कीच नन्द द्वारै मची ।।
धनि धनि गोकुल गांव परसा स्याम जहां लीला रची ।।३।। ।।विश्राम।।
वलि वलि कान्हर नांऊ व्रज कुल की सोभा भयै ।।
गावैं कंठी लगाय मोहन मुख देखै सहै ।।
देखि मुख गोपाल पति कौ सखी जन सुख पावहीं ।।
सकल पति वैंकुंठ नायक स्याम लै उरि लावहि ।।
देखि सरस विनोद गोकुल सकल सुख निधि गाइये ।।
परसराम प्रभु स्याम उपरि सखी वलि वलि जाइये ।।४।।विश्राम।।३।।

राग मल्हार–

मिलि गौपाल सौं झूलें खेलहीं ।।
अति रस केली विलासे झूलैं खेलही ।।टेक।।

खेले सुकेली विलास रस मिली सुन्दरी सखी रूप ॥
सकल पति आनन्द लीला रचित अधिक अनूप ॥
जहां रैंनी धौस न सूर ससी हरि सुरंग छांह न धूप ॥
अगम गति अभिराम अचिरज रमित त्रिभुवन भूप ॥१॥
परम सुन्दर सौंज सोभित अखिल दीन दयाल ॥
विमल गहर गम्भीर सुख जल कंवल दल सुविसाल ॥
भंवर गण गंुजार सुर कोकिला मोर मराल ॥
प्रगट प्रेम प्रवाह गावत सबद सरस रसाल ॥२॥
मंगल सकल दिस दिस जहां सुं तहां रहसि केली कराहीं ॥
सलिता सखी सुख सिन्धुपति रूति एक मिलाहीं ॥
निर्भै न भै संक्या न कछु निरसंक सब जामांहि ॥
अधिक औसर देखी मुखं पै कहत आवै नाहीं ॥
अगह खंभ अनुप अति गति लखै न को मति थोर ॥
कर मुकत रतन अमोल मणिगण जटित जुगति हिंडोर ॥
अनेंक जन निजरूप आगै नवत गुण करी जौरि ॥
निकट सुक सनकादि नारद चंवर कर लिये डोरि ॥
अनेक रस बहुवास पर्मत करत केसरी खोरी ॥
चरचैं सुघसि आखंड चंदन आरगंजा बहु घोरि ॥
अति मनोहर वैन बोलत नैंन नैननि जोरी ॥
चितई चितई सनेह इनकौ लेत हरि चित चोरि ॥
अकल सकल समीप सोभित विविध विधि संकेत ॥
दरस परसत मन सुमन है मिलन करि करि हेत ॥
अधिक रूचि पीय प्यास करि उरी अंक भरि भरि लेत ॥
निरखी अवगति नाथ नागर सबनिं कौ सुख देत ॥

हरि चरित्र अपार अद्भुत नेत करि बहु भेष ।।
वै प्रगट करि करि दुरावत करत और अदेष ।।
ता मुगति कों लखै न वै सुर सक्र संकर सेष ।।
देखि परम विनोद प्रमुदित करत विधि अवसेष ।।
संगि नव नव रंग राजत नागरी नव नेह ।।
उमगि अन्तर छोरी परसत प्रीति पर्म सनेह ।।
सकल वर संजोग श्रीपति भेद रहित अगेव ।।
परम सुख सन्तोष परसा सुफल हरि की सेव ।।३।।४।।

राग मल्हार--

हरि जी को सरस हींडोलनो झूले पिय पुर मांहि ।।
छाया न माया अचल तरवर देखिये निरवंद ।।
तहां रच्यो रहत हिंडोलो थिर काया न नि कन्द ।।
बिन रैनि द्यौस अनंत दीपक उदैसूर न चंद ।।
अखण्ड मंडल मधुपुरी देखिये एक अनंद ।।१।।
जहां प्रेम खंभ अभंग अनभै अकल कल औ न जाय ।।
देखि चिरत सुथ क्यो चित सोई रह्यो सकल समाइ ।।
अवगति अपार न पार आवै जीवै जन जस गाय ।।
प्रीति पर्मदयाल सौ लयौं डोरी लाल लगाय ।।२।।
सुरसती संगम गंग जमुना बहै निर्भर नीर ।।
त्रिकुटि महल गोपाल झुले पर्म गति गम्भीर ।।
देखि सरस विनोद लीला उपज्यो मोही धीर ।।
चित लग्यो लाल दयाल सौ मिटि गई मनकी पीर ।।३।।
अनभै अबीर अगाध पति निजराज रोरी रंग ।।
सोई राखि अंतरि प्रति करि फिरि होय जिन रस भंग ।।

काम क्रोध विकार तृष्णा नीति आसा जंग ।।
भूका भर्म अब दूरि करि भजि राम निर्भै संग ।।४।।
रंगि रमैं सहज सिरोमनी सुख सुरति सुंदरि साथि ।।
नव नेह रंग सुरंग मिलि मिटी गई सब कुल जाति ।।
क्रीला विलास निवास निज निधि चढ़यो हीरौ हाथि ।।
परसराम नत जो पति मति अवगति नाथि ।।५।।५।।

राग मल्हार—

स्याम सघन वर्षा रूति आई ।।
देखि घटा घनघोरि चहुं दिसि पावस प्रीति सवाई ।।टेक।।
बोलत मोर बूंद विष लागत हरि बिन कछु न सुहाई ।।
कवण आधार जीवैं हम बिरहनि पति पतियां हू न पठाई ।।१।।
तुम अति चतुर सुजान सिरोमनी हम अधम अजात कहाई ।।
परसराम प्रभु तजि सब औगुन मिलि मोहन सुखदाई ।।२।।६।।

राग मल्हार—

उमग्या बादल बरषन आवै ।।
देखि सघन घन अरि दल बरषत इन्द्र निसांण बजावै ।।।टेक।।
लागत बूंद विषम पावक सम हरि बिनि तनहिं जरावै ।।
क्यौ सहिये दुख दरसन दुरलभ विरह भुवंग सतावै ।।१।।
गिर गिर सिहरि सिहरि सिर दामिनि सोहभित मोहि न सुहावै ।।
सुंदर सौंज सरस घर सर वन मोहन दिषि न आवै ।।२।।
कठिन परी सुख तैं दुख उपज्यो मो पति कोई न मिलावै ।।
परसराम प्रभु अवर सहूं क्यौ मोर मलार सुणावै ।।३।।७।।

राग मल्हार—

गिगनि घण गरजत लीला नाथ ।।
प्रगट नीसांण सुनत सुर सुरपति सेस न बरनी जात ।।टेक।।

चतुरानन पिक सिभु सु चात्रिग टेरत पीय पीय घात ।।
प्रेम प्रगट झुरत सर भरियत सीतल सरस सुवात ।।१।
दादुर व्यास मीन सनकादिक ता जलि केलि करात ।।
सुक जन हस विहंगम बहु भुनि सोभित सरणि दिखात ।।२।।
महा चरित्र अगम गति औसर अचिरज उर न समात ।।
नृमल अकल सुठौर सुदरसन परसा तज्यौ न जात ।।३।।८।।

राग मल्हार-

आजु अति देख्यो चरित अपार ।।
कहि न सकौं पति की गति सति करि भेद भुवन निरधार ।।टेक।।
नही जड़ मूल डाल फल छाया तरवर अकल उदास ।।
माया ब्रम्ह रहत वड औसर पूरन पर्म निवास ।।१।।
नही जल कवल सिखर ससि ठाहर मधुकर लगे सुवास ।।
सीपि न सिंधु तहां जन मोती निपजत वेसास ।।२।।
नही निसि द्यौस धरणि रवि मदिर दीपक सकल उजास ।।
सो नित वसै प्रगट पद दीसै परसा निज परकास ।।३।।९।।

राग मल्हार-

सुमगल गावत ब्रम्ह अपार ।।
देखि अगम गति उदित भयो पति धरि लीला औतार ।।टेक।।
गजरत घन त्रिय लोक उजागर सुनत सकल संसार ।।
फूटत सुर ब्रम्हड विराजत देखि अदिष विचार ।।१।।
आदि न अत निकट नाद सुर सुरपति सुर कौ देव ।।
लीयो निवास न जाणे कोई हरि सेवग की सेव ।।२।।
सिंधु उलटि सलिता जल पूरे फिरि घिरि सु हरि समाइ ।।
गिर चढ़ि सिहरि समाय न बिछुरत ज्यो दामिनी दरसाय ।।३।।

पावक पडि पावक मैं दाझइयो पावक सीमट्यो प्राण ।।
प्राण पावक। संगि लाग्यो निसा प्रकास्यो भाण ।।४।।
महा प्रलै मिटि सुन्य समानो प्रेम प्रगट भयो आय ।।
परसराम मिलि आनंद उपज्यो सो सुख कह्यो न जाय ।।५।।१०।।

राग मल्हारः—

प्रेम बिन प्रिय काहू कौं न पतीजै ।।
जानत है सब के अन्तर की जहां जहां जो जो कछु कीजै ।।टेक।।
झगरत झूंठ सांच सगि सर भरि करि अपराध न खीझै ।।
ताकौ कहौ कवण गुण चित करि हरि अरीझ जो रीझै ।।१।।
तन मन धन सर्वस अन्तर तजि कै जब लग नहिं दीजै ।।
देखौ सबै सौचि करि जिय मैं कवण हेति हरि लीजै ।।२।।
हित की प्रीति बिनां हरि प्रीतम कपट न कबहूं धीजै ।।
है कोई विथा अवर जन परसा प्रभु बिन तन विरह न छीजै ।।३।।११।।

राग मल्हार—

प्रीति बिन हरि नागर न पतीजै ।।
पर्म सुजाण चतुर चिंतामणि सो परपच न धीजै ।।टेक।।
तब लग होत नहीं वसि प्रीतम जब मन नहिं दीजै ।।
मन दीनैं बिन सुमन परायो क्यौं अपण करि लीजै ।।१।।
हम न अपणयौं दीयो न हित करि क्यौं हरि कौ मन भीजै ।।
यौं रीति रही स्वाति वरिषा संगि सिंधु सीप बिन पीजै ।।२।।
जासौं प्रेम नेम निहचौ नहीं अरू मन की न कहीजै ।।
परसराम प्रभु तजि दोस तैं अब कहा सोच करि कीजै ।।३।।१२।।

राग मल्हार—

हो ऊधौ जो तुम्हारि गई ।।टेक।।

विरह विकल विलपत तन तलफत खोवत सौंज नई ।।
निकसि न जात प्रान पजर तें सविता सांझ रही ।।१।।
जैसी जिसी कर्म गति अपणी अब तौ इनि वही ।।
कहीयौ यौं परसा प्रभु तुम विन विरहनि दही ।।२।।१३।।

राग मल्हार—

मेरी मानैं कौन कही ।।
प्रथम पिछाणि न मिलीरी गोपालैं सो जीय वहुत रही ।।टेक।।
कठिन वियोग विथा तन जारत सो नहीं जात सही ।।
जाणौं मेरो प्रान पलक नहीं बिसरत निसदिन चित गही ।।१।।
अति अभिमान मिट्यो नहीं मेरौ नां लिवलीन भई ।।
नांव कुबुद्धि विसरि परसा प्रभु भौजलि भूलि नहीं ।।२।।१४।।

राग मल्हार—

जो जो मन हरि जी की सरणि गयो ।।
सोई सोई मन संसार धार मैं फेरि न हरि पठयो ।।टेक।।
पीवत प्रेम नेम धारैं रस सोई सदगति निवह्यो ।।
चरन कंवल मकरन्द लुब्ध भयो विलसत तहीं रह्यो ।।१।।
पायो थिर विश्राम पर्म सुख भै तजि अभै भयो ।।
सोई निरमल निरभार नृदोसिक जो निज ठौर नयो ।।२।।
तन मन धन आपणपौं प्रभु जी कौं सर्वस सौंपि दियो ।।
परसराम कसि कर्म कसौटी हरि अपनाय लियो ।।३।।१५।।

राग मल्हार—

रूप अनूप वनैं हरिराय री ।।
सोभित अति सुन्दर वर नागर स्याम वरन तन छवि वरनि न जाइ री।।टेक।।

हरि मुख कंवल बसत नैननि मैं टरत न इत उत सब सुखदाई री ।।
मूरति मधुर सदा थिर उर मैं सो सुख सजनी तज्यो न जाइ री ।।१।।
अति रस लुब्ध भयो री मन लोभी पीवत प्यास अमी निधि पाइ री ।।
प्रेम मगन तन मन ता रस सौं सुरति सरोवर मद्धि समाइ री ।।२।।
कह री कहूं कछु कहत न आवै हरि सुंदर की सुंदरताइ री ।।
निरखी निरखी नख सिख रूप रुझानी परसा प्रभु तन चितय सिराइ री ।।३।।१६।।

राग मल्हार:—

हरि जू करत कछु कब कौ जानै ।।
देखत ज्यौं दिष्टक कौ दिष्टक उपजि खपत सब तैं सब छानैं ।।टेक।।
उदित भयौ प्रहलाद हेत करि अभैदान दायक भै टारै ।।
जिनि रच्यों सकल ब्रम्हंड सिंघ में महासिंघ अरि को उर फारै ।।१।।
भुवन चतुर्दस जसुमति कौं हरि माटी मिसी मुख मद्धि दिखारै ।।
नाना रूप करै को जाणैं ज्यौ तरंग सूरि किरण पसारै ।।२।।
ब्रह्मा बृच्छ हरे तहां सौं तैं एक ही कृष्ण सरूपनि सारै ।।
बहुरि प्रगट बहु रूप अवंछित दुरजोधन नृप कैं दीये द्वारै ।।३।।
नर तहिं नारी करैं नारी तहिं नरू बांवन वपु धरि बहुरि वधारै ।।
पलहि करै हरि सुंदरि तैं सिल सिल तैं सुंदरि फेरि विचारै ।।४।।
नृप तैं तरू करैं तरू तैं नर हरि कर्ण सकल समथ समि सारै ।।
नाचत आप नचावत सब कौं बाजि भई बाजीगर सारै ।।५।।
केसव के सर चित कहा बिरवै स्याह सुपेत सदा रूति धारै ।।
नीर रूधिर बैमिलैं जमावै सुहरि बहुरि न्यारो करि झारै ।।६।।
अगिणि चरित लीला गुण अपणै हरि अचिंत इच्छा विसतारै ।।
प्रसराम प्रभु कौ जस पावन जो सुमिरत सुतिरत भववारै ।।७।।१७।।

राग मल्हारः—

सुभारें भजिनि लीयें पतित पावन करि हरि ।।
हूं कितेक कंदूं भजनहारें बहु अधम अतिर भवपार गये तरि ।।टेक।।
मैं सुणि तिरत सिल सिंधु नीर परि तापर वनचर इह अचरज हरि ।।
चरण कमल रज तैं रिषि पतनी कीर गयो तिरि नाव भार भरि ।।१।।
जिनि खायो विषै जनम भरि रूचि करि अंतकि नाम लियो नर कौ नरि ।।
वै तारे द्विज गज व्याध गीध तुम ग्राह छुवत चक्र सुपारी परि ।।२।।
ताकि सुक संगति विष वनिता वकी विकारी भरी पंहुची धरि ।।
अब मोहि यहै परतीति महा प्रभु हूं नर किन जाऊं न जम कें डरि ।।३।।
तुम्हारो सरण भै हरण कृपा निधि पायो मैं रहि हूं गहि व्रत धरि ।।
अब न तजौं तुम कौं हौं कवहूं परसा प्रभु करि भजि हौं जनम भरि ।।४।। १८।।

राग मल्हार—

हो प्यारे हरि रायन औ क्यौं नहि घरि आये ।।
तुम जु कह्यो दिन दस मैं आवन यिते और कहां लाये ।।टेक।।
निरखि निरखि नैननि दुख उपजत पावस लगत डराये ।।
हम अब क्यों जीवें हरि हीन अवल भई अवधि गई हूं न आये ।।१।।
विचि आवत अटके हरि किनहूं मिलि विरहनि विरमाये ।।
अब क्यों आवत आली हरि आतुर मन मोहन भाये ।।२।।
कमल नैंन, कौं नेह न सजनी जु पद अंवुज न दिखाये ।।
विरह जरत उर प्रेम नीर विन कैसें जात बुझाये ।।३।।
यो दुख दरद मिटै नहीं कवहूं जु हरि हम मिलन न पाये ।।
परसराम प्रभु हरि भुज भरिकै मैं मिलि उर सौं न लगाये ।।४।।१९।।

राग मल्हार–

री सजनी हरि अजहूं न घरि आये ।।
जाय वसे कहूं दूरि देस महिं या सुरति सबै विसराये ।।टेक।।
तहां नहीं वरषा रूति सिखर सुर्ग मै मेघ न वरिषण पाये ।।
तहां नहीं दामिनि चमकत निसि आतुर घन गरजत न सुहाये ।।१।।
तहां नहीं सरवर सलिता जल जहां तहां दादुर उरगनि खाये ।।
तहां नहीं गिरवर चात्रिग पिक वानी मोर मुये न जिवाये ।।२।।
तहां न भौमि हरित द्रुम बेलि फिरि न वदत मुरझाये ।।
तहां सनेह विरह न विरहनि स्याम सघन तहा छाये ।।३।।
अव कैसे आवै हरि हम पै जो तन मन दै न मनाये ।।
परसराम प्रभु चलती बेर हम पाय लगि पहुंचाये ।।४।।२०।।

राग मल्हार–

समझि मन करि लै राम सनेही ।।
तेरा तव न बसाय कछू जब छूटि जाय नर देही ।।टेक।।
धन जोवन तन प्रान पसारौ यह परपंच पराया ।।
उपजै खपै प्रगट सब सूझै यह बाजीगर की माया ।।१।।
मात पिता कुल कुटुंब झूठ सब झूठी साख सगाई ।।
झूठा पुत्र कलत्र सहोदर साच सदा हरिराई ।।२।।
चवर छत्र गज वाजि राज निधि चाल्यो छांडि सबाई ।।
और हूते दस बीस नजीकी पै भयो न कोय सहाई ।।३।।
चूक परयो सब कौ तिहि औसर बचो न राखि भरि वायौ ।।
सुणियो सबै जगत कौ मिलिवौ कोई अन्ति न सगो गायौ ।।४।।
देख्यो सोचि विचारि समझि मैं हरि सौ हितू न कोई ।।
जाकी सरणी सदा सुख परसा आवा गवण न होई ।।५।।२१।।

## अथ गोविन्द लिख्यते राग सोरठ–

गोविन्द लीला की वलि जांहि ।।
उलटि गति गोपाल तेरी कछु समझि आवै नाहीं ।।टेक।।
ब्रह्म सुर सिव लोक ऊपरि पर्म पुर निज ठाम ।।
चत्रभुज तहां देखिये वैं सकल सेवग स्याम ।।
मुगति फल मुगत पाइये हरि विरष सीतल छाम ।।
सकल पति वैकुंठ तजि करित क्यौं गोकल गाम ।।१।।
ब्रम्हादि सिव सनकादि नारद जपैं जैं जैं कार ।।
रात दिन मुनि रहत खोजत तऊ न पावैं पार ।।
इहां वेद छंद गुन कहत द्वारैं कर्त नांहि संभार ।।
नंद ग्वाल अहिरि मथुरा तहां लयो औतार ।।२।।
वकी सकटा सुरनि याते–प्रथम लीला वाल ।।
वक तृणाव्रत अघ हते जिनि ग्रसे गोधन ग्वाल ।।
नथन सुर मघ कटि सोखण दंतवक्र सिसुपाल ।।
चाणूर केसी कंस मार्‌यो गिरि गयो सब साल ।।३।।
इन्द्र जाकी करैं सेवा सकल सुर हित कारि ।।
सेस सज्यां बिस्तरे सोई रूठे नंद कुंवारि ।।
सात वांच अहीर के सुत मिलें गोप कुवांरि ।।
वालि लीला रमैं तिनमैं देत थावत गारि ।।४।।
अनेक तापस तप करै मुनि रहै तारी लाई ।।
तिन कौं न दरसन देत हरि सुपनैं न सह सुभाई ।।
यहां आय घरि घरि द्वारि कहि कहि लेत ग्वाल बुलाई ।।
निसि न जागै परम हित सौं वन चरावन गाई ।।५।।
धरि नाहिंन धरत व्याकुल भये भैं पसुपाल ।।
कहत संगी जरत हैं हम राखि दीन दयाल ।।

मूंदि लोचन रही करसौ कहत यौं नंदलाल ।।
राखि लीनैं जरत तिन तरसवै गोधन ग्वाल ।।६।।
अति भयानक लगत देखत प्रवल पावक झाल ।।
आतुरहिं आवत लपट झपटहिं अगनि अति जु अकाल ।।
ऐसो प्रगट दावानल गिल्यो जो हूतो सब कौ काल ।।
सोई फूंक दै दै पीवत पैं कों अगम गति गोपाल ।।७।।
जहां वेद धुनि ब्रम्हा करै महामंत्र वोअंकार ।।
चित दैंन हरि श्रवनां सुनैं वोलै न एकैं बार ।।
मुरली बजावै टेर सी चढ़ि उच्च द्रुम की डार ।।
धेन वन मैं चरै तिरण रुचि तहां दै हौंकार ।।८।।
अनेक सुर संजमि रहै वै लेत छाक दिखाय ।।
कोटि जिग्य प्रवाह भोजन तहां न देखन जाय ।।
खाटा न मीठा गिनै नाहिन जातिपांति काय ।।
मांडि मारग तहीं खोसै चोरि माखन खाय ।।६।।
अनेक सायर जल भरन कौं होत हैं पनिहार ।।
जाकें चरन नख गंगा वसै भुवको उतारन भार ।।
सोई प्रभात कर गहि जाय वन मैं करे गोधन सार ।।
जीमि जमुना को चलै सोई चलू-भरन अपार ।।१०।।
ग्वाल लीला करन भोजन तहीं जमुनां तीर ।।
अधिक सोभित मद्धि मोहन सुमिल स्याम सरीर ।।
तहां बछ बालक हर ब्रह्मा भयो तुष्टन हरि ।।
हरि करे जैसे के तैसे समझे न आन अहीर ।।११।।
सुर पति को बलि मेटि कें हरि लीयो भोजन ग्रास ।।
मेघ मिलि मरजाद लौपित बरस्यो ब्रज बास ।।

देखि जल विह्वल भये जब इन्द्र दीनी त्रास ।।
वाम कर पर धर्‌यो गिरको थंभ विनि आकास ।।१२।।
अनेक रमा मोहिनी मद मस्त अंग सुवास ।।
कमला न पावै पार हरि को रहै चरन निवास ।।
इहां अवम जात अहिर गूजरि करे भोग विलास ।।
कर जौरि स्याम समीप खेलै रच्यो मंडल रास ।।१३।।
असुर नरकासुर हर्‌यौ सुख सहज देव मुरारि ।।
सोला सहस विवाहि ल्यायो स्याम राज कुंवारि ।।
इहां येक घरनि न राखि सकियो राम रघ औतार ।।
रंक रावण लै गयो सोई आनि ग्रह के द्वार ।।१४।।
चरन रजतै सिला तारी देखतां सत कालि ।।
चरनि काली कीयो निरविप नाथि आण्यो आलि ।।
जमला सु अर्जुन चरनि तारे नारद श्राप सभालि ।।
तिनही चरनि बलि चंपीयो क्यों गयो सप्त पथालि ।।१५।।
उधौ कौ ब्रजही पठावै भजन भेद बताय ।।
इहां गीध व्याध गज ग्राह गनिका वकी वैकुंट जाय ।।
कवनी विधि सुमरन करौ सठ बुद्धि न आवै काइ ।।
परसराम जन सरनि अपणी राखि अवगति राइ ।।१६।।१।।

राग मारु—

राजा रघुपति सौ जगि को है ।।
अति उदार दातार सुर यह रामचन्द्र कौं सो हैं ।।टेक।।
राजहंस राजेंद्र राजपति राजन महिं अधिकारी ।।
धर्म धुरंधर धर्म सींव हरि येक प्रिया व्रत धारी ।।१।।
बांध्यो सिंधु प्रगट सब देखै डुबत न देखि पतीनौं ।।
अपणौं करसों सिला तिरावत लिखि लिखि नांव नगीनौं ।।२।।

रावन राज विभीषन कौं प्रभु सिरनावत ही दीनौं ॥
हुतो कृपन पैं एक पलक मैं हरि लंकापति कीनो ॥३॥
श्री मुख वचन कहत मिलि रावन आय अजोध्या दैहूं ॥
अबहीं वोलि विभीषण हूं कौ दै लंका फिरि जैहूं ॥४॥
सम्मुख आय मिल्यातैं तोपर दोष न कछूवै धरिहूं ॥
सत्य सुवचन अजोध्यापुर कौ रावन राजा करिहूं ॥५॥
सीतापति रघुपति सोई श्रीपति सब अतरि की वूझे ॥
सेवन को रघुनाथ सारिखो और न कोई सूझै ॥६॥
जाकै पति रघुनाथ महावल सुमर्‌यां काज संवारै ॥
ताकौ भगत जगत मिलि परसा सो क्यौं अपनौं वल हारै ॥७॥१॥

राग मारु—

हो पिय रघुपति लंक पधारे ॥
लयें सव सैन संगि वै आवत दीसत वादर कारे ॥टेक॥
धावत है वनचर दिस दिस तें अति आतुर अहंकारे ॥
मानूं घटा, मेघ की उमगी घूरत अति जलधारै ॥१॥
तिरत सिला सितवंध सिंधुजल करत केलि किलकारे ॥
सिंधु पारि वरवारि मद्धि वहु अति चंचल वहभारै ॥२॥
सिंधु सकति करि दूरि आप वल कपि समूह हरि तारै ॥
आय भरे भुवन भुवन भीर वहु रोके पोरि पगारे ॥३॥
मानूं गिरवर तजि भजत जलधि कौं जल पुरित नहीं नारे ॥
आय बस्यो दल सिंधु तिरि महाकाल असुरारे ॥४॥
दिष्टि अगनि करि जिनि आगैं हरि वहु लंकापुर जारै ॥
इन रघुनाथ अनंत अंत विनि रिणि रावण वहु मारै ॥५॥

तैंरो कहा अधिक बल उनतें जु हरि हिरणाखि सघारे ॥
जीत्यो नही जुद्ध करि कोई जु वहुत असुर पचिहारे ॥६॥
मानि कंत सिख सौंपि सिया लै मेटौ साल हमारे ॥
परसा प्रभु सौं मिलौ दीन होय करौ वहुत मनुहारे ॥७॥२॥

राग मारु–

जाकौ मन हरि हरि हरि सुमरै ॥
ताकी सदा सत्य करि श्रीपति रछ्या आपु करे ॥टेक॥
चरन कंवल विश्राम सदा थिर हरि वर जाणि वरै ॥
सरणाई सम्रथ सुखदाता सव दुख दोष हरै ॥१॥
अति आतुर आये हरि पुरतें गज हिति ग्राह तिरै ॥
पंडु वधू कौं चीर आप हरि दीनौं आय धरै ॥२॥
जो हरि भजे भजे हरि ताकौं हरि विसर्यां विसरै ॥
उग्रसेन कौं छत्र सिंघासन दै हरि पाय परै ॥३॥
गज भुजंग गिरि त्रास दई अरि मार्यो सो न मरै ॥
रछ्या करण सदा संगि जाकै सरणि जमकाल डरैं ॥४॥
असुर अबुद्ध अगनि मैं डार्यो जार्यो सो न जरै ॥
साखि प्रगट प्रहलाद उजागर क्यौं हरि विरद दुरै ॥५॥
ताकी महिमा को कहिवै कौ जो हरि ध्यान धरै ॥
ब्रह्मा विष्णु महेस सुरेसुरु सेसन कही परै ॥६॥
ऊंचै तें ऊंचौ लै राख्यौ ध्रूपुर पुरनि परै ॥
परसा थिर उतानपाद सु टार्यो सो न टरै ॥७॥३॥

राग सारंग–

नद वधाई देहु कृपा करि तेरै गृह हरि मंगल आयौ ॥
कृष्ण जनम सुनि सुनि उमगे सव ब्रजवासी आतुर उठि धाये ॥टेक॥

अंकुस कुलिस वज्र धुज जब सो चरन चिह्न अंकित दरसाये ।।
संख चक्र गदा पदम पाणि लीये राजित हरि उर मद्धि बसाये ।।१।।
दरसि दरसि परसैं पद बंदै फूलै अति तन मैं न समाये ।।
धनि धनि नंदराज भाग बड तुम ऐसे राम कृष्ण फल पाये ।।२।।
बड़े बड़े रिषि राज महा मुनि वेद व्यास से विप्र बुलाये ।।
ऊंकार अपार वेद धुनि सर्व सांति पढि चौक पुराये ।।३।।
चिरिंजिवो वृजराज नंद सुवन वारि वारि कर कलस बंदाये ।।
देत असीस सकल सुख मानत हरि सुंदर सबके मन भाये ।।४।।
चंदन तिलक दूर्वा बदन धूप दीप सजि सीस नवाये ।।
सबै मुदित कौतूहल घरि घरि गोपी गोप मन मोद बढ़ाये ।।५।।
बाजैं बहु बाजेन्द्र मधुर सुर घन गरजत अति लगत सुहाये ।।
नंद भुवन आंगन अति आनंद दधिकादौ भादौ जल छाये ।।६।।
बंदीजन पुरजन वृज के जन बहु अंतर सब कौ पदराये ।।
पायो दान मान वंछित अति सुख दै सब घरहि पठाये ।।७।।
जाको दरस देव मुनि दुर्लभ निगमहूं अगम अगाध बताये ।।
त्रिभुवन वर व्यापक सचराचर अविनासी नंद नंदन कहाये ।।८।।
भगत हेति आधीन कृपा निधि अपणें जन के हाथ बिकाये ।।
साखी नारदादि सुक परसा जिनि हरि प्रेम नेम गहि भाये ।।९।।१।।

राग सारंग–

वन फूले अति सोभहिं आयो री सखी मास वसंत ।।
सखी मिलन कंवल दल कारणें अति आतुर रति आरतिवंत ।।टेक।।
सखी तन मन धन आदि दै रति मंगल जहां तहां दरसंत ।।
मन मोहन मन वसि कर्‌यो सो तजि ताहि न जात अनंत ।।१।।
नाना रंग वास नवी नवी नव नव तर नव पल्लव बिगसंत ।।

नव नव लता वहु माधुरि हरि निरखत हरिखत परसंत ॥२॥
नव नव सुर कोकिल वोलहीं गूंजित अति मधुकर मैमंत ॥
पंखी वहुवानी चवै गुन गन नव नव गावै सुरसंत ॥३॥
नव नव किसलै दल वीनहीं नव नागरि कर भरि वरिखंत ॥
नव संगति नव नेह सौं नव नागर नवरस विलसंत ॥४॥
रति नायक रुति विहरहीं राजित अति तामैं हरिकंत ॥
परसराम प्रभु भजि लीजै हरि सुख सव सोभा कौ अंत ॥५॥२॥

राग सारंग—

मंगल मैं हरि मंगल टीकौ ॥
हरि आनन्द वधावो नीको ॥टेक॥
गावै सुनै सकल सुख पावै ॥
मंगल मिलि पावन होय आवै ॥१॥
पावन तैं पावन सुख सागर ॥
साखि सुरसरी नीर उजागर ॥२॥
निस मंगल निसही मैं नीकै ॥
रवि मंगल प्रगट्यां सव फीकै ॥३॥
जग मगल हरि मंगल राजा ॥
हरि मंगल जन योग्य जिहाजा ॥४॥
हरि मंगल हरि पुरि पहुंचावै ॥
हरि मिलि फिरि भौ माहि न आवै ॥५॥
जिनि हितकरि हरि मगल गायो ॥
तिनही मन वंछित फल पायो ॥६॥
हरि मंगल महमां जिन जानी ॥
सदगति सदा सुफल सो प्रानी ॥७॥

परसा मन हरि सौ जिनि बांधौ ॥
तिनहीं हरि मंगल पद लाधौ ॥८॥३॥

राग सारंग–

गोवरधन पूजा सब पूजे ॥
इन्द्र आदि ब्रम्हादि सेस सिव व्है हैं प्रसन्न देवना दूजे ॥टेक॥
तृण द्रुम नीरस घरण फल छाया सुख निवास सब निधि जामाहिं ॥
पूजन कौं गोरधन सारिख और देव दूजा कोइ नाहीं ॥१॥
गुफा अनेक तहां बहु मुनि जन वसेई रहत भजन के ताईं ॥
अति ऊंचौ दीर्घ वन व्रज सौ महिमां अधिक नंद की नाईं ॥२॥
जहां काम दुग्धा अति होत सुखारी मन वंछित चरि चरि सुख पावै ॥
वाल केलि लीला वनि मंगल ग्वाल मंडली मोर नचावै ॥३॥
ए मम वचन सुनहुं सब मानहूं हूं साच कहत हौ नंद दुहाई ॥
व्है हैं प्रगट कहत परसा प्रभु व्रज मंडल की वहुत वड़ाई ॥४॥४॥

राग सारंग–

माई री धनि री धनि दिन आज को ॥
जीवन जनम सुफल मेरौ मैं देख्यो मुख व्रजराज राज कौ ॥टेक॥
आजु वधाई सुदिन सुमंगल महा महूरत महाराज कौ ॥
प्रगट भयो सुखसिंधु सकलपति दुखहरण जुवराज कौ ॥१॥
निरखि निरखि लोचन रस विलसत अति सुख जगत जिहाज कौ ॥
दरसि परसि पावन भयो तन मन विरद गरीब निवाज कौ ॥२॥
अति अवसर आनंद मैरि घरि घरि उछाह रविराज कौ ॥
सुनत सकल जानत जन परसा सुजस स्याम सिरताज कौ ॥३॥५॥

राग सारंग-

आई हम हरि जी कै पायनि लागनि ।।
हरि सुंदर सुख सिंधु सुमंगल दरसै जै परसैं बड़भागनि ।।टेक।।
न्यारी होत न पलक सुमन तैं मिली रहत जैसे पहुप परागनि ।।
हरि अमृत रस पीवत प्रेम सो त्रिपति न करत रहत अनुरागनि ।।१।।
उपज्यो अधिक सनेह स्याम सौं पलटि न कबहूं हो दुहागनि ।।
तन मन सौंपि भई ताही वसि पर्म सती सोई पर्म सुहागनि ।।२।।
हरि भुजदड भुजनि सौं जुरहै मनु राजित गज सौं गज नागनि ।।
निर्तत नट नागर पट फरकत सोभित ज्यौं हरि भुवन धुजागनि ।।३।।
निकसत फिरि पैसत ताही मैं मानों बादलि दरसीयत दामनि ।।
वर्णं बहुत कछु कहत न आवत अति सोभित परसा प्रभु भामनि ।।४।।६।।

राग असावरी-

व्रत धरि सुमरि हरि जी कौ नाम ।।
सत्य करि हरि वरत बिन वदि और व्रत वेकाम ।।टेक।।
दुख हरन दीन दयाल व्रिद सुख मूल सुंदर स्याम ।।
पतित पावन करन केसौ दैन पद अभिराम ।।१।।
व्याध गीध तमाल बनचर वकी साखि सकाम ।।
ग्राह गज गनिका अजामेल कौंन व्रत कौ नाम ।।२।।
हरि वरत बिन वहू वरत करवै चलत मारग वाम ।।
भगत के हरि वरत पतिव्रत ज्यौं व कपिकै राम ।।३।।
हरि धर्म परहरि करत पसु वहु कर्म भर्म हराम ।।
परसराम अपार प्रभु सौं वै क्यौं लहत विश्राम ।।४।।१।।

राग क्लाणं-

राज को राज महाराज विराजै ।।
पति को पति महापति परमानंद मंगल अघर सुमंगल धाजै ।।टेक।।

बीज को बीज महाबीज सबीर्ज मूल कौ मूल महामूल विसाल ।।
फल को फल महाफल फलदाइक रस को रस महारसिक रसाल ।।१।।
सेस कौ सेस महासेस सुमंगल जाप कौ जाप महाजाप सुजाप ।।
विधि कौ विधि महाविधि वाणी वर वेद कौ रूप कौ रूप महारूप ।।२।।
पवन को पवन महा पवन सुपावन मन कौ मन महामन मन नाथ ।।
जीव को जीव महाजीव सजीवनि सिव कौ सिव महासिव सु साथ ।।३।।
सुर को सुर महासुर सर्बसुर सुर्ग कौ सुर्ग महासुर्ग सधीर ।।
देव को देव महादेव सुदीर्घ नाथ को नाथ महानाथ गुर पीर ।।४।।
नीर को नीर महानीर सुनिर्मल सिंधु को सिंधु महासिंधु निखार ।।
काल को काल महाकाल कलपतर पार कौ पार महापार अपार ।।५।।
तेज को तेज महा तेज पुंज अति रवि कौ रवि महारवि तमहार ।।
सोम को सोम महासोम सुअमृत परसा प्रभु सुख कौ सुखसार ।।६।।१।।

राग केदारो–

हरि रस अगम जाणै कोय ।।
रहै सरणि न चरण छाडै ता दास मालिम होय ।।टेक।।
आकास वास उदास अंतरि रहै आपो खोय ।।
राम पर्म दयाल दरसन जानि है जन सोय ।।१।।
छांड़ि आस निरास व्है रस पीवै जो मन ठौय ।।
परसा पति पहचानि तिन जन लीयो तत्व विलोय ।।२।।१।।

राग केदारो–

पद रज पावन राम तुम्हारी ।।
सदगति भई सिला अबही अब देखि प्रगट साखि रिषि नारी ।।टेक।।
पलट गयो पाषाण पलक मैं यह अचिरज लागत अति भारी ।।
कटे कलंक सकल पद पंकज परसत दिव्य देह जिनि धारी ।।१।।

वरनि सकै कवि कौण सुमहिमा जाणि अजाणि सेस विस्तारी ॥
सोई दीजै किन रघुनाथ कृपा करि परसा जन रज काज भिखारी ॥२॥२॥

राग केदारो–

हम तुम राम न काम सनेह ॥
तुम कोई हम कृपन करि कुल छुप न सकत चरणनि की खेह ॥टेक॥
अब तौ हम न पत्याहीं तुमको जु पद रज परसि भई मति एह ॥१॥
तातैं हूं डरत न ल्याऊं नवका तुम्हारे छुवत कटे क्षित रेह ॥
ऐसी हांणि सहूं कैसे करि मैं अनाथ निरधन बिन तेह ॥२॥
योही कुल व्यवहार हमारैं हम धींवर जाती नीर नांव सौं नेह ॥
और न करि जानत कहुं उद्दिम याही सौं सिधि साधन गुन ग्रेह ॥३॥
मन क्रम वचन कछु दुरावत नांहिन साची कहूं सुणू करि येह ॥
परसराम प्रभु चरन छ्वतहीं मेरी नांव उडै मोहि यहै संदेह ॥४॥३॥

राग केदारो–

हरि भजि जात कंवल कुमिलायो ॥
लागी चोट भिद्यो भ्रम भीतरि मन चंचल तिन छायो ॥टेक॥
वसै सुभोमि सरस दल जल मैं ज्यौं रुचै त्यौं पावै ॥
कोण वियोग विरह बल त्यागै यह कोई समझावै ॥१॥
अंतरि वस्यो डस्यो जो मधुकर ता सुकचे मुरझावै ॥
लागो रंग सरस रस चाख्यो सो तजि और न भावै ॥२॥
जैसे सीप समद तिण जाण्यो स्वाति बूंद जब पाई ॥
परसराम सागलि तन मन की अकथा कही न जाई ॥३॥४॥

राग केदारो–

जब लग धरत मन बहु रूप ॥
तब लगे दिवि दिष्ट नाहीं परत भ्रमि भौ कूप ॥टेक॥

अंधमति अग्यान अपणै ग्यान सूझै नांहि ॥
नैन विनि कर दिव्य दर्पन कहा देखे मांहि ॥१॥
प्रतिबिम्ब को प्रतिबिम्ब मिले जो एक मेक नहोय ॥
आपणौ निज रूप कौं आपण न देखैं सोय ॥२॥
मिटै नाहिंन चाहि चित कवहू न होइये निर्द्वंद ॥
बिनां पति संतोष परसा जात बह्यो मति मंद ॥३॥५॥

राग केदारो–

भेषि न भाजई बहु भीड ॥
रघुनाथ अंतरि बसै बिन क्यौं मिटै मन की पीड ॥टेक॥
करि कर्म भर्म विकार बंधन विषै बल छल कीड ॥
बेसास वास निवास निहचौ प्रेम पति नांहि नीड ॥१॥
बहु ग्यान ध्यान स्नान साधन पठन जप पतभीड ॥
परसराम विसारि हरि फल खात हरषि गरीड ॥२॥६॥

राग केदारो–

सब सुख निधि गोपाल न गायो ॥
प्रेम भगति हरि चरन कमल तजि मन मधुकर जित तित उरझायो ॥टेक॥
परम कथा परमारथ परहरि स्वारथि लागि न पल पछितायो ॥
सो क्यौं करे आस हरिपुर की खात विषै विषयन न अघायो ॥१॥
परवसि प्रान सौंपि सुख मान्यों तन मन दै पति कौ न रिझायो ॥
काच पकरि हित, सौ उरि सांच्यो परम रतन करतैं छिटकायौ ॥२॥
आसा तजि वेसासि न उपज्यो कलपत निस दिन जनम गंवायो ॥
भरमत फिर्‌यो मंद मति जग संगि सोई द्रोही पति कांमिनि आयौ ॥३॥
तुम सौं कहा कहूं करुणामय मन कारणि कौण सरूप वणायौ ॥
परसराम प्रभु यहै अंदेस मोहि पोषि भुजंग कवण सुख पायो ॥४॥७॥

राग केदारो–

मन हरि सुमरि जीवनि ठौर ।।
नांहि नैम हरि नांव चाखै प्रगट औखदि और ।।टेक।।
निगम सुरजन करै कीरति साखि सुणि तजि भौर ।।
साध संगति हरि भजन बिन भूठ दूजो दौर ।।१।।
सोच समभ विचार देख्यो सवै भरम ठगौर ।।
परसराम प्रभु राम जी को नांव सवै सिरमौर ।।२।।८।।

राग केदारो–

मोहन मोहि तुम प्यारे ।।
मेरे नैनन पल भर्‌यो प्रीतम टरो जिनि टारै ।।टेक।।
अन देखतां दुख होय मोहि सुमरत अनभारे ।।
मेरी जीव जीवनि प्राणपति तन तैं न हो न्यारे ।।१।।
और नांहिन वसत चित मैं तुम हितू म्हारे ।।
येक औगण नाहि मोको सवै गुणधारे ।।२।।
देखि जीतूं सुरस पीऊं भरमि भौ जारे ।।
परसराम प्रभु वदन ऊपरि तनक तन वारे ।।३।।९।।

राग केदारो–

आरति अधिक अवगति राय ।।
देहूं दरसन दीन वन्धु दास वलि वलि जाय ।।टेक।।
तुम सकल चिताहरण कहियो करो क्यों न सहाय ।।
भ्रम कूप सीचि सबाहि करते देहू किन छिटकाय ।।१।।
तुम कृपनपाल दयाल सम्रथ सकल जस रह्यो छाय ।।
पतित पावन प्रगट सुनिये विरद अव न लजाय ।।२।।
जल विना क्यो मीन जीवै तलफि तलफि समाय ।।
यों दुखित जन क्यों जीवै तुम बिन बेगही मरि जाय ।।३।।

क्यों तुम न व्यापै पीर मेरी आजु रहे हो जु रिसाय ।।
परसरास प्रभु उलट पलट न साल सह्यो हू जाय ।।४।।१०

राग केदारो—

प्रेम सर जाहि लागौ सोई जानैं ।।
भीतरि भिद्यो न लागै औखद काहि कहूं को मानैं ।।टेक।।
अणी सुद्ध खरसाण परस पति सुभट धीर धरि लायौ ।।
निकसि गयो तुषार पार तजि मन चंचलिन धायो ।।१।।
जीत्यो हार विकार भार तजि घायल घूंमत डोलै ।।
भयो सुमार मरमि सर लागौ सूर कहा कहि बोलै ।।२।।
भयो विहार धार घर न्यारौ दिसै सोही न जीवै ।।
सो मन अविचल रंग लागौ जो अणभै रस पीवै ।।३।।
छूटि आस जाण आवण की होहू कछू जो भावै ।।
परसराम मन रह्यो मगन होय सहजैं राम समावै ।।४।।११।।

राग केदारो—

अंतरि वसी री मेरै ।।
प्रीति परम दयाल पीव की लगि रही हीय रै ।।टेक।।
सखी संगिन मिली तिणि रंगि आपणें पीव रै ।।
लोक लाज निकाज परहरि कंवल दल घेरैं ।।१।।
प्रेम रस रुचि पियो चाहै सहजि हरि हेरैं ।।
परसराम प्रभु नाम ले ले उमंग सो टेरैं ।।२।।१२।।

राग केदारो—

हरि मन सौं मन जावै न वांध्यो ।।
आपणें ही अभिमान मान गहि मैं पिय सौं पतिवरत न साध्यो ।।टेक।।

करि न सकी निज नेह निरंतरि अंतर तजि हरि उरिधरि न अराध्यो ।।
परम रसिक रस पीयो न प्रीति करि ता सुख बिन कैसें होत समाध्यो ।।१।।
कमल नैननि वस्यो थिर सेवा फल निर्मल सु न लाध्यो ।।
परसराम प्रभु नेम वसि हृढि न मिलै सुख सिंधु अगाध्यो ।।२।।१३।।

राग केदारो–

सखी सुखि रमैं रसिक वसि आयो ।।
अति आनंद महा मनि मंगल प्रीति लगाय प्रेम पति पायो ।।टेक।।
तन मन भेट दियो करि आरति प्रीतम अपणौं आणि वसायो ।।
रहत समीप सदारस विलसत चरण सरण हित करि चित लायो ।।१।।
सलिता सिंधु मिलि कैसें विछुरे ज्यौं दामनि घण हरिषि वछायो ।।
परसा स्याम सखी रंग लागौ एक भये रस रसहिं समायो ।।२।।१४।।

राग केदारो–

आवै वनतें भुवन स्माम सुंदर सोहै ।।
देखैं सुरनर मुनि सोभा सब कौं मोहै ।।टेक।।
गोप को धर्‌यो सरूप, कौतिग भूलै वै भूप,
अति ही अनूप रूप, सोहै अंतरजामी ।।
सबकी जीवनि प्राण, पायन फिरै पंथाण,
अखिल खिलै सुजाण, सम्रथ हरि स्वामी ।।१।।
मोहन वजौं सुवेण, गावत संगी सुर्गेण,
नाचत आवै सुधेण, आनन्द नन्द जो कै ।।
मंडित सहूसुरेण, देख्यां तें सिरात नैंण,
सुरभी सखा सुचैन, अति पावत नीकें ।।२।।
बहू वानिक सुवर, सोभित अति नागर
सुंख को हरि सागर, ताहि कौण धौं डोहै ।।

औसर अति अपार, पावै को ताकौ न पार,
राजत सकल सार, उपमा कौरा कहै ।।३।।
ताकौ न को सरभरि, दीजै को कीयो न हरि,
देख्यो है नीकै करि, करे हरि सो छाजै ।।
अगिरा चरित्र कीला, परसा मंगल ईला,
हरि जो धरत लीला, सोई सो अति राजै ।।४।।१५।।

राग केदारो-

अब मन लग्यो मेरो तोहि ।।
राम अमृत नांव छिन छिन पीवत ही सुख होय ।।टेक।।
उदै अस्त न देखिये नित प्रात दीपक जोय ।।
ताहि देखि विसास उपज्यो रह्यो मन थिर होय ।।१।।
अब न छाडौ चरण चित तैं गहौं प्रेम समोय ।।
परसराम अपार प्रभु कौं मिल्यौ अंतर खोय ।।२।।१६।।

राग केदारो-

हरि कहां है नाहिं कोई कहौ धौ कैसे ।।
जिनि जहां जाण्यो जैसो ताको तहांही तैसो ।।टेक।।
व्यापक सबही माहिं, कहिये कहा धौ नाहिं,
अस्थिर आवै न जाहि, देखरण हरि सारै ।।
पूर्‌यो है सबही हरि, बाहरि तैसो भीतरि,
सेवै जो काहू कौ करि, ताकौ सोई लै तारैं ।।१।।
सन्मुख सो सन्मुख व्है, बोलै तासों बात कहै,
मिलै सु मिल्यौ ही रहै, बिछुरै सोई नाहि ।।
सूधे सौ सूधो ही रहै, टेढे सौ टेढौ ही बहै,
नाहीं सौं नाहीं सो रहै, हरि बसै तो मांहि ।।२।।

जो अहं सौ अहं होई, दीन सौं दीन सौ सोई,
सांचे सौ साचो ही होई, झूठे सौं होई झूठौ ।।
काल सूं काल ह्वै वहै, साधसौ साधनि वहै,
रूठे सूं रूठौ ही रहै, पूठे सौ हरि पूठौ ।।३।।
अन्तर दिया तैं सोई, अन्तर राखै न कोई,
आपै सौ आपो सौ होई, अंतर नाहि डोहै ।।
दूरै को दूरि दिखावै, नीरे की नीरो ही आवै,
देख्यातैं देखि वुलावै, मन को हरि मोहै ।।४।।
जु निर्मल को निर्मल, हरि सौ भर्म सकल,
भारी सौ एक अकल, दीसे दूजे को दूजौ ।।
सौ नित सोवै न जागै, खारे सो खारौ ही आगै,
मीठे सौ मीठो ही लागै, अमी को चाखैहूं जो ।।५।।
रातै सो रहत रातौ, ज्यौ नीर भोमिसौ नातौ,
रूति के गुण सूं तातौ, सिलौ औरे है सोई ।।
जु प्रेम सौ प्रेम प्यारो, प्रीति तैं रहै न न्यारो,
सबकौ इहै विचारो, तो भाव सिद्ध होई ।।६।।
अंस के उज्यारो होई, अंध के अंधारो सोई,
पूरे सौं पूरो है कोई, ओछौ ओछौ ही वूझै ।।
अहि कौ आलम्भ कैसौ, अमृत विगारै पैसो,
परसा जाकै है जैसो, ताकौ तैसोई सूझै ।।७।।१७।।

राग केदारो—

समझि मन हरि भजि और न आनि ।।
वेगि विचारि रहत नहीं पावै भयौ कहा अजानि ।।टेक।।
झूठौ माया मोह पसारौ नाहि रच्यौ सुखमानि ।।
सोई सुख उलटि भयौ दावानल दाझि मूवो निग्यानि ।।१।।

तू जानत है यह सब मेरी मैं जुकरि भुज पानि ।।
इह करतूति गयो पचि निर्फल तोहि भई बड़ हानि ।।२।।
अक्रम कर्म करत नहीं हार्‍यो सोचि न मानि कानि ।।
निगुरां व्है जिन तिन दुख पायसि व्है है प्रेत मसानि ।।३।।
अति अहंकारी गयौ वहि भौजल अंतरि वसी कुवाणि ।।
परसराम अब भयौ मुसकिलि विन रघुनाथ पिछाणि ।।४।।१८।।

राग केदारो—

नरहरि भै मानि न जो अनुराग्यौ ।।
सो नाहिंन जीवन अपराधी मृतक सदा रहि मूढ़ अभाग्यौ ।।टेक।।
धन मह भयौ अंध अभिमानि सोवत निसिदिन जात न जाग्यौ ।।
हरि सुमरि विसूरिन चेत्यो उर कबहूं न विरह सर भाग्यौ ।।१।।
सुनि न सक्यौ मन हरि वापक अरू साध संगति रंग न लाग्यौ ।।
हरि तै विमुख भयौ भौ भरमत आवत जात जर्‍यो जग आग्यौ ।।२।।
हरि सेवा सुमिरण बिण निरफल जनम गयौ फिरि मिलत न मांग्यौ ।।
परसराम प्रभु सुमरिन न जाण्यों यौ जीव गयौ जमपुरि हरि त्याग्यौ।।३।।१९।।

राग केदारो—

हरि राम रच्यौ रसकेलि करण कौ ।।
वृंदावन जमुना तटि मोहन प्रगट करण वृज सौंज सरण कौ ।।टेक।।
लीनी कर मुरली हरि हित करि तिहि औसरि अधरनि जु धरण कौ ।।
सुनि सुनि धुनि आई ग्रह ग्रह तै सब गोपी पति आय सरण कौ ।।१।।
थकित पवन सुणि जाण पर्म सुख जात न चलि जल जलधिकरण कौ ।।
मोहै पसु पंखी थिर चर सुर लोचत सकल सरोज चरण कौ ।।२।।
सोभित अति सखि सरद निसा मुख देखैं स्याम सनेह वरण कौ ।।
परसराम प्रभ सुख दायक हरि मंगल प्रदोष हरण कौ ।।३।।२०।।

राग केदारो—

पौढे हरि राय सुख सेज रंग महंल मैं ॥
परम सुखराज खनि चरण उर घरै रहि धरि ध्यान निजरूप के गहल मैं ॥टेक॥
विमूल कूल कल निविन पर्म दीपक सजल,
जलनि तजि सत्य सुख महल मैं ॥
पर्म मंगल अकल काल जामैं जलै रहंत
निर्भार प्रतिबिम्ब ज्यौं पहल मैं ॥१॥
पर्म गम्भीर अति धीर धीरज धरै रह्यौं
भरपूरि जल थल सकल टहल मैं ॥
पर्म पद परसि पावन भये अगिण जन गाय
परसा सुपति राखि मन अहल मैं ॥२॥२१॥

राग केदारो—

पौढिये सेज श्री गोपाल ॥
आपणैं सुख सकल सुखपति पर्म रूचि नन्दलाल ॥टेक॥
पल न पलटत पलक लोचन कंवल दल सुविसाल ॥
निरखि सुन्दर राज मन्दिर प्रसन दीन दयाल ॥१॥
सुनिधि करूणा सिन्धु श्रीपति हरण हरि उरसाल ॥
चरण सेवा करत परसा दास भयो निहाल ॥२॥२२॥

राग केदारो—

पौढिये नन्दनन्दन राय ॥
सुख सेज सुन्दर स्याम प्रीतम राधिका उर लाय् ॥टेक॥
चौवा चन्दन अंग लेपन कुसुम सेज बनाय ॥
परसराम प्रभ खनि आनन्द बृज जन सुखदाय ॥१॥२३॥

राग बसन्त–

आयो निज बसन्त निर्भै निवास ।।
आनन्द छन्द गावे सुदास ।।टेक।।
घू अम्वरीष प्रहलाद आस ।।
नारद सारद सुक कृष्ण व्यास ।।
सेस आदि सनकादि सेव ।।
पति पारब्रह्म सुदेवादि देव ।।१।।
ब्रह्म रू इन्द्रादि जाण ।।
सुरनर मुनि कौतिग चढ़ि विवाण ।।
सव देखे मिलि औसर अपारा ।।
सोई मंगल पद त्रय लोक सारा ।।२।।
ब्रह्म पिण्ड लीला विहार ।।
मोहै अनन्त पावै न पार ।।
महा चरित गति लखै न कोय ।।
भजि परसराम प्रभु प्रगट सोय ।।३।।१।।

राग बसन्त–

मन राम सुमरि निवार्ण राय ।।
धर्यौ सकल जामै समाय ।।टेक।।
सुचि संजम पूजा विधि निषेध ।।
आचार अगिण पावै न भेद ।।
जप तप करणी विद्या विवेक ।।
तीरथ ब्रत हरि अंतरि अनेक ।।१।।
अनेक ध्यान पावै न सोय ।।
कवि ज्ञान बहुत भर्मै सुखोय ।।

यक अर्थ भेद खोजै अपार ।।
तामाहि सकल पावै न पार ।।२।।
अनेक विरह वैराग जोग ।।
बहु सुरति निरति अणभै विजोग ।।
बहु सेज समाना सुन्नि मांहि ।।
अन्नेक सुन्नि जामहि विलाहिं ।।३।।
अन्नैक वेद धुनि नाद होय ।।
अनैक मुकति आदरे न कोय ।।
रचि सौंज सकल त्रय लोक मांहि ।।
ऐसो महासिन्धु कछु अन्त नांहि ।।४।।
आनन्द केलि सोभा सिंगार ।।
अनेक प्रेम अंतरि उदार ।।
बहु मौनि मगन आसण उदास ।।
हरि आदि अन्ति सब कौ निवास ।।५।।
अन्नेक चरित लीला औतार ।।
बहु भाव भगति हरि पाउं सार ।।
भजि सति संगति दूजी न दौर ।।
जन परसराम वेसास ठौर ।।६।।२।।

राग बसन्त—

ऐसो राम अनभै अनन्त ।।
तासो मिलि खेलै जन बसन्त ।।टेक।।
इक कनक कलस केसरि सजाहिं ।।
घसि [illegible] चौवा चन्दन खोरि माहिं ।।
अणभै अ[illegible]ीर सुर सौंज जोरी ।।
जु लयौ गल[illegible]ल लानि सुझोरि ।।१।।

मिलि गावै गुण सुन्दरि सुढ़ार ।।
सोई अमृत सु रसना सुप्यार ।।
तहां घुरै सरस नीसांण घाय ।।
रूचि रीझत हरि आपण वजाय ।।२।।
जिनि रच्यो चरित लीला अपार ।।
सोई देखि कटे वन्धन विकार ।।
तहां लागि रह्यो मन सुफल सेव ।।
जहां पार ब्रह्म देवाधि देव ।।३।।
सुन्य सहर पुर प्रेम धार ।।
त्रिभुवण पतिनायक निति विहार ।।
सुर संगि सखा तैंतीस कोरि ।।
निज निरखत निति आनन्द ओरि ।।४।।
अम्हंड पिण्ड पूरण निवास ।।
जाकी व्यापि रही सब मैं सुवास ।।
हरि बाहरि भीतरि रह्यो समाय ।।
सोई परसा जन गोविन्द गाय ।।५।।३।।

राग बसन्त—

हरि राम तामैं मन लागा ।।
अब न बिसारो भय भागा ।।टेक।।
जो निज रूप बसै भीतरि बाहरि आगम अपारा ।।
निगुणों गुण धरि घट घट प्रगट्यो देखौ दरसण न्यारा ।।१।।
घट घटि है पै अघट न घटि है घट भरि घट तैं न्यारा ।।
नाना रंग अनन्त कला न्यारी सहजै किया पसारा ।।२।।

निर्मल अकल अतीत सुदीपक विण ससि सूर उजारा ।।
परसराम प्रभु हरि अवनासि सो है खसम हमारा ।।३।।४।।

राग वसन्त-

तो विन सुख नाहि हरि सहाय ।।
मैं प्रवल वंध वंध्यो अनाथ ।।टेक।।
मिलि विषै मोह संगति कुसार ।।
यो जात वह्यो भव भर्म धार ।।
है तू समर्थ हरि करि संभार ।।१।।
काम क्रोध तृष्णा विकार ।।
तन विविध ताप व्यापै अपार ।।
मन माया रूचि न उपज्यो न ज्ञान ।।
यो परलै पड़ि भूल्यो निधान ।।२।।
भव सिन्धु सुपावक विषम जाल ।।
ता माहि जलत हरि करि सम्हाल ।।
परसराम प्रभु सुनि मुरारि ।।
अव बांह पकरि जनको उवारि ।।३।।५।।

राग बसन्त-

मन लागो न कंवला किरणि आस ।।
भयो भाव भगति वेसास नास ।।टेक।।
करि विषै भोग संजोग रोग ।।
सुख इन्द्री स्वारथ स्वोह सोग ।।
यो वादि गयो वहि समझि तोहि ।।
जाय पर्यो अंध भ्रम कूप मांहि ।।१।।

वाजै चंग उपंग मृदंग नाल ।।
सब नाचत गोपी विविध ग्वाल ।।
सवै मुदित सुख सिन्धु पाय ।।
परसा प्रभु प्रगट वंसत राय ।।४।।७।।

राग बसन्त-

वृन्दावन विहरत श्री गोपाल ।।
संग सखा लिए हैं वहुत वाल ।।टेक।।
वहु विलास जहां खेलि हासि ।।
प्रमदा सव परी है प्रेम पासि ।।१।।
रस विलास आनन्द मूल ।।
निविड़ कुंज तहां फूले हैं फूल ।।२।।
जहां विधि वसन्त आनव होय ।।
तहां परसराम जन देखैं सोय ।।३।।८।।

राग गौड़-

दरसन देहूं किन केसवे ।।
वोलि वोलि न कहूं संदेसवे ।।टेक।।
भीतरि वोलि सुणाऊं वाहरि ।।
इन वातनि मन मानै न वौ हरि ।।१।।
तुम विन हितू नहीं हरि कोय ।।
तौ न कहूं जी दूना होय ।।२।।
तू ही विचार न्याव तें आगै ।।
क्यौं सेवग सेवा मत लागै ।।३।।

कितेक कहूं महा अघ भार ॥
राम सुमरि उतरे भवपार ॥३॥
ऊंच नीच भ्रम आसा पास ॥
परसराम भजन वेसास ॥४॥३॥

राग गौड—

मन न तजै तन को व्योहार ॥
हरि न भजै भ्रम बूझणहार ॥टेक॥
स्वारथ बांध्यो आवै जाय ॥
त्रिपति हीण सोई थिर न रहाय ॥१॥
रूति विण कारण कैसे रहै ॥
मुकता पंथ दसो दिस वहै ॥२॥
चंचल चिंता कलपित फिरै ॥
मृग तृष्णा वसि जनमै मरै ॥३॥
तूं नाना रूप धरे औतार ॥
पलक पलक मैं बारोवार ॥४॥
परसराम प्रीतम क्यो मिलै ॥
फिरि फिरि जीव जगत मैं जलै ॥५॥४॥

राग गौड—

झूठे मन को नाही ठौर ॥
कथै करम करै कछु और ॥टेक॥
गाफिल स्वारथ लुबध्यो जाय ॥
परमारथ खोजै न रहाय ॥१॥
पहर्‌यौ स्वांग भिस्तकै ताई ॥
जाता दीसै दोजग मांहीं ॥२॥

कितेक कहूं महा अघ भार ॥
राम सुमरि उतरे भवपार ॥३॥
ऊंच नीच भ्रम आसा पास ॥
परसराम भजन वेसास ॥४॥३॥

राग गौड-

मन न तजै तन को व्यौहार ॥
हरि न भजै भ्रम बूझणहार ॥टेक॥
स्वारथ बांध्यौ आवै जाय ॥
त्रिपति हीण सोई थिर न रहाय ॥१॥
रूति विण कारण कैसे रहै ॥
मुकता पंथ दसौ दिस वहै ॥२॥
चंचल चिंता कलपित फिरै ॥
मृग तृष्णा वसि जनमै मरै ॥३॥
तू नाना रूप धरे औतार ॥
पलक पलक मैं वारौंबार ॥४॥
परसराम प्रीतम क्यौं मिलै ॥
फिरि फिरि जीव जगत मैं जलै ॥५॥४॥

राग गौड-

झूठे मन कौ नाहीं ठौर ॥
कथै करम करै कछु और ॥टेक॥
गाफिल स्वारथ लुवध्यो जाय ॥
परमारथ खोजै न रहाय ॥१॥
पहर्यौ स्वांग भिस्तकै ताईं ॥
जाता दीसै दोजग मांहीं ॥२॥

सांचै मिलै न कारिज सरै ।।
भर्म विगूचै भव मैं मरै ।।३।।
परसापति कौ भावै सांच ।।
हीरा तजि मन पकरै कांच ।।४।।५।।

राग गौड–

गांवहि तौ मन रामहि गाय ।।
राम विनां वकि वहि जिनि जाय ।।टेक।।
परहरि कर्म भर्म व्यौहार ।।
राम सुमरि भौतारण हार ।।१।।
राम सुमंगल पद निर्वांन ।।
जा घटि वसै सत्य सोई प्रान ।।२।।
नर सोईं जो राम लिवलीण ।।
राम विमुख ताकी मति हीण ।।३।।
राम सुमरि निर्मल निज सार ।।
परसराम प्रभु हरण विकार ।।४।।६।।

राग गौड–

गांवहि तौ मन गोविन्द गाय ।।
बिण गोविन्द नहीं आन सहाय ।।टेक।।
श्रवण सुधारस अंचय अघाय ।।
प्रेम प्रसाद सदा रूचि पाय ।।१।।
गोविन्द चरण कंवल चितलाय ।।
तजि गोविन्द अनत जिन गाय ।।२।।
हरि निजवर सौं नैण मिलाय ।।
दरसि परसि आगै सिर नाय ।।३।।

परसा सेई सकल कै राय ॥
पद आनन्द सदा सुखदाय ॥४॥७॥

राग गौड-

पांडे मोहि पढ़ावो सोय ॥
जाहि मन निर्मल होय ॥टेक॥
हरि हरि हरि सुमरिन मोहि ॥
अपनी विद्या राखि लकोय ॥
पांडे कहै सुणो प्रहलाद ॥
मोहि हरि सुमिरन आने प्रहलाद ॥३॥
परसराम हरि गुर यह कहि ॥
हरि सुमिरै ताकि मति सहि ॥४॥८॥

राग गौड़-

छांडि जंजाल भजौ गोपाल ॥
हित सौ भज्यां न आवै काल ॥टेक॥
का जप का तप तीरथ दानि ॥
का पूजा विण राम पिछाणि ॥१॥
भगति मुगति को टीको राम ॥
ताकौ सुमरि सरै सब काम ॥२॥
पूरण ब्रह्म सकल कै धणी ॥
परसराम सुखि तासौ वणी ॥३॥९॥

राग गौड़-

हरि भजि हरि भजि हरि भजि मनां ॥
हरि की साखि सब हरि के जनां ॥टेक॥

वेद पुराण कहै हरि सांच ॥
हरि बिण और सकल कांच ॥१॥
हरि हिरदै थिर राखि संभारि ॥
हरि हरि सुमरि सुमरि न विसारि ॥२॥
परसराम सबकौ फल एही ॥
हरि हरि सुमरि धरि देही ॥३॥१०॥

राग गौड़–

हरि प्यारौ नेरौ नहीं दूर ॥
अन्तर खोजि रह्यो भरपूरि ॥टेक॥
वाहरि भटकत मनसा राखि ॥
चेति मुगध मन हरि रस चाखि ॥१॥
जग की अगनि कहा तन दहै ॥
धरि जप करि चरण किन गहै ॥२॥
अध ऊरध देखिए अथाह ॥
आगै अति अविगत है अगाह ॥३॥
परसराम प्रभु की को लहै ॥
बून्द सिन्धु की सोभा कहै ॥४॥११॥

राग गौड–

करता ताजन को पति आइ ॥
जो कुदरति खोजै काया माहि ॥टेक॥
राखै मूल झाल दै ढाहि ॥
भिस्ति रहै दो जग छिटकाइ ॥१॥
झूठो स्वांग–धरयां पछितांई ॥
साचो होई सुदरगह जाई ॥२॥

परसराम ताकि बलि जाइ ॥
जो सब घटि देखै राम खुदाइ ॥३॥१२॥

राग गौड–

का तन धर्‌यो जो बेकाम ॥
प्राण पति रघुनाथ जीवनि जो न जाण्यौ राम ॥टेक॥
पाय नर औतार उत्तम किए मध्यम काम ॥
हरि बिना सब सोधि सांचे तै न कछु राम ॥१॥
सरयो नाहिन काज कोई आय कै जग मांहि ॥
किए ओर उपाय बहु हरि भगति साधी नाहिं ॥२॥
वादि ही बहि गयो औसर सक्यौ न हरि पहिचाणि ॥
अब पाइए क्यौं सौंज ऐसी भई नर निजहाणि ॥३॥
अंधमति अभिमान उरि धरि चल्यो नर जम लोकि ॥
प्रभू बिना नहीं पार परसा राखि है को रोकि ॥४॥१३॥

राग गौड़–

कहि करि कर्म भर्म निरजीव ॥
भगति विण भगवंत की सब नृफल जो कछु कीव ॥टेक॥
सब धर्म ध्रिग हरि भगति विण जल हीण ज्यौं भयै कूप ॥
पलटि तन मन प्रेम भयो जब गयो तजि निज रूप ॥१॥
ज्यौं सिंघ देवल चरित चितवत चैन भै कछु नाहिं ॥
आय पंखी बसत मुख मैं जीवत उड़ि उड़ि जाहिं ॥२॥
मृतक होय न सोय जागै सुखी जीव जग आस ॥
पर्म रस सो पीवै कैसे बिना प्रेम पियास ॥३॥
करत कर्म सुलाभ कारणि होत है घर हाणि ॥
यौं साच विण बहु भेष भरमत अंध चाल्यो खालि ॥४॥

ज्यौं अधिक रूचिमल हेत माखी मरत सीस भुलाय ।।
यौं आसवसि नर नीच परसा परत पासी आय ।।५।।१४।।

राग नट–

ताकौ कैसो होत निवेरौ ।।
जो मिलि रहयो मोह सागर मैं हरि सुमिरण नहिं नेरौ ।।टेक।।
भावत नहीं सुण्यौ परमारथ स्वारथ संगि बसेरौ ।।
डिंभ कपट कुल कर्म उपासिक मन माया कौ चेरौ ।।१।।
काम क्रोध मद–लोभ विषै वल काल असुर कौ डेरौ ।।
दुविधा भरयौ दुष्ट जन द्रोही राम विमुख जम केरौ ।।२।।
सत सगति वेसास भगति रस ता संगि नांहि बसेरौ ।।
परसराम सोई जीव जगत मैं वादि मूवौ करि फैरौ ।।३।।१।।

राग नट–

जव लग हरि न दरसै मांहि ।।
तव लगै घोर अंध्यार उर गुर ग्यान दीपक नांहि ।।टेक।।
संसार सैल सुमेर तैं अति कंदरा ग्रह कूप ।।
तामांहि सर्पिणि विषै निसि सूझै न हरि निज रूप ।।१।।
जहां मोह जंजाल माया गयो ता संगि लागि ।।
सुपन सोवत गयो सर्वस सुख न पायो जागि ।।२।।
हीण मति अपकर्म लागै मिटैं क्यौं विण भागि ।।
परसराम प्रभु प्रेम जल विण जलत जग की आगि ।।३।।२।।

राग नट–

तुम बिण नहीं आन सहाय ।।
कहौ किन प्रभ सरणि जाकी हूं उबरो ज्यौं जाय ।।टेक।।

मैं भ्रम्यौ अगिरण जल थल सकल कुल कुल पाय ।।
सुख न पायो कहूं तुम विरण अनत अविगति राय ।।१।।
सुरणयो नाहीं न और समृथ कह्यौ गुर समझाय ।।
साखि संत पुराण बोले प्रगट जस रह्यौ छाय ।।२।।
सबै जाणत प्रगट जाकौ विडद क्यौ बहुराय ।।
प्रभु पतित पावन परसा राखि मोहि अपणाय ।।३।।३।।

राग नट—

रहि हौं पर्‌यो सदा दरबारी ।।
छांडि न जाऊं कहूं कायर होय हौं सेऊं व्रतधारी ।।टेक।।
तुमही भले कहो कछु मौको हौं न कहूं हरि तारि ।।
करूणा सिन्धु कहावत हौ प्रभु सो मैं लई विचारि ।।१।।
तुम धार्‌यो विड़द पतित पावन सिरि सो जिन देहूं विसारि ।।
हम पतित पाप कौ पल न विसारत करत संभारि संभारि ।।२।।
तुम असरण सरण अनाथ बंधु हरि सब कोय कहत पुकारि ।।
परसा प्रभु निर्वाहि सांच करिकै क झूठ करि डारि ।।३।।४।।

राग नट—

जाहि सदा हित सौ हरि भावत ।।
ताकि दिषि प्रगट हरि प्रेरक जहां तहां दरसावत ।।टेक।।
सोई पर्म सुजाण साधु सम दिष्टि हरि सेवा सुख पावत ।।
उपजि नही तरवर कुल फल ज्यौ हरि नाही मांही समावत ।।१।।
निसि वासुर इकतार अविसर हरि सुमिरत सुमरावत ।।
ताकौ भजन जगत जीवन कौ सोवत जाय जगावत ।।२।।
हरि निज रूप सुमंगल मूरति मिलि मन मांहि बसावत ।।
परसत प्रीति नैण भरि दरसत हरि आगै सिर नावत ।।३।।

प्रेम सहित नित नेम गहै मन मांहि मिल्यौ गुण गावत ।।
हरि सुखसिंधु समागम परसा करि निहकर्म कहावत ।।४।।५।

राग गौडी–

मन रमि राम अविगतराय ।।
सकल के दुख हरण कारण रह्यौ हरि तर छाय ।।टेक।।
अगम नीर निवास निहचल ठौर सख सुखदाय ।।
सोखि जल जड़ मूल साखा पत्र पोषत पाय ।।१।।
फल पहुप पत्र अनूप दल उपजि बिणसे वाय ।।
सोई दुसह दोष न धरत अंतरि रहत एकै भाय ।।२।।
तजत निज विश्राम देखत सकल खिरि खिरि जाय ।।
प्रगट पति विस्तार पलट्यौ सुमरयौ वादि विलाय ।।३।।
पर्म रस परिपक्क फल मैं विरख वीज समाय ।।
सत्य करि निज रूप सोई ताहि काल न खाय ।।४।।
प्रेम पर्म रसाल रसना राचि तन मन लाय ।।
परसराम न मरत सो जन जीवत हरि जस गाय ।।५।।१।।

राग गौडी–

मनि रम राम पर्म निवास ।।
त्रिविध ताप विकार खंडण सुमरि धरि वेवास ।।टेक।।
एकमेक अनेक सूरति चितै जिततित सोइ रे ।।
स्वयं ब्रम्ह अपार दरिया ओर नाहींन कोइ रे ।।१।।
जाकै आदि अन्त न पार कोइ कर्म काया नांहि रे ।।
सिंभु देव अदिष्ठ मूर्ति वसै घट घट मांहि रे ।।२।।
अकल अविचल अजर अमृत पीवैं कोई दास रे ।।
सुर सरस विषहरण परसा प्रगट निज प्रकास रे ।।३।।२।।

राग गौडी-

मनि रमि राम हिरदै राखि ।।
श्रवण सुदि सुप्रीति करि सुणी साध जन की साखि ।।टेक।।
काटै कौ आल जंजाल झांकै छाड़ि विषफल काचिरै ।।
राम अमृत नाव निर्मल सुमरि करि हरि राचि रे ।।१।।
तोहि काल खाय न जरा व्यापै पड़ै न जम की पासि रे ।।
खोजि हंसा संगि तेरै ताहि सेय धरि वेसासि रे ।।२।।
अगम गंज अपार दरिया सुफल सीप समेत रे ।।
सौज सरवर सुवाणीज करिलै जाय रे नर चेति रे ।।३।।
परहरि न हरि सुख समझि सुकृत सोचि देखि सुठौर रे ।।
परसराम निवास नरहरि नाम भजि तजि और रे ।।४।।३।।

राग गौडी-

अविनासी हो प्रीतमां तो विन अकल उदास ।।
हरि चितवनि चितही रहै पुरवौ मेरी आस ।।टेक।।
पंथ निहारो जी प्रीति सौ पीव मिलिवै की प्यास ।।
विरहनि मन आतुर भई मिलि प्रभु प्रेम निवास ।।
एक प्रेम पुंज निवास नर हरि नांव की वलि जाइए ।।
मैं वहुत व्याकुल देहुं दरसन प्राण तहां विखाइए ।।
आतुरी अधिक अपार आरति पीव मिलिवे की आसा ।।
मोहि राखि सरणि मिलाइ लै प्रभु राम प्रेम निवासा ।।विश्राम।।
राम हितू हम तुम विना विलपत अबल अनाथा ।।
बहुरि कहा मिलि करहुगे मिटि है औसर साथा ।।
मिटि है सुसाथ अनाथ विलपत पीव वियोग न छिन सहूं ।।
विरह पीर अनन्त अंतरि दुखित नित काठ ज्यौं जरि हूं ।।

रितु घटी नीर निवारण पहुंच्यौ अहल जन मंगवाइय ।।
( परसराम प्राणभय चातक हरि जल सचुपाइए ) ।।४।। (अपूर्ण)

राग गौड़ी–

सुणित हो प्रीतम केसवे जन की जाणी पुकारा ।।टेक।।
विरद तुमारी पतीत पावन तुमहिं लाज न आवई ।।
प्रभु देखता बहि जाऊं भौजल सरणैं क्यों न बुलावहीं ।।
गुण धरै मोहि मिलन की हरि अवधि जो यौं ही गई ।।
परसराम प्रभु तुम न साहिब दास मैं तेरा सही ।।५।।

राग गौड़ी–

मेरे मन भजि श्री राम ज्यों होय कछु चिन्त तुम्हारिये ।।
मूरख बुद्धि आपण पायो जनम न हारिये ।।टेक।।
हारिये जनम न जोनि हरि विण राम रंगि रहिए मनां ।।
विण राम बंधु है कोय नाहीं और जो भर्मै घनां ।।
छांडि संक निसंक सुमिरौ भूलि छिन न विसारिए ।।
मेरे मन भजि श्रीराम राघौ जो कछू चित गति पारिए ।। विश्राम।।१।।
जो पाई नर जोनि तौं हरि भजि विषैं विसारिए ।।
छांडि कपट करि हेत रसना राम संभारिए ।।
संभारिए रसना राम निर्भै निगम जाहि कीरति करै ।।
साखि सबल विचारि सुमिरौ नाथ जल प्रस्तर तिरै ।।
सेस धरणि समानि सिरधरि सोइ न हरि विसरौ रति ।।
मन मूढ़ चेति न बूड़ि भौजल, सुमरि हरि त्रिलोक पति ।।विश्राम।।२।।
मन हरि जी को सेव जो तोकौ सुख चाहिए ।।
मिटहि जनम जम त्रास हरि सुमर्यां पति पाइए ।।

पति पाइए हरि सुमरि रे मन प्रीति हित राखौ करी ।।
जिन नांहि रोर कलंक जमपुर मिटहिं जो सुमिरौ हरी ।।
छांड़ि श्रौर जंजाल वहु भ्रम नांव निज राखौ हृदा ।।
होई सुमरि हरि सत्र लोक नाइक सरणि सुख उपजै सदा ।।विश्राम।।३।।
हितू नही विण राम जो जन सति करि जाणें ।।
भाव भजन भगवन्त विण दुनिया श्रवर न श्राणें ।।
दुनिया न श्राणें श्रवर मन मैं भगति विण भगवन्त की ।।
ब्रम्हपुर सिव लोक ऊपरि पर्म पद पावै सुखी ।।
सोई सुमरि पलु न विसारि हरि हरि राम रमौं नितू ।।
परसराम जन जाणि सत्य राम विण सम कोई नाहीं हितू ।।विश्राम।।४।।६

राग गौडी–

वृन्दावन सोभित भयो रंग होरी हो ।।
चितवत स्याम सरूप स्याम रग होरी हो ।।टेक।।

गंुजास मधुकर करै रंग होरी हो ।।
कुसमित वास श्रनूप स्याम रंग होरी हो ।।
देखि श्रधिक रूचि उपजि रंग होरी हो ।।
रितु बसन्त गोपाल स्याम रंग होरी हो ।।१।।

खेले भीर वनायकै रंग होरी हो ।।
इत गोपी उत ग्वाल रंग होरी हो ।।
निर्ति करै नट नागरी रंग होरी हो ।।
गावै सवद रसाल स्याम रंग होरी हो ।।२।।
कंूकंू केसरि कुमकुमां रंग होरी हो ।।
धरि श्रगर कपूर सुवास स्याम रंग होरी हो ।।
मिलि श्ररस परसपर चरचहीं रंग होरी हो ।।
श्रति श्रानन्द प्रेम विलास स्याम रंग होरी हो ।।३।।

हलधर हित समझाय कै रंग होरी हो ॥
लीनों अपणी वोर स्याम रंग होरी हो ॥
स्याम भरण भये कारणे रंग होरी हो ॥
चमकै चितह् चकोर स्याम रंग होरी हो ॥४॥
संकरषण सुणि विनति रंग होरी हो ॥
स्याम पकरी दै मोहि स्याम रंग होरी हो ॥
सौंह करै वृषभान की रंग होरी हो ॥
हमहिं भरै जो तोहि स्याम रंग होरी हो ॥५॥
संकरषण भुज भीरी के रंग होरी हो ॥
आणै स्याम सरीर स्याम रंग होरी हो ॥
चौवा चन्दन वरषहीं रंग होरी हो ॥
अति उड़ै गुलाल अबीर स्याम रंग होरी हो ॥६॥
एक भरण भरि ढारही रंग होरी हो ॥
एक राखै हरि कौ वोट स्याम रंग होरी हो ॥
इक और और पे मांगहीं रंग होरी हो ॥
इक दौरै करि करि जोट स्याम रंग होरी हो ॥७॥
इक नैननि अंजन करै स्याम रंग होरी हो ॥
इक पूछै चन्दन चीर स्याम रंग होरी हो ॥
एक भरण भरि थकि रही रंग होरी हो ॥
एक रही उर भीरी स्याम रंग होरी हो ॥८॥
सवै हंसी हरि देखि कै रंग होरी हो ॥
सिव सरूप बलवीर स्याम रंग होरी हो ॥
नैक अबहिं जो भूलहीं रंग होरी हो ॥
विलज भई श्रम खोय स्याम रंग होरी हो ॥९॥

हम तें सरयौ सुहम कर्यौ रंग होरी हो ।।
अब करहुं जु तुम तें होय स्याम रंग होरी हो ।।
अंचल पकरि राधा गही रंग होरी हो ।।
चन्द्रभागा मुसकाय स्याम रंग होरी हो ।।१०।।
हलद कलस जल भेद सौ रंग होरी हो ।।
रह्यो रंग रसदाय स्याम रंग होरी हो ।।
ललिता लज्जित होय रही रंग होरी हो ।।
जब दौरि गही हरिराय स्याम रंग होरी हो ।।११।।
चिर भिजायो सीस तै रंग होरी हो ।।
दियौ भरण छिटकाय स्याम रंग होरी हो ।।
भाम सखि घर गहि रही रंग होरी हो ।।
लौचन कर सौं भीचि स्याम रंग होरी हो ।।१२।।
कीच मच्यौ ब्रज बीच स्याम रंग होरी हो ।।
प्रेम सिन्धु सलिला मिलि रंग होरी हो ।।
तन मन सुधि न सम्भाल स्याम रंग होरी हो ।।
अति औसर सुर देख ही स्याम रंग होरी हो ।।१३।।
उचरैं जैं जै कार स्याम रंग होरी हो ।।
खेलि फाग सुख उपज्यो रंग होरी हो ।।
हुंसित फिरे बृजलाल स्याम रंग होरी हो ।।
चले जमुन जल झूलने रंग होरी हो ।।१४।।
गोविन्द गोपी ग्वाल स्याम रंग होरी हो ।।
गावै गुण बृज सुन्दरी रंग होरी हो ।।
सुनत गोप दै प्रीति स्याम रंग होरी हो ।।
परसराम प्रभु संगि सदा रंग होरी हो ।।१५।।७।।

राग गौड़ी–

श्री गोपालहिं हिंडोरैं झूलै नन्द भुवन अति राजै ।।
वने अधिक सुख मूल कलपतर झकझोरे रंग छाजै ।।टेक।।

कनक खम्भ पिरोजा मणिगण हीरा जटित विराजै ।।
तोरन कलस ध्वजा मन्दिर अति रच्यौ चरित्र उस्ताजै ।।१।।
वृज वनिता वहु वृन्द चहुं दिस ठाढ़ी नवसत साजै ।।
निरखत बैठि झरोखनि जहां तहां अवनि अटारनि छाजै ।।२।।
एक झुलावत चौर ढुरावति एक चितै चित लाजैं ।।
मन मोहन सबके मन मोहै अति आरति उपराजैं ।।३।।
तव लै आई भटु भरण सुवासिक चरचन हित हरि काजैं ।।
चरचत बोलि परस्पर वृज पति सकल सखिनि सिरताजैं ।।४।।
नाना धुनि वहु वाजिद्र मधुर पंचासुर दुंदुभि वाजैं ।।
नाचत करत कुतूहल गावत मानौं वरिषा घण गाजैं ।।५।।
पर्म विनोद सकल सुख पेखैं पर्म सुमंगल भ्राजैं ।।
जै जै कार पहुप सुर वरिखत सुणियत सरस अवाजैं ।।६।।
सुर नर सव कै सुख दायक जांणि गरीव निवाजैं ।।
प्रगट रूप व्यापक सचराचर सुजस प्रेम की पाजैं ।।७।।
वृज वालक लीला अवतारी वपु धारैं पर काजैं ।।
भवतारण कौं परसराम प्रभु हरि भये पर्म जिहाजैं ।।८।।८।।

राग गौडी–

झूलत डोल नंद नंदन वन सोभित सुंदर वारे ।।
रितु वसंत वडराज विराजित श्री गोपाल पियारे ।।टेक।।
संगि सखा वहु वृंद विराजित प्रेम सिंधु नदिनारे ।।
एक मेक मिलि खेलत झूलत तन मन वसन विसारे ।।१।।
अति औसर सोभित पुर मंडल देखत कौतिग सारे ।।
और अमर सिव सक्र विधाता बैठि विवांनि पधारे ।।२।।
वरिषत सुर वहू पहुप पुंज अति जै जै सबद उचारे ।।
गावत सुजस सुमंगल सव मिलि परसा जन वलिहारे ।।३।।९।।

राग गौडी-

चलन कहत हरि द्वारिका रंग लागौ हो ।।
गोपी सुनावत स्याम रंग लागौ हो ।।टेक।।
स्याम कहत सुणि सुंदरी रंग लागौ हो ।।
रहि हौ कि चलिहौ साथि स्याम रंग लागौ हो ।।१।।
राज सुता वृषभान की रंग लागौ हो ।।
राधा नांव कहाय स्याम रंग लागौ हो ।।
संगि तुम्हारै वणि रही रंग लागौ हो ।।
अब कित बिछुओ जाय स्याम रंग लागौ हो ।।२।।
जीव की जीवनि केसवे रंग लागौ हो ।।
कंवल नैन वृजनाथ स्याम रंग लागौ हो ।।
और सबै विधि बीसरी रंग लागौ हो ।।
मोहि भावै यह साथ स्याम रंग लागौ हो ।।३।।
तलफि तलफि जिय जाय स्याम रंग लागौ हो ।।
चितही मै चितवसि रह्यो रंग लागौ हो ।।
संगि समीप सभाव स्याम रग लागौ हो ।।४।।
मेरे नैननि तै नेरे रहो रंग लागौ हो ।।
तजि अनतै जिनि जाउं स्याम रंग लागौ हो ।।
तवै निकटि हिरदै वसै रंग लागौ हो ।।
चलहु तासंगि लै जाहु स्याम रंग लागौ हो ।।५।।
देहु सन्देसहूं मिलै रंग लागौ हो ।।
अंतरि मिलै न कोय स्याम रंग लागौ हो ।।
अंतर जामी तुम विना रंग लागौ हो ।।
भौ भ्रम दूरि न होय स्याम रंग लागौ हो ।।६।।

जाति वरण कुल विसिर्यो रंग लागौ हो ।।
जब तें भई तुम पासि स्याम रंग लागौ हो ।।
जीवन जनम सुफल भयो रंग लागौ हो ।।
मिटी तपति तन त्रास स्याम रंग लागौ हो ।।७।।

मिटी आवण जाण की पास रंग लागौ हो ।।
जनम कर्म वंधन कटे रंग लागौ हो ।।
तोहि मिल्यां दुख बीसर्यो रंग लागौ हो ।।
अव जु भयो सुख मोहि स्याम रंग लागौ हो ।।८।।

कह्यो सुणौ जो दास कौ रंग लागौ हो ।।
अव न भयहूं उदास जु रंग लागौ हो ।।
प्रीतम प्रीति विचार स्याम रंग लागौ हो ।।
तारण तरण मुरारि स्याम रंग लागौ हो ।।९।।

जदपि सकल सुख देखि हौ रंग लागौ हो ।।
तऊ त्रिपति नहीं तुम वसि रंग लागौ हो ।।
परसा प्रभु या वीनती रंग लागौ हो ।।
सुनि प्रीतम वृजराज स्याम रंग लागौ हो ।।१०।।१०।।

राग गौडी–

राम सुमरि सचु पाइए तजिऐ विषै विकारौ रे ।।
अमृत नांउ न छांडिए जपिए वारौवार रे ।।टेक।।
यो रस वादि न खोइए पीवत जो रस जोए रे ।।
पीवै सो सुख जीवई ताहि विकार न कोए रे ।।१।।
काल कर्म भ्रम परिहरौ निर्भै हरि गुण गाये रे ।।
जा गायां फल पाइये आवागवण विलाये रे ।।२।।

रे मन सोचि न देखई ऐसो जनम न वारी-वारी रे ॥
रहत न कोई देखिये जात सकल संसारी रे ॥३॥
ऐसो प्रीतम खोजिये सांच सनेही सारौ रे ॥
जीव की जीवनि केसवे अविगत अलख अपारी रे ॥४॥
सांच वचन ऐसें कहैं झूठ वंध्यो जिन जाये रे ॥
हरि प्यारो अतरि वसै तासौं मिलि मन लाये रे ॥५॥
प्रकट पसारौ जिनि रच्यो छांदै जप्यौ न जाये रे ॥
वाहरि भीतरि सारिखौ सब घट रह्यो समाये रे ॥६॥
परसा सुणि सतगुरु कहै पर आसा निज जाये रे ॥
अपणौ आप संभारिये प्रेम प्रीति ल्यौ लाये रे ॥७॥११॥

राग गौडी–

ध्रिग जीवनि नर हरि विना भज्यौ न राम दयाल रे ॥
प्रेम भगति उपजी नहीं चाल्यो जनम ठगाय रे ॥टेक॥
मैं मेरी मैं वहि गयो मूरख माया जाल रे ॥
सतगुरु मिल्यो न भै मिट्यौ सुमर्‌यौ न राम संभार रे ॥१॥
सगति करी न साध की अंतरि वस्यौ विकारो रे ॥
भौ सागर मैं वहि गयो बूडि मुए वेकामौ रे ॥२॥
झूठा सौ झूठौ रच्यो सोचि न पायो सांचौ रे ॥
हीरो डार्‌यौ हाथ तैं मुगध बिसार्‌यो काचौ रे ॥३॥
परसा आसनि मनि गहै माया संगि न वंधाये रे ॥
जनम सुफल तब जाणिए जब राम रमै ल्यौ लाये रे ॥४॥१२॥

राग गौडी–

राम विसार्‌यो रे जीया ॥
मेरे जीव की जीवनि प्राण रे ॥टेक॥

अंतरगति समझै नहीं भूला फिरै गंवार ।।
भूल्यां भरम न छूटई तौ मिलै न राम अपार ।।१।।
का कहिये समझाइये जो कही न मानै कोय ।।
दीन न जाणैं आपणौं भूलि रही सब लोय ।।२।।
हिंदू भूले भरम मैं करि भूतन की आस ।।
निर्फल हरि की भगति विण चाले छाडि निरास ।।३।।
तुरक तेज तामस गहैं चालैं कुल की रीति ।।
मारै जीवत जीव को सेवै सौं न मसीति ।।४।।
राचि रही सब झूठ सौं सांचैं कोई न पत्याय ।।
परसराम प्रभु निकट है पैं प्रगट न देत दिखाय ।।५।।१३।।

राग गोड़ी–

हरि प्रीतम सौं विसिर्‌यो मन लागौ झूठैं स्वादि रे ।।
जग स्वारथ पासी मैं पर्‌यो तैं जनम गंवायो वादि रे ।।टेक।।
सुपिनै को सुख देखि करि तोहि चढ़ि आयो अभिमान रे ।।
अंध भयो सूझ्यो नहिं तोहि हरि दीपक गुरु ग्यान रे ।।१।।
मगन भयो फूल्यो फिरै मोह्यो माया कै जार रे ।।
सदा अचेतनि ही रह्यो छलि खायो संसै काल रे ।।२।।
जमपुर जात न धीर दै नैक सर्‌यो न काहू राखि रे ।।
विमुख भयो हरि नांव तैं तातैं भरत न कोऊ साखि रे ।।३।।
परसा प्रभु विण जो कियो तिहि कारिज सर्‌यो न कोय रे ।।
ज्यों आयो त्यौं ही गयो नर जनम पदारथ खोय रे ।।४।।१४।।

राग गौड़ी–

समझि मन मेरे हरि भजि ।।
विषै विसारि सब तजि राम संभारि ।।टेक।।

त्रिगुणि माया वसि भयो रे जात सकल संसार ।।
चौथे चित लागै नहीं तौ कैसे मिलै अपार ।।
वहुत विगूचणि भरम की रे राम न आवै हात ।।
डाल पकरि झखि पचि गये पैं मूल चढ्यो नहि हाथि ।।२।।
कठिन भूलनी द्यौस की रे पंथ न लाभै राति ।।
रनवन फिरत न पाइए रे सांच सनेही साथि ।।३।।
जो आपण पौं न पिछाणिये तौ मन मानैं क्यौं माहि ।।
हेत न उपजै नांव सौं तो मनसा मनि न समांहि ।।४।।
अन्तर गति उपजै नहीं परसा प्रेम प्रकास ।।
राम मिलवो कठिण है जो मिटै न आसा पास ।।५।।१५।।

राग गौड़ी—

सुमरि मन मेरे रे सब सुख राम सहाय ।।
बकि वादि वहचो जनि जाय ।।टेक।।
केई पंडित कथनी कथै केई रीझै सुर गाय ।।
केई सुणि करि सुख पावहीं केई पूजा ध्यान लगाय ।।१।।
केई करणी कुल ऊंच नीच बहु भेष न येक कहाय ।।
एकां समझि न आरसी एक मन देखैं तन मांहि ।।२।।
सीर नहीं हरि भजन सौ कोई क्यौं पति पाइ ।।
एकां राम न भावई एक राम रमैं ल्यौ लाइ ।।३।।
एकां नीर न भावई एक पीवैं येक प्यास ।।
जब बूडै नांव समंद मैं तब को काकै बिस्वास ।।४।।
दह दिसि लागी अंघवन झालै झाल मिलाय ।।
तब अपणौ अपणौ जीव लै सब आप आप कौं जाय ।।५।।

एक जलनि तें ऊवरे एक दाधे माया लागि ॥
नांऊं केरि जु लाईए जे निकसे हैं भागि ॥६॥
एक जिगि जोग तीरथ करें एक वधिक जीव वधिखाय ॥
पाप पुण्य वांटे नहीं कोई वूडौ तिसै सुभाय ॥७॥
एकां ऊजड़ काम है एक पैंडे लागा जाय ॥
एक राजा इक रंक है तौ काको कहा वसाय ॥८॥
दुखी पुकारै रात दिन सुखियां सुखहि विहाय ॥
औरां पीर न व्यापई कटै सोई कुमिलाय ॥९॥
साहिव लेखा मांगि है जो जाकै सिर होय ॥
अपणौं अपणौं सांच दै छूटैगा सव कोय ॥१०॥
मिथ्या वाद न कीजई तेरा कीयां न होय ॥
परसराम प्रभु सांच है कछु राम करै सति होय ॥११॥१६॥

राग गौडी–

हरि निर्मल मल तजि गाय तहां मल नाहीं रे ॥
जाहि गावत मल मिटि जाय ॥टेक॥
सीतल रितु वरिषै सदा अमृत प्रेम प्रकास ॥
पीवै सो सुख जीवई सोई दास मरै नहीं प्यास ॥१॥
निहक्रम कर्म न व्यापई विद्या वाद न कोय ॥
ताहि क्यौं कर्म लगाइये जो सरणि लेय कर्म खोय ॥२॥
अमंड पिंड पूरण धणी सव व्यापै जाकी आण ॥
साचै झूठ न लाइए जो निर्भै पद निर्वाण ॥३॥
आस कर्म वडदा सवै ग्यान ध्यान उनमान ॥
भगति मुकति वादि है जन परसा भजि भगवान ॥४॥१७॥

राग गौडी-

भजन भै हरण कौरे मेरै मन रह्यो समाय ।।टेक।।

अगह गह्यो कर बंध विण रे बंध बध्यौ निरबंधि ।।
सोई लखै जु तहां रहै थिर अकल सकल की संधि ।।१।।
अकल निरजन कल रची रे कल मिटि अकल समाहि ।।
यह अचिरज जन कै वसैरे नाम निरंजन माहि ।।२।।
राम चरित गति को लखै रेजन जी वै जस गाय ।।
जस जीवनि हिरदै वसै भाई रे हरि भजि हरि मिल जाय ।।३।।
अब न चलै मन थकि रह्यो रे पायो निर्भै साथ ।।
परसराम निज नांव निधि भाई रे सब सुख अविगत नाथ ।।४।।१८।।

राग गौडी-

राम रमि जीऊं रे मेरौ मन मानैं हरि गाय ।।टेक।।

जाकी काया काल न व्यापई रे अकल अतीत सु एक ।।
वाहू विनोद वादी रची रे दीसै भेष अनेक ।।१।।
बाजी दिन दस देखिय रे अतै होय विणास ।।
राम नाम निज थिर रहै रे ताहि लागि रहै कोई दास ।।२।।
भूठ सबै जो देखिये रे उपजै खपै विलाय ।।
परसराम प्रभु साच है भजि आवागवण विलाय ।।३।।१६।।

राग गौडी-

जपौं निरंजनां मेरैं अंजन सौं चित नांहि ।।टेक।।

अंजन आवत जात है रे उपजै खपै विलाय ।।
तासौं मोह न वांधिये मन पाछैं ही पछिताय ।।१।।
अकल अचल कल विणसि है रे संतो सुणौ विचार ।।
निहक्रम कर्म न लाइये जो अविगत अलख अपार ।।२।।

अप समझयां जाणै सबै समझयां लहै न भेव ॥
परसा पूजि न जाणौ वै पैं हरि सौ मेरा नेह ॥३॥२०॥

राग गौडी–

स्याम सनेही प्रीतमां मोहन मिलि सुख देहि हो ॥
रहि न सकौं पीव तो विनां हरि लागौ मेरौ नेह हो ॥टेक॥
तन मन तेरा तू सही पीव नांव गांव विश्राम ॥
जीवकी जीवनि केसवे हो जन के पूरण काम ॥१॥
अंतरि बसौ न बोलहूं पीव कौण तुम्हारी वात ॥
ठगन करौ न ठगाय हौ हो तजि अविगत अपघात ॥२॥
देखौ कहा न छाडि हौ पीव सांच वचन की रीति ॥
तो सौं मोहन मन तजै न हरि लागी मेरी प्रीति ॥३॥
प्रेम विनां न पिछाणिये पीव साहिब जन परतीति ॥
तू मिलि मोहि मिलाय लै हो वस्यौ हमारै चीति ॥४॥
मोहि तोहि अंतर मेटि दै हो परसा प्रभु मिलि आय ॥
जन तरंग दरिया बसै हो जहां की तहां समाय ॥५॥२१॥

राग गौड़ी–

तहां भै नाही रे जहां अनभै राम अगांहि ॥टेक॥
अखिल भुवनपति थिर रहै सुरति निरति ल्यौ मांहि ॥
दुख सुख तहां न व्यापई तहां दीसै घाम न छांहि ॥१॥
राति द्यौस धरणी नहीं नहीं चंद सूर आकास ॥
अकल निरंजन अचल है कोई देखै दास निदास ॥२॥
जहां पाणी पवन न व्यापई रे उतपति प्रलै न काइ ॥
अविनासी विनसै नहीं सोई मरै न आवै जाइ ॥३॥

आदि अंत परिमित नहीं अविगत अलख अभेव ।।
वार न पार अथाघ है सब व्यापक पूरण देव ।।४।।
छाया माया मूल मैं सब अपणें सहज समाय ।।
परसा अचिरज देखि कैं मन चरण रह्यो उरझाय ।।५।।२२।।

राग गौड़ी–

भगति जन सो लहै रे त्रिगुण रहित रमै राम ।।टेक।।
लोभ मति लालच तजै रे भजै निज हरि नांव ।।
आसा तिष्णा परिहरैं भाई रे सो पावै निज ठांव ।।१।।
मोह मद माया तजै रे काम क्रोध विकार ।।
गर्व गांठि गुमान विण भाई रे सो सेवक निज सार ।।२।।
मैं रतै अप वल तजै रे दुख रु सुख भ्रम हांणि ।।
ससार मारग नां रचै भाई रे पहुंचै पद निर्वाणि ।।३।।
राम नाम निरास सुमिरै प्रेम प्रीति लगाय ।।
भाव भगति भीतरि भिदै भाई रे हरि रीझ जाय ।।४।।
माया ब्रम्ह विचारि करि घर लहै अकल निवास ।।
निरसंसै निरवैर होय भाई रे परसा सो निजदास ।।५।।२३।।

राग गौड़ी–

कैसें करि हरि मोहि मिलाय ।।
थिर न रहै मन जित तित जाय ।।टेक।।
रसनां सदा स्वाद कौं लोचै ।।
मेरो कह्यो कछु नहिं सोचै ।।१।।
ना सुर वेध्यौ पहुप सुवास ।।
नाहीं हरि सुमिरण की प्यास ।।२।।

श्रवण सुरति हरि कथा न भावै ॥
परिहरि सांच झूठ चित लावै ॥३॥
इन्द्री रहत विषै वन घेरें ॥
मैं का करों नहि वसि मेरें ॥४॥
नैण महारस लंपट प्रीति ॥
परसा राम न आवै चीति ॥५॥२४॥

राग गौडी—

माया सब जग खाया रे ॥ तातैं गोविन्द नांव न पाया रे ॥टेक॥
राजा रंक छत्रपति भोपति ग्यानी गुणी अहं वड सोई ॥
चाले जात अचेतन अपवल तिन मैं रहत न दीसै कोई ॥१॥
राम विसारी विकारांहि बांधे गये अफल फल अपणै खाय ॥
परसराम हरि भजि जन उवरे जाकै दुख आस निरास न होय ॥२॥२५॥

राग गौडी—

सब जग कालै सांप संघारया ॥
मुहरा जहर जड़ी दिठि आई तातै अधिक विकार्या ॥टेक॥
चेला भोपा गारुड़ी गावै देखै लोग सवाये ॥
पूछै कहै बोत कहूं नाही उठै मैड़ सवाये ॥१॥
झाड़ै झूड़ै सुख न भयो कछु मंत्र जंत्र अधिकाई ॥
भयो अचेत चेत कछु नाहीं विषै भर्यो मरि जाई ॥२॥
जो कोई वैद वतावै वोखद तो जग कै कीयां न होई ॥
परसराम विण राम धवंन्तर जीवै नाहीं कोई ॥३॥२६॥

राग गौडी—

हरि विण धोखै वहुत विगोई ॥
दरिया राम कलस है काया भरि पीवै सूर कोई ॥टेक॥

अवरण वेलि सकल वन छाया दीसै पवन पसारा ॥
तेज फूल पाणी फल जामें सबै भयो विस्तारा ॥१॥
है आकास अंत नहीं कोई सोई ऊंकारि समाया ॥
पांचो तत्व वसें ताभीतरि विणसै भेख वनाया ॥२॥
मैं तें माया मोहि मुस्यो जग आसा पास वंधावै ॥
परसा घट फूट्यां सब छूटै मुकत होय घरि आवै ॥३॥२७॥

राग गौडी–

दुनियां हरि तजि भरमि भुलानीं ॥
देखत नांहि निकट जमयानी ॥टेक॥
तृष्णा तृपति मोह की ज्वाला ॥
राम बिनां न कटै भ्रम ताला ॥१॥
पर अपवाद बदत सुख पावै ॥
प्रेम कथा रस राम न भावै ॥२॥
वाह सब हतां राम न गावै ॥
प्राण थक्यां पाछै पछितावै ॥३॥
परसा कही न मानैं कोई ॥
भव जल बूडत पार न होई ॥४॥२८॥

राग गौडी–

भूले रे भूले भव भरमत सक्यौ न राम संभारी रे ॥
काहे कौं वादि विगूचत बरजत रतन जनम जिन हारी रे ॥टेक॥
दहं दिसि वैरी आय पहूंचें भागा जाण न पावै रे ॥
घर भयो दूरि चलत भै भारी भीर पर्‌यां पछतावै रे ॥१॥
ग्रीषम ऋतु अरु पावक आग्यो पवन मिली झल आवै रे ॥
उवरण दूरी निकट जलि मरणां जल विन कौण बुझावै रे ॥२॥

ज्यौं जल भीतरि मीन रहत है कालि जालि छल लीया रे ॥
अब कहा होय पाछैं पछितायें जो मीत न मोहन कीया रे ॥३॥
मीच जरा जम आय पहुंचे तव कछूवै न वसावैं रे ॥
परसराम प्रभु राम सरण विन लीजत कोण छुड़ावैं रे ॥४॥२६॥

राग गौडी-

देखौ करता वुद्धि उपाई ॥
आप निरंतर अंतर छाया दुनियां भरमि लगाई ॥टेक॥
केई कहैं दूरि केई कहै नीरा समझि न परई काई ॥
विण वेसास आस तजि हरि की चाले जनम गवाई ॥१॥
घरि भूले वाहरि कौ भागे भौ फिरि सुरति न जाई ॥
भुरकी लागि भुलाये जहां तहां आपु न दई दिखाई ॥२॥
वाजी डाक मंडयौ वड औसर देखि सबै डर आई ॥
ताकी गति जाणैं जन भेदी दूजा कोई न पत्याई ॥३॥
आपण अकल अनंत रूप धरि वहु भूलनी भुलाई ॥
भर्म विकार मोह ममता वसि तामैं सबै समाई ॥४॥
व्यापक ब्रम्ह सकल परि पूरण पडदैं लख्या न जाई ॥
परसराम प्रभु दूरि न दूजा एक रु नीरा भाई ॥५॥३०॥

राग गवडी-

अविगत नाथ तुम्हारी गति कौं जीव कहा कहि गावैं ॥
सेस सहस मुख दई दोइ रसनां सोई पार न पावै ॥टेक॥
ब्रम्हा विष्णु महेस सुरेसुर सो नाहिंन पहिचाणैं ॥
निगम रटत निति नेति नेति कहि जैसे तुम हो सू नहीं जाणैं ॥१॥
अगम अगाहि अगोचर सव ते सब काहू मैं बोलै ॥
अंतरजामी वसै निरंतर अंतर देव न बोलै ॥२॥

वाहरि भीतरि भीतरि वाहरि कहूं पाती कहूं पूजा ।।
देखै सुणै कहै सुख मानें भयो एक तें दूजा ।।३।।
कहिये येक येक कथणी करि करि वहु भेष दिखावै ।।
आपण अकल सकल सहजें कल सौं कल लाइ चलावै ।।४।।
स्वर्ग सुरति वरिषा वादल करि का फूलै कुमिलावै ।।
उपजि उपजि जाकी माया ताहि मद्धि समावै ।।५।।
वाजी सब वाजीगर कै वसि वाजीगर नहिं आवै ।।
परसराम कर की पुतली नाचै ज्यौं कोई नचावै ।।६।।२१।।

राग गौड़ी–

प्रभु दीन दयाल तुम्हारी महिमा सेस सहस मुख गावै ।।
दोय दोय रसनां नाव नये नये सुमरि सुमरि सुख पावै ।।टेक।।
रटै सदा ऐका रस जीवनि ताई ध्वनि सुनै सुनावै ।।
हरि गुन वार पार विण मंगल पर्म अमीरस भावै ।।१।।
सिंघासण अपणें उरकौ करि कें ता ऊपरि वैठावै ।।
ता ऊपरि मणि जटित विराजित फण कौ करि छत्र वनावैं ।।२।।
फण के फण की चंचल चहुं दिस रसनां करि चंवर चरावै ।।
रहै सदा इक टक ठाडो हरि सनमुख सीस नवावै ।।३।।
हरि मन्दिर सेज्यां. सरीर करि हित हरि कौ पौढ़ावै ।।
अति विचित्र उपमां अनंत तन कै करि वसन उढ़ावै ।।४।।
हरिजी सौं प्रेम नेम निहचौ व्रत बांध्यो सु न छिटकावै ।।
करै अखंड चरण सेवा फण पंखा पवन उडावैं ।।५।।
ताही हरि को निजरुप निरंतर धरि सोई ध्यान लगावै ।।
सर्वस अपणौं 'हरि कै वसि करि मन मनसा न भुलावै ।।६।।

दीपक पर्म प्रकास तिमिर हर हरि ताही मद्धि समावै ॥
एकमेक परसा प्रभु जन न्यारो कवहूं न दिखावै ॥७॥३२॥

राग गौडी--

हूं श्रायो हरि तेरी सरणाई ॥
राखि लेहूं सम्रथ सुखदाता भव बूडत भगवंत कन्हाई ॥टेक॥
भ्रमत भ्रमत वहु ठौर श्रव रमैं थकित भयो तुम करऊं वडाई ॥
जाऊं कहां तुम तजि करुणामैं सुन्यौ न को श्रान सहाई ॥१॥
दीन दयाल कृपाल कृपानिधि कलिमल हरण विमल हरि राई ॥
श्रसरण सरण श्रनाथ वंधु प्रभु साखि सुवेद पुराणनि गाई ॥२॥
भगत वछल भय हरण श्रभै कर करुणा सिंधु सुण्यो सुखदाई ॥
परसा पति तव चरण हुयै थिर श्रव न तजौ गोपाल दुहाई ॥३॥३३॥

राग गौडी--

करता कपट कीयां न पत्याई ॥
श्रधिक सुजाण भरम तें न्यारा दीसै प्रीति लगाई ॥टेक॥
ममता मारि धरै जो धीरज मोह पासि न बंधावै ॥
तजि श्राकार विकार दीन होय तव कोई फल पावै ॥१॥
जीवत मरै जगत सव जाणै लागी मोहि न दाझै ॥
विह्वल होय मिटै वल मन को तव जुति सौं जुति वोझै ॥२॥
स्वारथ छाडि रहै परमारथ श्राया पर सम जानै ॥
परसराम जो कहै करै सो ता जन की प्रभु मानैं ॥३॥३४॥

राग गौडी--

पति कौ दुवध्या कवहूं न पावै ॥
एक तजैं दिसि होय न चितवै पति ताक ,बसि श्रावै ॥टेक॥

सब मैं राम बसै अंतरगति चहुं दिस पूरी जाणें ।।
सांच नाम सुख वंध्यो ब्रम्ह बसि या खोजै सु पिछाणें ।।१।।
भाव भगति अंतरगति हित सौं आया पर सम जानैं ।।
तुलसी तिलक पाक पूजा विधि ताजन की प्रभु मानैं ।।२।।
लै वैसास सहज घर पावै गावै निज तजि जौंही ।।
हरि पद प्रेम रहै ल्यौ लाएं परसा तिरिवौ योंही ।।३।।३५।।

राग गौडी--

समता ऐसे दिष्टि न आवै ।।
अहंममता वसि जाय वह्यो मन पायो मूल गवांवै ।।टेक।।
ज्यौं वनचर वसि नाट चरित कैं नाना स्वांग दिखावै ।।
भूलौं भर्मि पर्म गति तजि करि विष स्वारथ रस गावै ।।१।।
अंग सुवास फिरै वन ढूंढ़त सारंग सुद्धि न जाणें ।।
आस लुवधि जित तित जग भटकै घरि पति कौं न पिछाणें ।।२।।
वाहरि जाय वंधै नहीं परवसि पैसि भुवन मैं सोचै ।।
परसा राम दरस ताकौं दे जो हरि दरसन कौं लोचै ।।३।।३६।।

राग गौडी--

साहिब जन एकैं करि जानि ।।
दो येक हैं जिनि सति करि मानि ।।टेक।।
ज्यौं जल तरंग दरिया मैं वासा ।।
ऐसैं हरिजन एक निवासा ।।१।।
जैसे तरु अंतरि रहै छाया ।।
तैसे ब्रम्ह दास तजि माया ।।२।।
दास भाव गति राम पिछाणै ।।
राम भजन सुख सेवग जाणै ।।३।।

निज जन राम निरंजन गावै ।।
दुनियां करि पूतला दिखावै ।।४।।
दुविध्या दूरि गया दुख भारी ।।
ऐसे मतै होय संसारी ।।५।।
साहिब जन अंतर को नाहीं ।।
परसा साच जाणि जिय माही ।।६।।३७।।

राग गौडी–

देवा यह अचिरज मोहि आवै ।।
गावै सुणै वजावै नाचै रीझै कौण रिझावै ।।टेक।।
गायां सुण्यां कह्यां नहीं रीझै है राम विनां अनुरागी ।।
ताकी आस निरास रहै कोई महापुरुष वड भागी ।।१।।
अविगत कथा तुम्हारे घर की मोपैं कही न जाई ।।
अपणैं सहज सुरति ल्यौ लागै तव तुम देहू दिखाई ।।२।।
जल विन कंवल कली विण ढाडी पडे पार कछु नाहीं ।।
परसराम तन तजि मन रीझौ हरि सुन्दर की छांही ।।३।।३८।।

राग गौडी–

देवा सेवा न जाणौं तेरी ।।
तू अथाह अविगत अविनासी है न कछु मति मेरी ।।टेक।।
कहां चरण तन सीस तुम्हारा मैं मूरख मरम न पाऊं ।।
कहां धरौं तुलसी दल चंदन कैसें भोग लगाऊं ।।१।।
कहां उत्तर दछिन पछिम दिसि केहां दिष्टि पसारा ।।
तीन लोक जाके मुख भीतरी सोव कहां मुख द्वारा ।।२।।
तुम ठाढ़ै रहौ कि वैठो कवहूं किधौं जागि अजागि कहावौ ।।
कहां वसौ घर कौण तुम्हारा नांव कहां समझावौ ।।३।।

कौन बिड़द ऐसो तुम लायक का उपमा लै दीजै ।।
परसराम को कहै सुणें यों को गावै को रीझै ।।४।।३९।।

राग गौडी–

देवा तुम ही हो मैं नाहीं ।।
दुविध्या गई रही सोई जैहें तुम अस्थिर सब माहीं ।।टेक।।
आदि रु अंति एक अंतर गति मोहि ऐसो दिठि आवै ।।
तुम दीरघ लघु वसै भरम वसि तातैं तो कौ गावै ।।१।।
यों दीसै सु सवै दुरि जै हैं दुर्‌यो सु प्रगट दिखावै ।।
परसराम अनदेखि महा दुख देखि परम सुख पावै ।।२।।४०।।

राग गौडी–

संतौ को हरि को जन कहिये रे ।।
रमता राम रमैं सबहिनि मैं गुर गम करि किन लहिये रे ।।टेक।।
भरमत फिर्‌यां न लहिये पति कौं जनमि जनमि दुख सहिये रे ।।
साखा छाडि तत्व तरु करता प्रीति पेड़ किन गहिये रे ।।१।।
हरि हरिदै परिहेत न उपजै बिरण परचै तन दहिये रे ।।
परसराम प्रभु अंतरजामी तासौं मिलि किन रहिये रे ।।२।।४१।।

राग गौडो–

संतौ सो सेवग हरि प्यारा ।।
जो निर्भै भयो रहै निर्वैरी राग दोष तें न्यारा ।।टेक।।
जो जग करै सु दास न करई करै जू क्यौं हरि भावै ।।
छाडै आस निरास होय करि पद निर्वाणहिं गावै ।।२।।
सुरति सरोवर पिंड पखारै हंस करै रखवारा ।।
रहै हुस्यार निसांण बजावै मेटै भर्म पसारा ।।३।।
लांघै मरे सुमेर सुर होय घू करि कैं निधि पावै ।।
परसराम निष्कपट ताकै वसि सहज सूनि घर छावै ।।४।।४२।।

राग गौडी–

संतौ राम सगौ किन गावो ॥
तजि सींव की विकार महादुख भूठ कहा चित लावो ॥टेक॥
पल्लंव गह्यां न पेड़ पाइये पेड गह्यां फल पावै ॥
वा फल को रस चाखै कवहू तौ मरै न संकट ग्रावै ॥१॥
वाहरि है सोई भीतरि खोजि सलूझै ॥
है ब्रम्हंड पिंड तें न्यारो हरि सेवग कौं सूझै ॥२॥
रंग महल गति महली जाणैं महली मिल्यौ कहै मारौ ॥
परसा मरण सहै सोई देखैं दुहू मैं एक विचारौ ॥३॥४३॥

राग गौडी–

संतौ काम धेनु गहि आणी ॥
फिरी फिरी खाती खेत अचेतनि सो घर मांहि बंधाणी ॥टेक॥
दीये कपाट द्वार सव रोकै सौं वाहिर जाण न पावै ॥
चरि न नीर्यां धसै गुसौ धरि सौं ही मार न आवै ॥१॥
वालक भागिहु रे हरि जित तित कोई हंसै न वोलै ॥
मिट्यौ कलेस दसौं दिस आनंद वांधी रहै न डोलै ॥२॥
चारौ चरै न दूध न देई अण चीनी वहु दूझै ॥
वेसासी रस, अमृत सर वे न्याणी बहुत असूझै ॥३॥
सहज सु भाय कहावै छिन छिन मन अंतर गति वूझै ॥
परसा ताकौ, दूध पीयां सुख अगम ज्ञान गुरु सूझै ॥४॥४४॥

राग गौडी–

साधो मैं जीवनि की निधि पाई ॥
देखि चरित चित रह्यो थकित होई सौ तजि अनत न जाई ॥टेक॥
सुन्य सुन्य संसार कहत है सुन्य वस्तु दिठि आई ॥
तहां वसै सुर लोक सकल पति अणभै अटल दुहाई ॥१॥

जाकी जोति अनंत अनंत ही लाभै आप गवांए ।।
व्यापि रह्यो ब्रम्हंड खंड मैं दीसै आप सवांए ।।२।।
काहि कहौं को कही न मानैं जानैं विरला कोई ।।
परसराम राम हरि परसि भए थिर आवागवरण न होई ।।३।।४५।।

राग गौडी—

दरिया पूरो रे भाई ।।
अगम अगाहि न जाण्यो किनहूं नैंक निगम गति माई ।।टेक।।
सिव विरंचि सुर मुनि जन थोघे थोघे आई ।।
खोजत खोज सबै खोजी जन अंतरि रहे समाई ।।१।।
पैरुं होय कहां लग पैरे तीर पार होय क्यौं ही ।।
जिनि जैसो उनमान विचार्यो त्रिपति भये सो त्यौं ही ।।२।।
जे जे दुखित दीन भये हरि सौं उत्तम मध्यम कोई ।।
परसा जन आधीन सलील हरि सरणि लीए विष धोई ।।३।।४६।।

राग गौडी—

मन रे तू कछु करै सु काची ।।
तेरा किया कछु नहीं व्है हैं कछु करि है राम सु सांची ।।टेक।।
मैं मेरी कहि कहा बंधावै करता है कोई औरै ।।
ताकौं सुमरि बसै घट भीतरि तेरी नांहि न ठौरै ।।१।।
जब लग मैं तब लग कछु नाहीं वादि ही जनम गंवावै ।।
आपौ मेटि मिलै जब हरि सौं तब कहूं करै सुणावै ।।२।।
तू है कोण कहां तैं आया कहां वसै कछु जाणां ।।
परसा प्रभु तन कौं जब त्यागै तब धौं कहा समाणां ।।३।।४७।।

राग गौडी—

मन रे राम बिना सु सब काची ।।
बिण परतिति जगत का जाणैं का झूठी का सांची ।।टेक।।

करणी कथणी पूजा पोथी भूत भरम की सेवा ।।
सत गुरु सांच विनां सब थोथी जो न भज्यौ हरि देवा ।।१।।
स्वारथ स्वांग धर्‌यां सुख नाहीं जो अंतर बसै विकारा ।।
परसा हेत भगति हरि कै विण नहिं कहूं निस्तारा ।।२।।४८।।

राग गौडी-

हरि रस खारी रे भाई ।।
एक बूंद जो परै काहू मुख तौ ताकौ विष जरि जाई ।।टेक।।
भोग विलास सकल सुख सुंदरि ऐसी मीठी माया ।।
ताकौं तजि विषकौं को चाखै जारै अपणी काया ।।१।।
कर्म भर्म कुल कारणि वारणि विधि यह क्यौं मिटै सवाई ।।
परसराम यह छूटि जाय तब हरि सौं रहै समाई ।।२।।४९।।

राग गौडी-

कोई पीवै दास महारस हित करि जो कोई बड़भागी रे ।।
परम पुरुष सौ प्रीति निरंतर सहज सुरति ल्यौ लागी रे ।।१।।
जग व्यौहार तजै निज रीझै प्रेम झोरि ल्यौ वाझै रे ।।
धीरज धरै रहै थिर हरि सौ जो तूटै ते सांधै रे ।।२।।
दरिया ब्रम्ह सकल सुर मछा दास हस रुचि ठानै रे ।।
परम निवास नांव निधि कैसो ता सेवा सुख मानै रे ।।३।।
राम न तजै भजै भ्रम त्यागै गुण लीयें नृगुण समावे रे ।।
परसराम सो रहै अकल धरि संगि मिल्यो गुण गावे रे ।।४।।५०।।

राग गौडी-

है कोई साध परम वडभागी राम सुमरि सुखि जीवै रे ।।टेक।।
जहां वरषै ब्रम्ह गगन सर भरिये ताकि डिग घर छावै रे ।।
रहै समीप महारस विलसै मरै न संकट आवै रे ।।१।।

आसातजै निरास रहै जो तिहौ गुणा तै, न्यारा रे ॥
अविगत नाथ सरणि सो सेवग रहे गहै निज सारा रे ॥२॥
पार ब्रम्ह सौं प्रीति निरंतर सहज सुरति ल्यौ धारै रे ॥
परसा जुगि जुगि दास अचल सोई जो हरि भजि पल न विसारै रे ॥३॥५१॥

राग गौडी–

साध कहावत लागै बार ॥
बूडत मिलि संसार धार मैं मन स्वारथ न मिट्या अहंकार ॥टेक॥
कुल व्यौहार विपति गति न मिटी और कमावत विषै व्रिकार ॥
दिक्षा देत कहावत स्वामी माहिं रहे लीये सिरभार ॥१॥
व्यास कहाय पर्म पंडित पति वोलत वांणि निगम निजसार ॥
कहि कहि कथा जगत समझावत आप न समझत अंध गंवार ॥२॥
बोलै कछू करै कछू औरें चलि चालै पसू आं कांई और ॥
ज्ञान ध्यान वकि मौनि सुन्य मिलि पाई नहीं सदागति ठौर ॥३॥
इंद्री जीति जती जोगी तप आसा पास न मिट्यो जजाल ॥
वाद विवाद आन को सुमरण लीये फिरत सदा संग काल ॥४॥
नाच्यो गायो तूर बजायो जाचिग होय जाच्यो संसार ॥
माया मोह विषै तृष्णा वसि मूएं बूडि न भज्यो अपार ॥५॥
साचहिं मिलै साच चलि चालै मुख हिरदै मिलि साच कहाय ॥
ऐसो घायल साधु मिलै घरि आयो तौ परसरास तापरि वलि जाय ॥६॥५२॥

राग गौडी–

मन जो चाहै पद अविनासी ॥
तो बाहिर भूलि कहूं जिन भर्मों खोजो तीरथ कासी ॥टेक॥
मथुरा करि बसिये थिर तामहिं, यमुना वहयां न जइए ॥
जनम पाय निर्मल तौ रहिये जो गंगा सौरो न्हइए ॥१॥

वाराणसी पढ़ै पंडित होय भूलि अयोध्या न्हावै ॥
गंगा सागर रहै बस्यो जो सो अपणों पति पावै ॥२॥
चले प्रयाग मकर जिन न्हावो उलघिउ दीसा फीका ॥
जगन्नाथ का दरसन करस्यां ज्यौ फल होय सब नीका ॥३॥
चलौ वराहि धर्म गति पहू खरि हरि मिलि फिरि जिनि आवो ॥
द्वारा मति करौ जिन कबहूं दरिया संग नन्हावो ॥४॥
परवत चढि पड़ि दुख पावो कित हरि परचौ उड आणों ॥
बद्रीनाथ बसै घट भीतरि दुरमति छाडि पिछाणों ॥५॥
हारि पडै मरण स आस ज्यों दुख सुख तजि घरि आवै ॥
परसराम जन निकट पर्म पद जापरि कृपा सुपावै ॥६॥५३॥

राग गौडी–

मन रे भयो तुम्हारो भायो ॥
गुरु की कृपा साधु की सगति मन वंछित फल पायो ॥टेक॥
भाव भगति अंतर गति हित सौं सहज सुन्य मन मान्यो ॥
सहज सुरति मिलि आनन्द उपज्यो पति अपणों पहिचान्यो ॥१॥
जीवन जनम सुफल करि लेख्यो जो अंतर जामी ॥
अब सुख भयो गयो दुख दुकृत संगि रमै सोई स्वामी ॥२॥
मैं मिटि गया रह्या आपण मैं परसा जन ताहि गावै ॥
जाकौ हुतौ मिल्यौ ताही कौ विछुरै बहुरि न आवै ॥३॥५४॥

राग गौडी–

अवनासी विनसै नहीं कहौं मोहि ऐसो प्रभु आवै ॥
अपरंपर उरवार न ताकौं पार न कोई पावै ॥टेक॥
ज्यौं नभ निकट नीर मैं निर्मल मल मिलि जाय न आवै ॥
त्रिभुवन वर व्यापक सचराचर सोई जहां तहां दरसावै ॥१॥

निर्गुण गुण धरि अन्तर जामी सोई गति प्रतिबिंब बतावै ॥
श्री गुरु सुजस समझि सोई परचौ परसराम जन गावै ॥२॥५५॥

राग गौडी–

हरि कंवल नैन कैसो करुणामैं करुणा सिंधु मुरारी ॥
अति आतुर आवत सुमिरत ही सदा भगत हितकारी ॥टेक॥
बल करि दुष्ट भाव दूसासन त्रिय तन भुजा पसारी ॥
प्रभु प्रकट भये पट पूरण कौ द्रोपदी की ताप निवारी ॥१॥
असरण सरण अनाथ बन्धु प्रभु पैंज टरत नहिं टारी ॥
भगत वछल भय हरण उजागर सुनियत हौ सुखकारी ॥२॥
ऐसी समझी हो करौ किन ऊपर मिटत न सोच हमारी ॥
प्रभु देखत परवसि भयो परसा तो रहि है कहा तुम्हारी ॥३॥५६॥

राग गौडी–

सर्व रूप सर्वेस्वर स्वामी ॥
सर्व जीव कौ अंतर जामी ॥टेक॥
सर्व नाथ सब मांहि समायक ॥
सर्व सरण सब कौ सुख दायक ॥१॥
सर्व राय समृथ न अधूरा ॥
सर्व भरण पोषण प्रभु पूरा ॥२॥
सर्व नांव कौ नांव निरंजन ॥
जामैं बसै सदा अव अंजन ॥३॥
नित्य रूप अस्थिर परकाजै ॥
परसराम प्रभु प्रगट विराजै ॥४॥५७॥

राग गौडी–

जनि कोई करै देह कौ गारा ॥
दीसै कपट कोट माटी कौ विनसि जाय छिन लगत न वारा ॥टेक॥

ज्यों कागद की नांव नीर मैं तिर न सकैं बूडै उखारा ।।
गलत न लागै वार धार मैं सो कैसे उतरै औपारा ।।१।।
ज्यों जल वाजि वुदबुदा बूडयो काचौ काया कलस विकारा ।।
फूटि पर्‌यो भू मिल्यौ धार होय सुपनैं की गति को व्यौहारा ।।२।।
यो परपच रच्यौ वाजीगर सांचै दिष्ट कि झूठ पसारा ।।
परसराम देखै सु कहै जन जाकै उर गुण ग्यान उजारा ।।३।।५८।।

राग गौडी–

मनुश्रा हरि भजि तजि संसारी ।।
बडै जनि भ्रम धार नांव विण विषम झाल दीसै दुख भारी ।।टेक।।
सांची साखी राम सुमरण की प्रगट प्रताप अहल्या तारी ।।
गनिका अजामेल धीवर कुल वै उवरै भजि चरण मुरारी ।।१।।
गज जल संकट ग्राह गह्यां तैं प्रलै काल रुति हरि हारी ।।
परसराम प्रभु भजि जिन भूलहिं राम नाम सवतैं अधिकारी ।।२।।५६।।

राग गौडी–

रसना हरि हरि हरि गाय ।।
हरि परि हरि वकि वहि जिन जाय ।।।टेक।।
निर्फल आन वकणि विष वाणी जिव्हा वहु वोलनौं निवारि ।।
चित करि निर्मल सुफल सुवीरज हरि माधौ हरि मुकन्द मुरारि ।।१।।
परहरि आल जंजाल जगत गुण हरि अमृत रस मुख भरि चाखि ।।
हरि दुख हरण सकल सुख दायक सोई हरिहरि भजिऔरनभाखि।।२।।
जो हरि पार करण भव जल तैं सोई केसौ कैसौ कृष्ण संभारि ।।
परसराम प्रभु राखि हृदै धरि सुमरि सुमरि हरि व्रत धारि ।।३।।६०।।

राग गौडी–

हरि ने विमुख जीव छलि लीये ।।
उवर्‌यां कोई येक अपर घन और सकल पाणी करि पीये ।।टेक।।

कर्म कठोर वज्र उर अंतर पति पारस पद कौं नहिं छीये ।।
हरि के परम प्रेम विण कवहूं प्रघट होत नाहीं वै हीये ।।१
विषै मोह मद काम क्रोध की अगनि झाल दाधे सु न जीये ।।
हरि वल हीण असार अंध मति ज्यौं पतंग दीपक मिलि खीये ।।२।
आपण अछल अजीत जीति सव पकरी पकरी जम कौ लै दीये ।।
परसा पार ब्रम्ह की बाजी को कोनहीं अपणों वसि कीये ।।३।।६१।।

राग गौडी—

सुमरि सुख पाइये रे अति अमृत हरि नांउं ।।
हौं ता हरि की बलि जाउं ।।टेक।।
अति अमृत रस प्रेम सौं कोई पीवै जन ल्यौ लीण ।।
सोई जुग जुग जीवै जु रस पीवै अरु मरै जगत रस हीण ।।१।।
हरि रस पीवैं सुथिर रहै रे मरै न आवै जाय ।।
हरि लिवलीण न हरि तजै हरि ही मैं रहै समाय ।।२।।
जो हरि प्रेरक प्राण कौ रे सोई नख सिख रह्यो समाय ।।
सोई हरि सब मैं सारिखो रे जहां तहां हरि साय ।।३।।
साईं सदा हजूरि है रे कोई जिन जाणौं दूरि ।।
जहां तहां नाहीं कहां हरि रह्यौ सकल भरपूरि ।।४।।
हरि सुकृत संसौ हरण सुख दायक सब जाण ।।
सोई भजिये पावन परम गुरु हरि प्राणनि के प्राण ।।५।।
वहु कर्म करतूति करि के कछु न आवै हाथि ।।
रह्यां रहै चाल्यां चलै हरि निवहै नित साथि ।।६।।
मैं देख्यो बहुत विचारि कें रे कछ नाहीं नाम समतूलि ।।
परसराम प्रभु हरि बिना कोई और न भजिये भूलि ।।७।।६२।।

राग गौडी-

भजत कित भूलिये रे सुकृत फल हरि नांउं ।।टेक।।

विण सुमर्‌यां दुख ऊपजै सुमर्‌यां सौ दुख जाय ।।
सो तजि भरमि न भूलिये रे हरि भजिये मन लाय ।।१।।
हरि सुमिरणा सुख है सदा और सबै दुख जाणि ।।
लाभ सो जु हरि सुमिरिये रे विण सुमर्‌यां बड हाणि ।।२।।
सोई उत्तम जो हरि भजै सोई निहकर्म कुलीण ।।
हरि कौ भजि जाणै नही तो मध्यम मति हीण ।।३।।
सोई मूरख मति हीण नर जो न भजै हरि नाव ।।
हरि को भजत न भूलई हौ ताजनि की वलि जांव ।।४।।
जो न भजै हरि नांव कौ रे सोई नीचां तैं नीच ।।
परसराम जो हरि भजै सोई नर उत्तम कुल ऊंच ।।५।।६३।।

राग गौडी-

मन मोहन मंगल मुख सजनी निरखि निरखि सुख पाऊं ।।
अति सुंदर सुख सिंधु स्याम घन हौं तासौ मन लाऊं ।।टेक।।

निमिष न तजौ भजौं निहचौ धरि हरि अपभुवन वसाऊं ।।
जाको दरस परस जस दुर्लभ हौ ताको सिर नाऊं ।।१।।
तन मन धन दातार कलपतरु हूं ताको जस गाऊं ।।
अति निर्मल निर्दोप भगति फल मोहि भावै वलि जाऊं ।।२।।
प्रभु सौं प्रेम नेम निहचौ सर्वस दै अपणों भलो मनाऊं ।।
और उपाय सकल सुख परहरि हरि सुख मांहि समाऊं ।।३।।
सेऊं चरण सरण रहि हित करि मन हरि मनहिं मिलाऊं ।।
लज्जा सकल लोक वेद की परसा परहरि दूरि दुराऊं ।।४।।६४।।

राग गौडी—

होली खेलत मन मोहन मिलि वहुत भलो हित आजु री ॥
पावन पर्म पवित्र परम फल हरि प्रीतम वड राजु री ॥टेक॥
यह दिन समुहुर्त सजनी हरि सारण सव काज री ॥
मगल ते मंगल अति मगल हरि मंगल सिरताज री ॥१॥
मिलि आई सब सुंदरि घर वर तै हरि संग खेलन फाग री ॥
कोई सुकृत जो कियो हो कवहू सोई उठयो अव जाग री ॥२॥
कनक कलस केसरि भरि सिर धरि लै आई हरि काज री ॥
चरिचित मुदित भई हरि वर कौ परहरि सव कुल लाज री ॥३॥
सिंघ पौरि वाढे हरि सोभित अति सुंदर सुख दाइ री ॥
कहि न सकौ सोभा छवि सजनी आनन्द उर न समाइ री ॥४॥
गोपी गोप ग्वाल बृजवासी नंद भुवन भर्यो आइ री ॥
कृष्ण चरित गावत सुख पावत सुणि रीझत हरि गाइ री ॥५॥
स्यामा स्याम सू मिलत अलापत गावत नाना राग री ॥
जै जै जै उचरत सुर घरणी वंछित स्याम समाग री ॥६॥
ल्याई गौरी अवीर अगंजा रोली रंग अपार री ॥
खेलत गोपी गोप इकंतर हरि हलधर निरभार री ॥७॥
बाजे मृदु नाचै नर नारी तन मन सुधि न सभार री ॥
मगन भई अवर आभूषण मागे अधिक उदार री ॥८॥
हरि अमृत निधि मिलि रस विलसत सखी ललिता वडभाग री ॥
जिनकै वसि गोपाल सनेही तिनकौ सुफल सुहाग री ॥९॥
भूरि भाग तिनकों जे दरसै हरि औसर आनद री ॥
सव सुख कौ सुख परसराम प्रभु अविचल आनंद री ॥१०॥६५॥

राग गौडी—

बृज वनिता ब्रजराज बनै वहु खेलत मिलि रग होरी ॥
मान सरोवर बृजवासी भये राजहस हरि जोरी ॥टेक॥

संग्रफ सुमिल कुमकुमा केसरि कनक कलस भरि ल्यावैं ॥
अति सनेह सौ हरि प्रीतम कौं चरचैं सब सुख पावै ॥१॥
घसि अगर कपूर खौरि करण कौ कूंकूं तिलक बनावै ॥
ल्याई घोरि अबीर अरगजा हरि सनमुख छिटकावै ॥२॥
वसन सुरंग गुलाल रंग रत हरि सोभैं अति भावै ॥
विदि मंगल सुख मूल सबनि कौं अति सुंदर दरसावै ॥३॥
सद फुलेल चौवा चंपेल भरि ल्याई कनक कटोरैं ॥
अपनैं अपनें करसौं सब मिलि स्याम सीस परि ढोरैं ॥४॥
अति सुप्यार सौंधो सुगंध तन पहरत हरि बंद छोरी ॥
हरि कैं लाय लगावत अपनैं करि मुसकत मुख मोरी ॥५॥
राजत उर हरि कैं रतनावलि अरु वैंजती बनमाला ॥
और विविधि पहुपावलि प्रभु कौं पहिरावत ब्रजबाला ॥६॥
ल्याई पान संवारि सुद्ध करि सखि मुख बीरी हरि पावै ॥
देत न बोल रहसि आपसमहिं हरि सनमुख सिरनावैं ॥७॥
दरसि दरसि नैंननि मिल परसत हरि लागत अति प्यारे ॥
अति सनेह अस्थिर तन मन तैं टरत न कबहूं टारे ॥८॥
अपनैं अपनैं मन अतर की कहि कहि सबै सुनावै ॥
गावै गारि सुणावै हरिं कौ सुणि रीझै सुख पावै ॥९॥
कहौ कहौ अपणी सब हम–सो हम तुम तैं न दुरावै ॥
तन मन प्राण सुजाण स्याम सौं मिलि पावन करि ल्यावै ॥१०॥
हम पाय लागी बूझै कहि प्रीतम क्यौं राधा तोहि प्यारी ॥
सर्वस सौंपि दयो हम तुमकौ क्यौ इन तैं हम न्यारी ॥११॥
तुम हो कृष्ण भई ये जु तुम सी याही अचिरज समझावो ॥
इन कौन पुन्य कीन्हो तुम मान्यो जु राधाकृष्ण कहावो ॥१२॥

धन्य धन्य मति कहत सखी सब जो व्रत धरि हरि लागी ।।
जिनि कै वसि गोपाल सनेही राधा सोई सुफल सुहागी ।।१३।।
जाकै वसि त्रिभुवण सचराचर हरण करण अविनासी ।।
सो तेरैं वसि भयो सयानीं हरि परिहरि कंवला दासी ।।१४।।
परम सुजाणि चतुर चिति लागति तौं हरि कौं अति प्यारी ।।
तेरो भाग सुहाग सदा थिर वर जाकैं वनवारी ।।१५।
सब सखियन कौ तिलक सखी तू जो हरि कैं मन मानी ।।
तेरे ही पाय परैं सब सजनी सूर सिद्ध मुनि ग्यानी ।।१६।
तैं कीनौं भजि परम सनेही कंवला कंत विनाणी ।।
निगमहू अगम अगाध बोध हरि तूहू ताकै पटराणी ।।१७।।
ब्रम्हां विष्णु महेस सेस सुर जाकौ महल न पावै ।।
सो तेरे घरि आपण पै हरि विण बोले चलि आवै ।।१८।।
जेसे वै प्रेम नेम निहचौ धरि हरि उर तें न विसारै ।।
तिनकी रज ब्रम्हादि सिवादिक वंदन करि सिर धारै ।।१९।।
हरि चरण कंवल लिवलीण निरतर रहत सदा अनुरागी ।।
पलटै नाही जाकै प्रेम पल प्रभु तें जन सोई बड़ भागी ।।२०।।
हरि सुख सिंधु सुमिल सलिता जन रहत सदा संगि नेरा ।।
तिनकी रज वंदन कौ जुगि जुगि है परसा हरि चेरा ।।२१।।६६।।

राग गौडी–

अवधू उलटी राम कहाणी ।।
उलट्या नीर पवन कौं सोखै यह गति विरलै जाणी ।।टेक।।
पांचौ उलटि एक घर आया तब सेरि पीवण लागा ।।
मुरही सिंघ एक संग देख्या पानी कौ सर लागा ।।१।।

मृगहिं उलटि पारधी बेध्या भींवर मछुवा सोख्या ।।
उलट्या पावक नीर बुझावै संगम जाई सूवा देख्या ।।२।।
नीचें बरषि ऊंचकों चढियावा जव टेरी राख्या ।।
ऐसा अरणगत डूवा तमासा छावै था सोई छाख्या ।।३।।
ऐसी कथै कहै सब कोई जो वर तें सोई सूरा ।।
कहि परसा तब चौंकि पडौ ता बीज समेति अंकूरा ।।४।।६७।।

राग गौडी--

अवधू उलंध्यो मेर चढ्यो मन मेरा सुन्य जोति धुनि जागी ।।
अरणभै सबद बजावै विरण कर सोई सुर ता अनुरागी ।।टेक।।
चढि असमान अखाड़ा देखै सोई वदिये वडभागी ।।
घर बाहरि का डर कछु नाहीं सोई निर्भै वैरागी ।।१।।
रहै अकल तरसौ मिलि कलपि मरै नहीं सोई ।।
निहचल रहै सदा सोई परसा आवागवरण न होई ।।२।।६८।।

राग गौडी--

भाई रे का हिन्दू का मुसलमान जो राम रहिम न जाणा रे ।।
हारि गये नर जनम वादि जो हरि हिरदै न समाणा रे ।।टेक।।
जठरा अगनि जरत जिनि राख्यो ग्रभ संकट गैवाणां ।।
तिहि औसर तिन तज्यो न तोकौं तै काहे सु भुलाणां ।।१।।
भांडे वहुत कुंभारा एकै जिनि यह जगत छुडाणां ।।
यह न समझि जिन किनहू सिरजे सो साहिव न पिछाणां ।।२।।
भाई रे हक्क हलालनि आदर दोउ हरखि हराम कमांणां ।।
भिस्ति गई दुरि हाथ न आई दोजग सौं मन माणां ।।३।।
पंथ ग्रनेक न ग्रौर उर घड ज्यौं सबका येक ठिकाणां ।।
परसराम व्यापक प्रभु वपु धरि हरि सबकौ सुरताणां ।।४।।६९।।

राग कल्याण-

पावन पद रज रघुवीर की ।।

जा परसत सिलकौ तन पलट्यो गति भई देव सरीर की ।।टेक।।

ल्याव नांव खेवट कहि बोलत ठाढे प्रभु तट नीर की ।।

चल्यो पलायन चितवन फिरि धरि संका राम सधीर की ।।१।।

करत परम गति पर्म कृपानिधि तारि पतित भौ भीर की ।।

जात प्रगट वैकुंठ सभरणी नांव कुटुंब सौं कीर की ।।२।।

सेस महेस निगम नारद मति सेवत ब्रम्ह उर नीर की ।।

परसा सुक सनकादि भजत रति उर धरि गुण गंभीर की ।।३।।१

राग कल्याण-

हरि हरि उर देहूं न भीर कैं ।।

तारण सिल सलिता नहीं उतरत डरत कहा उर नीर कैं ।।टेक।।

मैं महा पतित तुम कौं कैसें तारों रहत न मन धरि धीर कैं ।।

महाभार बूडत अघभौ मैं सु नाम तिरत रघुवीर कैं ।।१।।

यां पाया न पार लौं जल जो सूधि चलूं या तीर कैं ।।

नांव बैठि तिरिवौ अब लछिण लागत जगत न हीर कैं ।।२।।

अरु नवका उडि जाय चरण छुयि तौ मैं कृपन भयो वसिपीर कैं ।।

कुल आलंब यह जीवनि कित हारिण करत मो कीर कैं ।।३।।

तब पदरज पावन तन पकर्यो परसत पर्म सरीर कैं ।।

परसराम प्रभु सुणौं कृपा करि खेव करौ जिन चीर कैं ।।४।।२।।

राग कल्याण-

हरि गोविन्द मुकुंद मुरारी ।।

विट्ठल वासुदेव वनवारी ।।टेक।।

श्री गोपाल कृष्ण करुणा मैं ॥
माधो मधुसूदन मन्त्रिणा मैं ॥१॥
सर्वंत नैंन कमलापति वैसो ॥
सन्नप सर्वरूप सर्वेसों ॥२॥
श्री बैकुंठ विष्णु विश्राम ॥
परसराम जपि जीवनि राम ॥३॥३॥

राग कल्याण–

श्री वासुदेव वामन वराह ॥
विष्णु ब्रम्ह बैकुंठ अगाह ॥टेक॥
विश्वंभर विसुपति विभु तात ॥
विभु लोचन विसुवर विभुनाथ ॥१॥
वनवासी विठल विश्वरूप ॥
परसा विश्वपूरण विभुभूप ॥२॥४॥

राग कल्याण–

श्री गोपाल गोवर्धन धारी ॥
गोविन्द गोपीनाथ बिहारी ॥टेक॥
गोपीवर गिरराज गुसांई ॥
गुण सागर गुण प्रेम तहांई ॥१॥
गुण अतीत गुण सों मिलि गावै ॥
अगई गोकुल नाथ कहावै ॥२॥
गरूडारूढ़ हरि गरूड़ागामी ॥
गरूड ध्वज गरूड़ासन स्वामी ॥३॥
गरूडराज गुण गहर न लावै ॥
परसा प्रभु गह्यो गज मुकतावै ॥४॥५॥

राग कल्याण—

हरि को भजन करि हो मन प्यारे ।।
यक रसनां तुम क्यौं अरसा वो सेस सहस सुमिरत नहीं हारे ।।टेक।।
जाकी सरणि पतित पति पावै गनिका कुबजा व्याध उवारे ।।
अधम तरे अधिकार भजन तैं हरि सुमिरत सगरे दुख टारे ।।१।।
अजामेल सुत नाम उद्धर्यो जल बूडत गज ग्राह उवारे ।।
परसराम प्रभु ठाकुर समथ वनचर भील पूतना तारे ।।२।।६।।

राग कल्याण—

अब न चले चित आस वंधाणी ।।
भरमत थकी सखी रन वन तैं प्यासैं पाये राम विनाणी ।।टेक।।
त्रिपति भई सुंदरि सुख मान्यो पीव कौं परसि भई पटराणी ।।
पति कै संगि परमगति पाई मिटे सकल दुख आवण जाणी ।।१।।
फाटि तिमिर घट भयो उजारो ससि प्रगटे निसि अंध विहाणी ।।
परसा राम पर्म सुख की गति कहि न सको कछु अकथ कहाणी ।।२।।७।।

राग कल्याण—

पीव लेहु देह चरणनि परी ।।
प्राण गयो तजि सौंज सकल ही सौंपि तोहि परसैंण हरी ।।टेक।।
मोहि तोहि यहै सनेह देह लौं जा हित तेरैं ही वसि करी ।।
और न कोहि पहिचाणि जाणि जादौंपति तै मति दूसरी ।।१।।
करत जिग्य जगदीस विमुख ह्वोय गर्ज कहातिन तैं सरी ।।
अज्ञ पुरुष मागत मुख अपणें प्रीति न पलु तासौं करी ।।२।।
आई या मति उज्जल काजल विधि करि कर सौं यही ।।
छूटत नहीं महा मसि उर तैं मिलि कागद कौं लैं गही ।।३।।
मानत नाहिंन कहै सुख सुनि मानौं वरिखत जल ऊंची घरो ।।
परसापति गोपाल दरस बिण नांहिन सुख पावत घरी ।।४।।८।।

राग कल्याण–

हरि हरि मन काहे न भाखैं ।।
असरण कौं सरणाई राखै ।।टेक।।
हरि पावन पतितनि कौ तारै ।।
जनम मरण संदेह निवारै ।।१।।
हरि निर्भै भव बंधन कापै ।।
अभै करै भौ ताहि न व्यापै ।।२।।
हरि दीन बंधु निरबंधन करई ।।
प्रेम भगति सुख है दुख हरई ।।३।।
हरि अर्द्ध नांव अगणित अघ जारै ।।
सोई हरि सुमरि विघन बहु टारै ।।४।।
परसा हरि जिन किनहू संभारि ।।
हरि हरि सुमरि कहौ को हारि ।।५।।६।।

राग कल्याण–

हरि भजि हरि भजि हरि भजि लीजै ।।
हरि सुमिरत मन विरंब न कीजै ।।टेक।।
हरि सुमिरण विन दादि न आगैं ।।
हरि तैं विमुख भयां जम लागैं ।।१।।
ज्यौं दर्पण सुख अंध न देखै ।।
त्यौं हरि विन नर जनम अलेखै ।।२।।
हरि सुख मूल भज्यां दुख छीजै ।।
परसा हरि अमृत रस पीजै ।।३।।१०।।

राग कनडी–

गगने सुर गम्य ग्यान न पावै ।।
ग्यान राज अगई को गावै ।।टेक।।

दिष्टि न मुष्टि निरंजन जोगी ।।
जोग जुगति जप तप सुख भोगि ।।१।।
सहज रुप सर्वेसुर नाथा ।।
निराकार तहां संग न साथा ।।२।।
अगम अगोचर कहत न आवै ।।
परसराम जन होय सु पावै ।।३।।१।।

राग कनडौ–

विन भगवंत न आन सहायक ।।
मैं देखी सब ठौर अबर फिरि सुन्यौं न कोई ऐसो सुखदायक ।।टेक।।
देख्यो और उपाय न कोई जग्य जोग व्रत तप फल दायक ।।
हरि सम को सम्रथ सुख दाता असरण सरण राखिवै लायक ।।१।।
गृह तजि वन संजम जल सेवा भ्रमत अवनि पांणि होय पावक ।।
कण विण सो न कछु सो तजिये भजिये अभै अखिल कौ नायक ।।२।।
तात न मात हितू कोइ नाहीं सुनि सुत सति सतिये वायक ।।
परसराम आसा दुख परहरि करिये मित्र राम मन भायक ।।३।।२।।

राग कनडौ–

सुनि सुत यो परपंच परायो ।।
यहै विचारि समझि सुख कौ फल जा कारणि तू मारि उठायो ।।टेक।।
लेत उसास उदास उभै दुख रुदन करत उरसौ लपटायो ।।
रहू रहु वाल जाऊं बलिहारी जनम सुफल करि जो तैं पायो ।।१।।
को नृपराज काज कुल काकौ को जननी कौणै को जायो ।।
यहां न को मेरौ तेरौ बाल ताही कौ सुमरि जहां तैं आयो ।।२।।
परहरि विभौ विलास आस दिस सुपिनै जिन भरमैं. भरमायो ।।
परसराम प्रभु भजि निर्भै पद जो पै सुख चाहत मन भायो ।।३।।३।।

राग कनडौ-

भज सुत श्री भगवंत सदा सुख ।।
त्रिपति रूप संतोष सुमंगल जनम जनम कै हरण हरी दुख ।।टेक।।
चिताहरण अचिंत अभैकर सकल सूल मेटण मन की धुख ।।
सुद्ध करण हरि हरख सोक जैं असरण सरण सदा सांची रुख ।।१।।
पार करण संसार धार तैं अघमोचन जाणत जन कै दुख ।।
परसराम प्रभु पर्म कृपानिधि सेय सुमरि आनन्द महा सुख ।।२।।४।।

राग कनडौ-

धनि सुनीति जिन सुत समझायौ ।।
राम भजन भजिवे कौं आतुर सुनत वचन बंधन तजि धायौ ।।टेक।।
परिहरि सोच पोच सब संका चल्यौ निसंक नगन वन भायौ ।।
तिहिं औसर निज रूप भूप वर सनमुख सोचि महामुनि आयौ ।।१।।
को ससिरूप अनूप भप जो जात कहां कौणें भर्मायौ ।।
या बूझी मिलि भयो समागम चरण कंवल कर सीस छुवायो ।।२।।
कह्यो प्रथम दुख दरद दीन होय मन विश्राम बिनां अकुलायौ ।।
हरि आरति आगमा उर पूर्‌यो लोचन सुफल दरस मैं पायो ।।३।।
पचि पचि गये पर्म तत्व वेता खोजत खोज न अंत दिखायो ।।
तेरी धौं कहा सरसमति उनतैं उलटि जाह सुनि मानि मनायो ।।४।।
धनि ए श्रवन सुण्यौ हौ जिन मैं ध्रिग्र ए बैण बदत बौरायो ।।
धृग यो दरस परस फल छाया अमृत मति मेटि विष पायो ।।५।।
मांगी मांगि वर वीर धीर धरि नारद गुरु निज भर्म सुणायो ।।
भाव भगति वेसास सुअस्थिर चरण सरण विश्राम बतायो ।।६।।
अभैराज दायक हरि समथ मन क्रम वचन सत्य जिन गायो ।।
परसराम सब लोक प्रकट जन भयो अडिग सु न जात डिगायो ।।७।।५।।

राग कनडौ–

तेरा नांव भजन जो पाया मांगौ नहीं कहूं
जिन अवतौ हो त्रिभुवन के राया ।।टेक।।

नां बैकुंठ नां कोऊ संपति सौं मन मांगौं जो तऊ न देहौ ।।
तुम देहो मै त्रिपति न करिहौं फिरि तुम ही पछितै हौं ।।१।।

तेरा नांव अधिक तुमहि तें तारैं जन की माया ।।
यहै वहुत विसरों जिन कवहूं करो हमारा भाया ।।२।।

तेरे नाव प्रताप तिरे सव तेरुं हौ कोई नही तारयां ।।
परसराम प्रभु राम कहै तैं जन जीते तू हार्यां ।।३।।६।।

राग कनडौ—

मन क्रम वचन भजन जो करिये ।।
काहे को वादि स्वादि संग मिलि करि
स्वारथ लागि भरमि वहि मरिये ।।टेक।।

राम विमुख दुख है सुख नाहीं क्यौं वार वार मरिये औतरिये ।।
अभै सरणि परिहरि हरि जीवनि परवसि वसि भौ पासि न परिये ।।१।।
जो निसि मैं ससि सरद उजागर कृष्ण केलि कारण उर धरिये ।।
त्यौं नर मै नर औतार तिलक सोइ निगम कलपतर सम उच्चरिये ।।२।।
ज्यौं विधु विधुप विवोम तरणि वर उभयो तिमिर तेज तजि वरिये ।।
परसा परम प्रकास उदित उर परसत काल व्यालहिं डरिये ।।३।।७।।

राग कनडौ–

भजिये श्री गोपाल कलपतर ।।
सरणाई सुख मूल सुमगल दुख मोचन वडराज अभैकर ।।टेक।।
अति अमृत फल प्रेम नाम निधि पान करत विधी सेस सक्र हर ।।
सुक नारद सनकादि स्वाद तही पंखी और सुवास त्रिपति कर ।।१।।

छाया गहर गंभीर धीर अति लगत न उष्ण समीर मिटहिं डर ।।
सब जीव जंत्र विश्राम सरण कौं परसा प्रभु व्यापक सचराचर ।।२।।८।।

राग कनडौ–

गाय हरि जस हरि हरि हरि मन ।।
दीन दयाल कृपाल कृपानिधि है पति ब्रम्ह होय भजि तू जन ।।टेक।।
परहरि और विकार आस आदि सब एक राम निर्भै होय कर भजि ।।
पार ब्रम्ह कैसो कंवलापति करुणा सिंधु सरणि रहि सब तजि ।।१।।
जाकी सरणि रहत सुर नर मुनि बहु पंखी पावत सुख निज गति ।।
सु जन हंस विलसत मुकता फल मान सरोवर अकल पति ।।२।।
सिव सुकादि निर्मल जल क्रीड़त ब्रम्हदेव नारद सनकादिक ।।
परसराम निर्भै पंद परसत पीवत सरस प्रेम के स्वादिक ।।३।।६।।

राग कनडौ–

हरि ठाकुर मेरे जीय भाए ।।
जैं जे सुमरि गये हरि सरणैं तिनहीं कै दुख दूरि गवाए ।।टेक।।
महा पतित सद्गति करि लीनैं आरति वंत होय जिन गाये ।।
ताके पाप प्रवाह दूरि करि अपणी सरणि राखि मुकताये ।।१।।
जीवन जन्म सब लोक प्रगट कर फिरि आपन तामद्धि समाये ।।
असरण सरण अनाथ बंधु प्रभु हरि सब के प्रतिपाल कहाये ।।२।।
सम्रथ हरि सब के सुख दायक ताकौं सुमरि न कोई पछिताये ।।
परसराम प्रभु साखि प्रगट जस हमहू सुणि सरणाई आये ।।३।।१०।।

राग कनडौ–

हरि कौ निज नेम प्रेम सौं लगाय कीजै ।।
तब मानैं सब ही गोपाल सो दयाल को कही जै ।।टेक।।

सब उर के भ्रम जाल भेदि भीतरि जो भीजै ।।
यो अंतर तजि भजिये जब तब सुजाण धीजै ।।१।।
मन वच क्रम सति सति मन धन दीजै ।।
तब साचौ वृत धरत परम प्रीत सु पतीजै ।।२।।
यौं अपणौं वसि प्राण नाथ सर्वस दै लीजै ।।
परसा प्रभु सेय सुमरि संगि रह्यो रस पीजै ।।३।।११।।

राग कनडौ-

मोहन मोहनी मोह्यो मन ।।
अब न रहत इहां जात उहांई परि गयो ऐसोई बाण ।।टेक।।
अब कहा होय कहे काहू कें नखसिख वेध्यो प्राण ।।
भृकुटी धनुष नैन सर कर सूं दै अंजन खर साण ।।१।।
नैंक चितै चित सौं चित जीत्यो दे राखी अप आण ।।
ज्यों रवि किरण सोखि सब कौ रस नैक न दीनौं जाण ।।२।।
जाकै वसि त्रिभुवन सचराचर रज गज मसक समाण ।।
सोई वसि भयो परायें परसा प्रीतम परम सुजाण ।।३।।१२।।

राग कनडौ-

मेरे तुम बिन और न जीवनि काय ।।
जो कुछ कथा हमारे मन की और न जाणी जाय ।।टेक।।
तुम चिंता मणि-पद प्राण हमारे बसैई रहत उर मांहि ।।
सुणि सेवग निज वचन सत्य करि मोहि तोहि अंतर नांहि ।।१।।
तुम सब सुख सिंधु पर्म हितकारी तन मन रहे समाय ।।
तुम विन और सबै दिस सूंनी बसत काल के भाय ।।२।।
पल न विसारत तुमकौं हौ चित्त तैं ज्यौं चात्रिग साति न भूलाय ।।
परसराम प्रभु रटत दास जस मुख अपणें ल्यौं लाय ।।३।।१३।।

राग कनडौ–

निर्भंजन भगवंत भरोसै ।।
नैंक न गिणत जगत की संका गावत विडत संभारि सरोसै ।।टेक।।
परहरि सब जंजाल काल मैं अचवत अगम नीर तजि वीसै ।।
वदत न हरि प्रताप वलि काहू आनधर्म जग तैं निरदोसै ।।१।।
असह न सहत असुर संसै न भाव हीरण खर फिरत खसोसै ।।
मानौं भ्रमत भंवर भादौं के तजै सुगंध द्रुगंध गवोसैं ।।२।।
तिहुं लोक सिर मौर सुमंगल निरखि तिमिर सविता ज्यौ सोखै ।।
परसा दीन दयाल दास वदि पतित दरस परस दै पोसै ।।३।।१४।।

राग कनडौ–

सोभित अति हरि को मंगल मुख ।।
मानौ उदै मृग अंक कोटि छवि सुन्दर कंवल वदन देखत सुख ।।टेक।।
सोभा सिंधु अमि निधि आनन राजित अति गति हरण सकल दुख ।।
मेरे नैननि कौ परसराम प्रभु अभै सरण निहचल निर्मल रुख ।।१।।१५।।

राग कनडौ–

हरिजल निर्मल नांव मल नाहीं ।।
ता जल कौं निज हस नेम धरि पीवत प्रेम रहत सुख माहीं ।।टेक।।
हरि व्रत ज्ञान ध्यान सुचि संजमं हरि तप हरि तीरथ नर न्हाहीं ।।
हरि सेवा सुमिरण सुख विलसत चरण सरण तजि अनत न जाहीं ।।१।।
और कर्म धर्मादि निवीर्ज नर हरि नांव हीरण निर्फल व्रहि जाहीं ।।
तिनकी आस लागि हरि परिहरि हरि जन पङि पर वसि न विकाहीं ।।२।।
नित निहकलप कलपतर कौ भजि रहत सदा अस्थिर हरि छाहीं ।।
असरण सरण सुख सिंधु सुमंगल परसा निर्वा है जन कौ दै बाहीं ।।३।।१६।।

राग सोरठी–

मेरो मन हरि लियो कन्हाई ।।
तातैं घर वन कछु न सुहाई ।।टेक।।
सही न सको विष सम सव इत उत जीव कहां विरमाऊं ।।
विन देख्या तन जात इक्यारत देख्या तै सुख पाऊं ।।१।।
कह्यां सुण्यां परती तिन उपजै जन देख्यां तै जीवै ।।
प्यास न मिटै मरे विन पानी प्राण रहे जो पीवै ।।२।।
कहा करो चितवन चित चोर्यो परि आपो न संभार्यौ ।।
तऊ होय गयो परवसी मन पल मैं टरत न कवहुं टार्यौ ।।३।।
हरि वेसास निरास और सुख सोच सवै विसराये ।।
परसराम या कहौ कौन सौ तन भितरी मन खाये ।।४।।२।।

राग सोरठी–

हरि बिन लागत भुवन भयान ।।
निरखि अदेसा उपजत गयो बुद्धि वलज्ञान ।।टेक।।
वलहीन दीन उदास अति गरि गयो गर्व गुमान ।।
मानौ मृगी सिंग वन मैं वसि साथ न प्रान ।।१।।
कहत सुनत न वनत ऐसी सुनो सन्त सुजान ।।
भई गति जो अंति कहिये हमें हरि की आन ।।२।।
धरत जाही न धीर मनु मानो थाको पति बिन प्राण ।।
तजि गयो पर्म प्रकास परसा भई निस बिन भाण ।।३।।३।।

राग सोरठी–

मधुप न मिलत माघो मोहि ।।
हेत की हरि कथा अपनी क्यों कहत हैं त्योहीं ।।टेक।।

ज्यौं त्रिविधि रुति ब्रम्हण्ड औसर पलट देत न छेह ।।
वरस मास दुआग निस दिन करत कासो नेह ।।१।।
भोमी जो रज बीज राख्यौ सींच मदन मलेप ।।
सघन संगति प्रकट लीला करत रहत अलेप ।।२।।
निकसि नीर सुमीर घर तें सींची सब सुख देत ।।
प्रगट करि रवि रूप अपणौं सोंखी सरवस लेत ।।३।।
जो जल बूंद रस सकेली सलिता सिन्धु सनमुख आई ।।
सोगुण न औगुण गिनत सुख दुख उलटि अनत समाहीं ।।४।।
जानि जो नट नाट नाचे काछि करि बहु भेष ।।
करि चरित भेद न देत काहू अंति एक कौ एक ।।५।।
निरखि तर विस्तार साखा पत्र नव नव रंग ।।
परसराम सु पोस सोखत करत क्यासों संग ।।६।।४।।

राग सोरठी—

मधुकर करती हौं मनुहारी ।।
सुनहू की नाहीं चित्त दै हमारी बात हृदेह बिचारी ।।टेक।।
हौं तुमहिं सांच सुभाय बूझति यह अंदेस निवारि ।।
कहौ कौण औगुण हमैं मोहन दई मन तें डारि ।।१।।
हा हा हा बलि गई तुम परि प्राण डारौं वारि ।।
प्रगट करि हरि प्राण जीवनी मरत लेऊं हूं उवारी ।।२।।
हम धीर दे दे प्राण राख्यो आस पति व्रत धारि ।।
पल पहर दिन जुग बितिते सुनत क्यौं न मुरारि ।।३।।
यह है स्याम सुनाई कहियो कहा लहौं मारी ।।
परसराम दयाल हो प्रभु लेत क्यौं न विचारी ।।४।।५।।

राग सोरठी-

मधुकर सुनि माधौ को नातो ॥
व्रज माहि जु मोहन रातो ॥टेक॥
राखि समीप सदा अव किनि हरि हम सौं वयोगात ॥
मीन तलफी तन तझे पलक मैं पै नीर न बूझै वात ॥१॥
ज्यौं पतग तन मन धन अरपै प्रेम सहित मरि जावै ॥
नैक दरद धरिकै उर अंतर दिपक दया न आवै ॥२॥
ज्यौं चाह मृग चात्रिग पतिव्रत नै धरै मनिगण वरिपत रहै प्यासा ॥
जाचै नहीं और सर सुभर स्वाति बूंद की आसा ॥३॥
जासौं हित ताकि गति ऐसी अति अंदेस मन मांहीं ॥
परसराम हरि प्राण हमारे हम हरि तह कुछ नाहीं ॥४॥६॥

राग सोरठी-

सुनि बृजनाथ बृज को नेह ॥
एक निमस न तजत मुख तैं भजत पर्म सनेह ॥टेक॥
पल न पलटत प्रेम झुरत नैण ज्यौं घण मैंह ॥
मगन मन तंन गलित विलपत गिनत वन जन ग्रेह ॥१॥
रटत रूति नित नेम निस दिन हेत अधिक सुप्रे है ॥
अडिग मन सुख सिंधु उनको वरत नदि कि जले है ॥२॥
मरत ज्यौं जल जीव तलफत निघटि नीर निते है ॥
पाय पति परसा सुधारस प्राण धन उन देहै ॥३॥७।

राग सोरठी-

सुनि बृजराज बृज की वात ॥टेक॥
रटत निस दिन हरि हरि सुपन जागत जपत प्राणाधार ॥
चलत हरि हरि वाणि उचरत वन भुवन इकतार ॥१॥

उमंगि उदार गावत प्रगट लीला नेम ॥
हमें सब सुधि बिसरि हरि देखी उनकौ प्रेम ॥२॥
चरन कंवल न पल बिसारत जाणि जिवनि ठौर ॥
परसराम सुध्यान परिहरि उर न आनत और ॥३॥८॥

राग सोरठी–

देखौ भर्म जगत भरमाया ॥
रमता राम द्रिष्टि नहीं आया ॥टेक॥
आवण जान विचारि जैसा ॥
लोक वेद सुनि भये निरासा ॥१॥
आगैं है वैकुंठ हमारा ॥
इहि धौके बूड़ो ससारा ॥२॥
अंतर राम न जानै कोई ॥
पर आसा घर की निधि खोई ॥३॥
परसा नाहीं आवण जाना ॥
प्राण पिंड अमंड समाना ॥४॥९॥

राग सोरठी–

जासौ कहतौ यौ सब मारौ ॥
अंत चलौ तजि हौ पसारौ ॥टेक॥
कनक भुवन वंधु सुत भामा ॥
सब पिंड भयै न दै बिसरामा ॥१॥
मैं मेरी कहीं जनम गंवायो ॥
हंस चलत कछु सग न आयो ॥२॥
भूले भरमि वहै बेकामा ॥
मुगध अचेत न जाण्यो रामा ॥३॥

परसा करि लै यक राम स्नेही ॥
दूतिया वादि श्रादि वैदेहीं ॥४॥१०॥

राग सोरठी-

काहै को कीजै नर रे मेरी मेरा ॥
मरना है सिर उपर नेरा ॥टेक॥
सवै पराई तु विड तामैं ॥
तेरा कोई नाहीं न विन रामैं ॥१॥
देखत सवै सकल जव मुश्रा ॥
कोई न रह्यो मरि मरि हुश्रा ॥२॥
छांडि देऊ सव झूठ पसारा ॥
परसा राम रमैं निस्तारा ॥३॥११॥

राग सोरठी-

सतगुरु पति श्रासानि वतावै ॥
तन मैं मन को लय सोई पावै ॥टेक॥
दिल वाहरि दिदार न होई ॥
तन तजि भरमि मरौ मति कोई ॥१॥
जव तुटै दुविध्या के ताला ॥
तव घट भीतरि होई उजाला ॥२॥
परसा राम श्रास तजि गावै ॥
ताकि दृष्टि पर्म यह श्रावै ॥३॥१२॥

राग सोरठी-

समझी न परै कछुयक पायौ ॥
कहा कहै जो अन्तर खायौ ॥टेक॥

अचरज भयो सू तौ अंग न समायो ।।
देख्यो जागि सकल सोई छायो ।।१।।
जाहिं कहौं ताहिं लगत अभायो ।।
कोई पारिखु मिल्यो न मैं परखायो ।।२।।
परसराम परख्यो जिय भायो ।।
मिल्यो अनन्त पैं अन्त न आयो ।।३।।१३।।

राग सोरठी--

सोई दास परम पद पावैं ।।
तीनों तजे सहज घरि आवै ।।टेक।।
धीरज धरै प्रेम ल्यौं लावै ।।
अकथ कथै मन कौं समझावै ।।१।।
परसा जन पतिकौं सोई भावै ।।
जो अन्तरि मिलि बाहिर नहिं धावै ।।२।।१४।।

राग सोरठी--

पावै जन पति और न पावैं ।।
और न पावैं जो वाकै उर न समावै ।।टेक।।
यह तो राम सकल दिठि आवै ।।
पैं रामहिं उलटि न दास कहावै ।।१।।
मैं करता हरि को न सुहावें ।।
सूली चढि हरि कौण रिझावै ।।२।।
आपौ मेटि रहै निज गावै ।।
परसा जन हरि कौं सौई भावै ।।३।।१५।।

राग सोरठी--

निर्मल सौ जु माया मोह न वहै ।।
ब्रम्ह अगनित न मन कौं दहै ।।टेक।।

ज्ञान को ज्ञान गहै सहज को घर लहै ॥
हरि कौ वैसास लिये सुख मैं रहै ॥१॥
कर्म करे न फूलै भूलरिण देखै न भूलै ॥
व्यापै न छाया कौ छल हरि सम तूलै ॥२॥
भेद न अभेद आरणैं सब मैं सारिखो जारणै ॥
घटि न वधिक हरि पूरो पहिचारणै ॥३॥
सम पै दिष्ट जो आवै व्यापक देख्योई भावै ॥
प्रभु को दरस परसा जो आप मैं समावै ॥४॥१६॥

राग सोरठी–

उधौ कब मिलि हैं अब सोई धौ कहौ ॥
और वादि ही वकत कित मौन हीं गहौ ॥टेक॥
हम न ऐसी सुहाय तुम जु ल्याये बनाय ॥
प्रगट करौं जिन ऐसी इहां न विकाय ॥१॥
मेरे जीव की जीवनि प्राण प्रेम हितू सुजान ॥
हम लियो है वरत जाको ताहि को ध्यान ॥२॥
वसैई रहैं उर मांहि उरतै टरत नाहि ॥
सुंदर वदन देख्यांहि नैरण सिराहि ॥३॥
ऐसे आए जो पाइये हरि प्रगट अपरणै घरि ॥
परसा प्रभु सूं उर लगाय भेटियें भुज भरि ॥४॥१७॥

राग सोरठी–

प्रीतम हरि करिये करि कै संग रहियै ॥
हरि सौं सनेही बहुर्यौ कब लहिये ॥टेक॥
सवेतां सुख कौ सिंधु आदरै दीन कौ बंधु ॥
समरथ सरण राखि जो मेटै दुख दंदु ॥१॥

अंतरजामी सों मानै जो अंतर गति की जानैं ॥
मन की सब कामना जातै है नांहि न छानैं ॥२॥
अति ही चतुर सो है जो चिंता कौ हरण वो है ॥
हरि सो उदार ऐसो और धौं कहौ को है ॥३॥
हरि सो हितु न कोई जो पलटि दुजौ न होई ॥
सेइये परसराम सुनि कैं करि गाइये सोई ॥४॥१८॥

राग सोरठी–

हरि जी कौं मन देहौं मन दै मिलि रहिहौं ॥
जस अपजस अपणैं सिर सहिहौं ॥टेक॥
मन सौं मन मिलाय राखि हौ उर सौं लगाय ॥
चलत न जान देहौं गहिहौं चरण धाय ॥१॥
प्रीतम प्राण के नाथ छाडिहौं न ताकौ साथ ॥
जित हरि चलि है तित गहि चलिहौं हाथ सौं हाथ ॥२॥
न्यारो न रहयौ सहाऊं हौं न विछूरि जांऊं ॥
संग संगिही रहौं गाऊं सदा ताही को नाऊं ॥३॥
राखिहौं जतन करि नेह सौं सुवरि वरि ॥
परसा प्रीतम हरि सेयहौं आपणैं ही घरि ॥४॥१६॥

राग सोरठी–

मधुकर मरत हम निराधार ॥
दीन वंधू दया धरि हरि करी क्यौं न संभार ॥टेक॥
जात निघटी सौंज पल पल वादि अब की वार ॥
यह वहुत अंदेस अंतरि जु हरि न वूझी सार ॥१॥
हम क्यौं सहैं दुख सिंधु सालै सुख न संग उदार ॥
विरह अरि वसि करि संतावत सु क्यौं न मेटौ मार ॥२॥

हरि परहरि चित आनन्द दीजै ॥
परसराम सोइ महा रस पीजै ॥३॥२५॥

राग सोरठी–

राम करारि रंग लागौ ॥
अब विसरों नही कवहूं भैं भागौ ॥टेक॥
मिटयो पतगा भरम फिकाई ॥
अति सुरंग लाग्यो सु न जाई ॥१॥
उपज्यो प्रेम महा रस जान्यौं ॥
पति सौ ल्यौ लागी मन मान्यौ ॥२॥
जाहि सुमिरत निर्मल भये अंगा ॥
परसा जन राते ताहि रंगा ॥३॥२६॥

राग सोरठी–

जुगिया देखौ जोग विदिता ॥
घरि खोरि जगावत ही कित गोरख नांहिन सूता ॥१॥
दाझौ भुंजो ग्यान न सूझौ काल कर्म लैजूता ॥
जोग जुगनिकी सार न जाणी तौ मुंड मुंडाय विगूता ॥२॥
जो गाव फिरै दसवीस दिहाडै मांगण उपरि रूता ॥
पाचौ वसि न भई भौ भटकत फीरी फाडै जूता ॥३॥
जागत रहै न सोवै कवहूं ताहि खोजौ मांग अभूता ॥
परसराम प्रभु गोरख गो मैं पति 'बोलै कहै पूता ॥४॥२७॥

राग सोरठी–

हा हा राम सुमरि तोहि हारे ॥
तैं कित सुमर सग कै मारे ॥टेक॥

औघट घाट नहीं हौं पाऊं ॥
कटे कठिण कहीं जाऊं न आऊं ॥१॥
आवण जाण जगत भरमाया ॥
झूठ सबै सांचे रघुराया ॥२॥
परसा उबर्‌या सांचि अकेला ॥
सतगुरु संग रमैं सुख चेला ॥३॥२८॥

राग सोरठि—

हरि हौं कर्म हीण अज्ञानी ॥
जो कुछ कृपा तुम्हारी मोसौं मैं मतिमूढ न जानी ॥टेक॥
अति अविवेक अंधमति वोछी वोछि वात विचारी ॥
हरि उदार वर सकल सिरोमनि सु कियो न मीत मुरारी ॥१॥
मैं कीनी प्रीती नीच ऊसर सौं विषै खार जामाहीं ॥
हरि अमृत सुख सिंधु निकट पैं ताको भरोसो नाहीं ॥२॥
इद्रिनि सुवादी कह्यो सोई कीयो सोच पोच न पिछाणी ॥
ब्रम्ह सकल व्यापक सचराचर ताहू की कांनि न मानी ॥३॥
लीनौं मानि विषै सर्वस दै अण बूझ्यो अण जान्यो ॥
सिर ऊपरि निज राज कलपतर सो न कछू करि मान्यों ॥४॥
जगत जूठि आधीन स्वान मन लाग्यो रहत सोई गावै ॥
वरजै वेद साध गुरू सति करि सो माननी न आवै ॥५॥
हरि तैं विमुख विषै सौं सनमुख रहत सदा मन दीयो ॥
परसा परम अमीरस परहरि मांगि मांगि विष पीयो ॥६॥२९॥

राग सोरठि—

तुम सौं कहौं सुनौं हो देवा ॥
मोहि दोस कहा जु न मानो सेवा ॥टेक॥

तुम दीना नाथ ग्रनाथ सनेही ।।
मैं तैं समझि धरी किन देही ।।१।।
तन मन सौज तुम्हारी माया ।।
जहां तहां मोकौं तुमहि पठाया ।।२।।
तुम कृपनपाल गोपाल दयाला ।।
मोहि दोस देय जिन होय निराला ।।३।।
सब मांहि तुम तो मांहि सवांई ।।
सब एकमेक कुछ लख्यो न जाई ।।४।।
परसराम प्रभु भया न विचारहूं ।।
सांच कहत मारहूं भावै तारहूं ।।५।।३०।।

राग सोरठि–

हरि दीन दयाल भजौ रस पीऊं ।।
सोई पैंज न मिटै इहै सुणि जीऊं ।।टेक।।
भगत वछल भगतानि के राया ।।
निगम साखि गुरु तुमहिं वताया ।।१।।
व्यापक ब्रम्ह सकल के स्वामी ।।
तुम जानत हो सब ग्रंतर जामी ।।२।।
सब उपजै खपै सबै तुम माहीं ।।
तुम विण राम ग्रवर को नाहीं ।।३।।
पतित सहाय विडद नित रहियो ।।
परसा सरणि गयां सब कहियो ।।४।।३१।।

राग सोरठि–

सुणियै हो प्रीतम स्याम संदेसौ ।।
मैं दास दुखि दरसन बिण कैसौ ।।टेक।।

विरह विथा व्यापै दुख देही ।।
सुख जव होई तव मिले स्नेही ।।१।।
निस दिन सोच रहै जीय मेरैं ।।
परसा जन की पीर न व्यापै तेरैं ।।२।।३२।।

राग सोरठि-

तुम दीन दयाल भगत हितकारी ।।
तो विन दुख व्यापै मोहि भारी ।।टेक।।
अंतर विथा बसै तन जारै ।।
तो विन स्याम विरह सर मारै ।।१।।
तन मन विकल बहुत दुख पाऊं ।।
सहि न सकौं हरि वैंद वुलाऊं ।।२।।
वैंद विनां रोगी क्यौं जीवै ।।
जव लगै प्रेम सरस नहिं पीवै ।।३।।
परसा जन तुम विन यौ सोचै ।।
अति आतुर मिलिवै कौ लोचै ।।४।।३३।।

राग सोरठि-

भगति की गति प्रभु मैं न पिछाणी ।।
परिहरि प्रगट प्रताप तुम्हारों कछु और और उर आणी ।।टेक।।
कीयो कछू कह्यो कछू औरै हरि पति वरत न गायो ।।
परहरि पर्म नांव अमृत फल आक धतूरौ खायौ ।।१।।
जनमत ही तन मन धन अर्प्यो कर्म काल के तांई ।।
पढि गुणि सुणि वरिषत रह्यो रीतौं औंधै कुंभ की नांई ।।२।।
साखि साखी वेद विद्यावल कहत सुनत जम लूटे ।।
निज विश्राम सरणि विण झूठी कहौ क्यौं जु हम छूटे ।।३।।

तारे तै जो तिरैं भगत भौ पारि साखि निगम नित गावै ।।
रवि परकास प्रगट सब देखै पै अंध न परचौ पावै ।।४।।
निगम निकलप समीप सदा सोई तजत न कबहूं साथ ।।
ताकौ सुख ऐसो कहूं परसा मानौं दीप अंध कै हाथ ।।५।।२४।।

राग सोरठि-

हरि की भगति न हिरदै आई ।।
परहरि पर्म कपूर अभै बल जगत झूठि खलि खाई ।।टेक।।
पीयो न व्है ल्यो लीरण हीरण मति अमीरस को झार्‌यो ।।
घर घर फिरत दीन आसा वसि लोभ मोह कौ मार्‌यो ।।१।।
ज्यौं माखी श्रिक चंदन परहरि मल सौं रत मंद भागी ।।
यौं मन मगन स्वाद स्वारथ रत पति सौं प्रीत न लागी ।।२।।
परसा प्रभु विरण हारिण जारिण करि नाहिन मन पछितायौ ।।
तजी सरणी वडराज सिंघ की नीच स्वान सिर नायो ।।३।।३५।।

राग सोरठि-

भांडी भई भगति विरण भारी ।।
जो पै भज्यौ न देव मुरारी ।।टेक।।
विरण भगवंत भजन जो करणी कथणी सुरणी अति झूठी ।।
निज विश्राम विनां कहां विरवै आवै ऊंति अपूठि ।।१।।
मन वच कर्म पुकारत है सब संत निगम निज साखी ।।
बिस्वा बीस सत्य करि श्री गुर कहिवै कछु न राखी ।।२।।
परसा जे जमद्वारि पर्‌यौ तै तिनका कौरण अंदेसा ।।
दाता गुरिण सूर कवि पंडित सुरिणयौ सबै संदेसा ।।३।।३६।।

राग सोरठि-

जो जिय उपजि न आवै काये ।।
तब लग कह्यां सुण्यां कछु नाहीं भावै वांचौ वेद सवाये ।।टेक।।

दरिया भर्यो रह्यौ मुख नीरैं जो पैं पीयो न जाये ।।
पियां विना परम जल सीतल कैसे त्रिषा बुझाये ।।१।।
ज्यौं जल मांहि पषाण रहत है सो व कहा गरि जावे ।।
जो नरवाण द्रिष की वाहै फिरि सोई पछतावे ।।२।।
पायें विना मरम मन कै हठि करणी करि पछतायों ।।
कलि जुग मूल भर्म बूडण कौ ताकै हाथ विकायो ।।३।।
जब लग प्रगट न होई उजारा भटकत भर्म भुलाये ।।
परसराम गुरू वाण वणै विन तन की तपति न जाये ।।४।।३७।।

राग सोरठि–

कहै कहा जो चेतन जाही ।।
मन मूरख समझत नही माही ।।टेक।।
देखत हीरा कर तै खोवै ।।
पाछै झूरि झूरि दुख रोवै ।।१।।
लागौ जीव कर्म की आसा ।।
नाही हरि सुमरण वेसासा ।।२।।
नांहिन प्रीति प्रेम जो तारै ।।
प्रेम विना भौ जीविन हारै ।।३।।
परसा राम न कीयो सनेही ।।
चाल्यौ हारि विषै वसि देही ।।४।।३८।।

राग सोरठि–

काहे कौं नाचै मन काहै को गावै ।।
जो पै जीय वेसास न आवै ।।टेक।।
पंडित वेद कथै समझावै ।।
झूठ सवै जो मूल न पावै ।।१।।

काहै को पूजा भोग लगावै ॥
जो मन परवसि अस्थिर नर होवै ॥२॥

परसराम प्रभु तजि जो धावै ॥
पति पहिचांणि न सुखहि समावै ॥३॥३९॥

राग सोरठि–

येक मन जहां कहौ ले लावो ॥
तहीं सुखी परमारथ स्वारथ पढि गुणि सुणि समझावो ॥टेक॥
ज्यौं दर्पण दस वीस एक मुख जहि सनमुख सोई देखै ॥
यौं सब राम काम परि पूरण जहां मन सोई लेखै ॥१॥
ज्यौं निर्मल नीर भर्‌यो यक दरिया रूचि विण काम न आवै ॥
आरतिवंत पीवै सोई पीवै जो कोई तौ ताकी त्रिषा बुझावै ॥२॥
यौ भाव बिना भगवंत भर्म सम कारिज कछू न सरई ॥
जहां जहां प्रिति करत है यो मन तहीं तहीं अनुसरई ॥३॥
मन मैंमंत निरकुंस गज सम घरि आवत नहीं आण्यो ॥
कोटि ग्रंथादिक परमोधै तऊ करत आपणौं जाण्यो ॥४॥
तहां तहां जाय तही रुचि मानैं विष अमृत न पिछाणै ॥
परसराम ममता या मन की कोई राम रमैं सोई जाणै ॥५॥४०॥

राग सोरठि–

यो मन वरज न मानैं मेरी ॥
कैसे सरण रहूं हरि तेरी ॥टेक॥
उलट्यो जात फिरत नहीं फैर्‌यो ॥
बलि मैंमंत विषै वन घेर्‌यो ॥१॥
पहरत नहीं सहज की वेरी ॥
घरी न वसै निकसै करि सेरी ॥२॥

परसा मन जीते जन कोई ।।
विन मन जित्यां बैंकुंठ न होई ।।३।।४१।।

राग सोरठी–

हरि हरि गाय रे मन गाय ।।
सुर्णं किन मनुहारि सति करि कहत हूं अपणाय ।।टेक।।
समझि निज गुर ग्यान चित दै वेगि विरव न लाय ।।
होत है तन हारिण दिन दिन जनम जूआ जाय ।।१।।
पाय नर औतार औसर वादि दिन न गवाय ।।
भजै किन भगवंत हित करि छाडि आन उपाय ।।२।।
अंति जो डसै सोई निसदिन काल प्रगट्यो आय ।।
देखतां वसि कीयो अपणों तव त कछू वसाय ।।३।।
सव छांडि दै जंजाल दुख सुख सोच पोच वहाय ।।
परसराम अपार प्रभु की सरणि रहि सुख पाय ।।४।।४२।।

राग सोरठि–

मन रे हरि विण हितू न कोई ।।
वारंवार संभारि सुरति करि मति कवहुं दिढ़ होई ।।टेक।।
कर्म उपाय सकल सिधि साधन साध्यां मिलन न होई ।।
जो थिर राम वस्यो नहीं अंतरि तौ धरि वादि विगोई ।।१।।
जे जे कर्म आसधरि करिये जीव कौ वंधन सोई ।।
राम सुमरि निरवंध आस तजि ज्यौ आवागवण न होई ।।२।।
आसा छांडि निरास नांव निज तासौ जो परचौ होई ।।
परसराम जन निकट पर्म पद मैं मेरी जव खोई ।।३।।४३।।

राग सोरठि–

नैण राती है काहू और सों सु तोसौं न राचै ।।
तू याकै मद काहे कौ नाचै ।।टेक।।

ज्यौं कचरा वेली वध ग्वारे ॥
इन नारी जकि जकि वहु जरे ॥१॥
विन वोह्या उबर्यां नाहि कोई ॥
हाथि चढ़्यो देखौ दिठि मोई ॥२॥
याहि न लाज अवर की आवै ॥
हरि की हजूरि गयो गहि ल्यावै ॥३॥
पंडित गुणी सूर कवि जीते ॥
आवत जात आम वसि रीते ॥४॥
इनि केते नर विमुख करि ग्वोये ॥
गहि अपणै रस माहि समोये ॥५॥
इनि सपणै वसि करि वहु लुटे ॥
हरि मिलि याहि न मिले सेई छूटे ॥६॥
या को यहै सु जा विचारौ ॥
परसा तजि जीतौ भावै भजि हारो ॥७॥४४॥

राग सोरठि–

या तो तजि है रे तोहि तु याहि काहे को भजै ॥
तू याको भजि भावै तजि यातौ तोहि न भजै ॥टेक॥
बाजी जु बनाई नाथि आवै न कहू कै हाथि ॥
बहुतक पचि गये चलि न काहूं कै साथि ॥१॥
देखे हैं वहुत तोहि यह वसि न काहूं कै होय ॥
मिलत न मन है सूं आपणो अन्तर खोय ॥२॥
पायो ही न काहूं कै मोहि जैहै रे उहकै तोहि ॥
चचल चलत साखि अस्थिर न होई ॥३॥

काहू तैं रहै रिसाय काहूं को लेत मनाई ।।
काहूं कौं चलत छाडि काहूं कै बसत जाय ।।४।।
बहु तक वसि करै बहुतन कै मन हरे ।।
परसा प्रभु की मति जीव काहूं तैं न डरे ।।५।।४५।।

राग सोरठि—

माई मोहन मुख को देखत मोहनि परैं ।।
अति ही अनूप रूप मन कौ हरैं ।।टेक।।
अखियां देखन गई देख्या तैं तहिंकी भई ।।
बूझयां तैं बोलत नाहिं लज्या की लई ।।१।।
हो चितवनी मैं गही तैंसी न जात कहि ।।
सुख को सदन देख्या ठगि सी रहि ।।२।।
कहता कहि न जाय हरले सोई पत्याय ।।
तजि न सकत तासौं रहत समाय ।।३।।
पल न राख्यो रहाय वेध्यो सु ताहि पैं जाय ।।
परसा प्रभु कौं दरस पावत मन न अघाय ।।४।।४६।।

राग सोरठि—

हरि हरिजन की वोर ढरैं ।।
दुरजन कष्ट दैंत तब तत्र ही आय साय करै ।।टेक।।
व्यंग वचन केई कहत हासि करि कैई करि क्रोध लरै ।।
कैई दुख देत लेत परचैं कौं कुल बल समत धरैं ।।१।।
कैई दुर्वाद वुचारत निर्लज बंधुनि कर्न भरै ।।
फिरि सनमुख लै करत प्रसंसा मिलि नाव भरै ।।२।।
केई वुतपाल उठावत हठि हठि सेवा सौंज हरै ।।
लै लै दोस लगावत हरिजन वाद विवाद अरै ।।३।।
करत उपाय मरन कौ अनहित व्है मन मतै खरै ।।
नित रक्षक करूणामय केसव दुष्टनि कहा सरै ।।४।।

चरणोदक करि पियो हलाहल जग जीवत न मरै ।।
ताकी साखि प्रगट मीरां जन जाकौं अजर जरै ।।५।।
सोई नर असुर आतमा घाती जो हरि तैं न डरै ।।
भगति विमुख हरि सरण हीण नर निहचै नरक गरै ।।६।।
जो निंदा करै पतित पापी पसु पाथर नांव भरै ।।
सोई बूझै भगत तिरै जन परसा हरि भजि पारि तरै ।।७।।४७।।

राग मारु—

हरि जन की यौं राखी रेख मही ।।
मानौ जगत प्रह्लाद भगत की कीरति पहुंमि कही ।।टेक।।
चीर्‌यो गात जनेऊ निकस मिटि गई अटक ठही ।।
बोले सालिगराम सरोतरि सुणि सब संकट ढही ।।१।।
द्विज मजन जल ऊंच कहित सुणि सलिता सोच गही ।।
परिहरि सिंधु स पल कौ सनमुख यौं गंगा उलटि बही ।।२।।
न्यौंते विप्र हहेड़ जुराणी गुरु हित दोष दही ।।
भोजन करत उम्है आपस महिं कहत सुमिल तरुहि ।।३।।
महिमां अमित सुणी मैं नीकै सतनि सापि कही ।।
परसा नाम रविदास की पैज प्रकटनि रही ।।४।।१।।

राग मारु—

राजा श्री गोपाल हमारै ।।
सरणाई समरथ सुखदाता सब दुखदोष निवारै ।।टेक।।
दुर्योधन सिसुपाल सरणि जो आई परै सु न डारै ।।
विनसै नहीं कछु ता जन कौ जे रहै सदा हरि सारै ।।१।।
हरि आपन पै अपणें जन कै कारिज सबै संवारै ।।
हरि की सरणि गयां जम डर पैं ताहि कहौ को मारै ।।२।।

जन कौं सदा परखित कैं ज्यौं हरि आपन संवारै ।।
जो सुमरै पापी अपराधी हरि तिनकैं अवजारै ।।३।।
परम जिहाज नाव भजि परसा जो भव सागर तैं तारै ।।४।।२।।

[ इति श्री श्री श्री श्री स्वामी श्री परसराम देव जी कृत ग्रंथ राम सागर संपूर्ण ।। संवत् १८३७ ।। मिति जेष्ठ वदि ६ ।। वुधवासरे ।। लिपिकृत व्यास मनसाराम परमार्थ वाई अनोपा ।। श्री राधामाधो जी ।। श्री सरवेस्वर जी ।। श्री गोकुल चंद्रमा जी श्री गोपीचंद वल्लभ जी ।।.......... .......]